

सुगन्धदशमी कथा

[अपभ्रंश, संस्कृत, गुजराती, मराठी और हिन्दी]

सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०

प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष

संस्कृत, पाली व प्राकृत, इन्स्टीट्यूट ऑव लैंग्वेजेज एण्ड रिसर्च
जबलपुर विश्वविद्यालय (म० प्र०)

भूतपूर्व डायरेक्टर : प्राकृत, जैनधर्म और अहिंसा शोध-संस्थान
वैशाली (बिहार)



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० सं० २४९२

वि० सं० २०२१, सन् १९६१



प्रथम संस्करण
ग्यारह रुपये

विषयानुक्रमणिका

सामान्यिक - अचार्य श्री सुविद्यलाम्ब जी प्हाटण्ड

General Editorial by Dr. A. N. Upadhye.

7

प्रस्तावना

१-२३

१. आदर्श प्रतियों का परिचय १
२. कवि परिचय और रचना काल २
३. कथा का मौलिक आधार और विकास ५
४. कथाका उत्तर भाग ११
५. फ्रेंच और जर्मन कथाओंसे तुलना ११
६. कथाका उत्तरकालीन प्रभाव १६
७. सुगन्धदशमी कथा : संस्कृत १८
८. सुगन्धदशमी कथा : गुजराती १६
९. सुगन्धदशमी कथा : मराठी २१
१०. सुगन्धदशमी कथा : हिन्दी २२
११. अपभ्रंश व संस्कृत, गुजराती, मराठी और हिन्दी कथानकोंकी संगति २३
१२. अपभ्रंश कथाका विषयानुक्रम । २५

मूल पाठ

१-७६

१. अपभ्रंश—हिन्दी अनुवाद सहित १
२. संस्कृत—हिन्दी अनुवाद सहित ३९
३. गुजराती ४६
४. मराठी ६५
५. हिन्दी ७९

परिशिष्ट

१. मत्स्यगन्धा कथा—महाभारत से ९१
२. नागश्री सुकुमालिका कथा—णायधम्मकहाओ से संकलित ९४
३. श्रावकसुता कथानक—श्रावकप्रज्ञप्ति टीकासे ६६
४. लक्ष्मीमती कथानक—हरिवंशपुराण से १००

प्राक्कथन

यों तो सुगन्धदशमी कथाको मैं अपने बचपनसे सुनता आया हूँ, क्योंकि इसका पाठ पर्युषण पर्वमें भाद्रपद शुक्ल १०वींको नियमित रूपसे जैन मन्दिरोंमें किया जाता रहा है। तथापि इसकी ओर साहित्यिक दृष्टिसे मेरी विशेष रुचि तब जागृत हुई जब सन् १९२४ में मेरे प्रिय मित्र स्वर्गीय कामताप्रसादजीने जसवन्त-नगरके शास्त्र भण्डारका एक हस्तलिखित ग्रन्थ भेजा, जिसमें अनेक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश कथाओंके बीच सुगन्धदशमी कथा (अपभ्रंश) भी संगृहीत थी। मैंने उक्त ग्रन्थका कुछ परिचय तभी अलाहाबाद यूनिवर्सिटी जनरल, खण्ड १, में प्रकाशित अपने 'अपभ्रंश लिटरेचर' शीर्षक लेखमें दिया था। तभी मैंने इस कथाकी प्रतिलिपि करके अपने पास भी रख ली थी। किन्तु अन्य संशोधन कार्योंमें व्यस्त हो जानेसे मेरी दृष्टि इस रचनापर-से उड़ गयी। सन् १९५४ में उस समय संस्कृत एम० ए० के विद्यार्थी और अब डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर, प्राध्यापक मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग, ने मुझे इस कथाकी जिनसागरकृत मराठी रूपान्तरकी वह प्रति दिखलायी जो रंगीन चित्रोंसे युक्त और नागपुर सेनगण भण्डारकी है। इसके साथ ही उन्होंने पुरानी गुजरातीकी रचनाको भी प्रतिलिपि मुझे दी और इन दोनों रचनाओंका परिचय भी लिखकर दिया। इसको देखकर मुझे अपभ्रंश रूपका ध्यान आया और साथ ही अपने बचपनमें पढ़ी अँगरेजीकी सिङ्गला शीर्षक कथाका भी स्मरण हुआ। उसी बोध में वैशाली प्राकृत जैन रिसर्च इंस्टीट्यूटकी स्थापना हेतु बिहार राज्यमें चला गया। सन् १९५५ में जो ओरियण्टल कान्फ़रेंसका अधिवेशन अष्टमलाई विश्वविद्यालय, चिदाम्बरम्में हुआ, उसमें मैंने इस कथाका व उक्त चित्रित प्रतिका परिचय अपने 'पैराललिप्सिज ऑव टेल्स बिट्वीन अपभ्रंश एण्ड वेस्टर्न लिटरेचर' शीर्षक लेखमें दिया, जिससे विद्वानोंकी इस ओर विशेष रुचि जागृत हुई, और वे इसके प्रकाशनके लिए उत्सुकता प्रकट करने लगे। तब मैंने इस ओर विशेष ध्यान दिया, एवं संस्कृत और हिन्दीकी कथाओंको भी खोजकर प्रस्तुत संस्करण तैयार किया। भारतीय ज्ञानपोठकी मूर्तिदेवी ग्रन्थमालामें इसके प्रकाशनका प्रस्ताव भी शीघ्र स्वीकृत हो गया, तथा मूल रचनाओं व अनुवादोंके मुद्रणमें बहुत समय भी नहीं लगा। किन्तु मेरी इच्छा थी कि मराठी प्रतिका समस्त चित्रोंकी छाया भी इसके साथ प्रकाशित की जाये। इस कार्यमें बड़ा विलम्ब लगा और अनेक विघ्न-बाधाएँ व चढ़ाव-उतार आये। उन सबको पार कर जिस रूपमें अब यह ग्रन्थ पाठकोंके हाथ पहुँच रहा है, आशा है उससे सभीको सन्तोष होगा।

उक्त शास्त्र भण्डारों, विद्वानों एवं भारतीय ज्ञानपोठके अधिकारियोंके ही सहयोगसे यह कृति इस रूपमें प्रकट हो सकी है, अतएव मैं उनका हृदयसे अनुगृहीत हूँ। सिधई प्रेस, जबलपुरके मालिक श्री अमृत-लालजीने चित्रोंके ड्राक बनवाने और उनका मुद्रण करानेमें विशेष रुचि दिखलायी अतः मैं उनका बड़ा उप-कार मानता हूँ। विद्वद्दर डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालसे मैंने प्रार्थना की कि वे इन चित्रोंका परिचय लिखवा देनेकी कृपा करें। उनके स्वास्थ्यको देखते हुए मुझे भय था कि वे कदाचित् इस भारको स्वीकार न कर सकें, किन्तु मुझे बड़ा हर्ष और सन्तोष है कि उन्होंने इसे तत्काल स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही डॉ० गोकुल-चन्द्र जैनको चित्र-परिचय लिखवा दिया। इस कृपाके लिए मैं उनका बड़ा आभारी हूँ।

इस प्रकार इस प्रकाशनमें जो कुछ अच्छाई और भलाई है, वह उक्त सहयोगका फल है, तथा उसमें जो दोष व त्रुटियाँ रह गयी हों वे मेरे अज्ञान व असामर्थ्यका परिणाम हैं, जिसके लिए पाठकोंसे मेरी क्षमा-याचना है।

—होरालाल जैन

प्रस्तावना

१. आदर्श प्रतियोंका परिचय (अपभ्रंश)

(१) यह प्रति जसवन्तनगरके जैन मन्दिरकी है, जो मुझे स्वर्गीय बाबू कामताप्रसादजीके द्वारा प्राप्त हुई थी। यह एक कथासंग्रह है जिसमें कुल ३७ रचनाओंका संग्रह है। इनमें सुगन्धदशमी आदि दस कथाएँ अपभ्रंशकी और शेष संस्कृत व प्राकृतकी हैं। इसी प्रतिपर-से मैंने सबसे पूर्व सन् १९२३ में प्रथम बार अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथाको प्रतिलिपि की थी और इस आदर्श प्रतिका परिचय अपने अपभ्रंश लिटरेचर शीर्षक लेखमें दिया था। (देखिए—अलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, भाग १, १९२५)।

(२) यह प्रति भी एक कथाकोशके अन्तर्गत उसके प्रथम १३ पत्रोंमें पायी गयी। इस कथाकोशकी कुल पत्र-संख्या १९४ है। प्रथम पत्र अप्राप्य है। अन्तिम पत्रपर निर्देश है—

वर-वय-कहाकोसु सुपविस्तु विरियउ विबुहराहणा।

सोहिउ हरिसकिति मुणिया पुणु सुललितगिरपवाहिणा ॥

इससे इस संकलनका नाम 'व्रतकथा कोश' पाया जाता है और यह भी ज्ञात हो जाता है कि उसके संग्रहकार विबुधराय थे और उनकी रचनाका संशोधन हर्षकोटि मुनिने किया था। अन्तमें संवत् १६७६ का भी निर्देश है जो सम्भवतः प्रस्तुत प्रतिका लेखनकाल है। इस ग्रन्थके पत्रोंका आकार ११ × ४।। इंच है, प्रति पृष्ठ ९ पंक्तियाँ हैं, चारों ओर लगभग एक इंचका हासिया है, और बीचमें भी स्वस्तिकाकार स्थान छूटा हुआ है। यह प्रति सम्पादकके संग्रहमें है।

(३) यह भी ११ × ४ इंच आकारका एक कथाकोश है, जिसकी पत्र-संख्या १५२ है। किन्तु प्रथम एक तथा अन्तके अज्ञात संख्यक पत्र एवं बीच-बीचके अनेक पत्र अप्राप्य हैं, जिससे वर्तमान पत्रोंकी कुल संख्या केवल ६७ रह गयी है। सुगन्धदशमी कथाका प्रारम्भ पत्र-२६ पर हुआ, किन्तु वह पत्र अप्राप्त है। २७वें पत्रपर मुद्रित प्रतिके १, १, ३ के 'मणहह' शब्दसे पाठ प्रारम्भ होकर पत्र २९ के अन्तमें 'तं जायवि भायई' (तं जाएवि भावई १, ४, १७) तक अत्रिच्छिन्न गया है और फिर ३०-३४ पत्र अप्राप्त होनेसे ३५वें पत्रपर 'ण एण बंधु', (१, १०, २) से पुनः प्रारम्भ होता है, और पत्र ३८ पर 'इम चितेवि पुणु' (२, २, ६) तक जाता है। आगे ३९-४४ पत्र अप्राप्त हैं। ४५वें पत्रपर 'हमि सुअंघणेण' (२, ७, १०) से 'कम्मु डहेसई' (२, ८, १३) तक जाकर पुनः विच्छिन्न हो जाता है। रचनाकी समाप्ति अगले पत्र ४६ पर हुई होगी, किन्तु वह पत्र अप्राप्त है। प्राचीन ग्रन्थोंकी यह दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख होता है।

(४) यह सुगन्धदशमी कथाकी एक स्वतन्त्र प्रति है, जो पत्र १ पर '॥ दा ॥ ऊ बोधय णमाः ॥ सुगन्धदसमी कथा ॥ ॥ जिण चउवीस भवेप्पिणु ॥' इत्यादि रूपसे प्रारम्भ होकर पत्र ११ पर 'तहि णिवासु महु दिज्जउ ॥ ९ ॥ छ ॥ इति सुगन्धदसमी कथा समाप्त ॥' इस प्रकार समाप्त होती है। पत्रोंका आकार १३ × ७ इंच है, प्रतिपत्र १२ पंक्तियाँ हैं। यह प्रति कालकी अपेक्षा पूर्वोक्त तीनों कथाकोशोंसे पश्चात्कालीन है।

इन प्रतियोंके पाठान्तर अंकित नहीं किये गये, क्योंकि उनमें सच्चे पाठान्तर पाये ही नहीं जाते। पाठभेद प्रायः चरण, शब्द, अक्षर व मात्राओंके छूट जाने, मात्राओंमें 'ए' और 'ऐक' तथा 'ओ' और 'उ' के व्यत्यय तथा ण और न के प्रयोगकी अनियमितता सम्बन्धी मात्र दिखाई दिये।

कथा-रचना—अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथामें कुल दो सन्धियाँ हैं। प्रथम सन्धिमें कडवकोंकी संख्या १२ है, और दूसरी सन्धिमें ९। प्रत्येक कडवकमें पंक्तियोंकी संख्या औसतन १७ है। सबसे कम पंक्तियाँ १, २ में हैं, जिनकी संख्या ११ है, और सबसे अधिक ३२ पंक्तियाँ २, २ में हैं। समस्त इक्कीसों कडवकोंकी कुल पंक्ति-संख्या ३६४ है।

कडवकोंकी रचना प्रायः पद्वडिया और अलिल्लह छन्दोंमें हुई है, जिनमें प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएँ होती हैं, किन्तु एकके अन्तमें जगण (लघु, गुरु, लघु) आता है, और दूसरेके अन्तमें दो लघु मात्राएँ। इन दोनों छन्दोंका इस रचनामें प्रायः मिश्रण पाया जाता है। जैसे, प्रथम कडवककी ३-४ पंक्तियोंमें अलिल्लह और शेषमें पञ्जाटिका या पद्वडियाका प्रयोग है। किन्तु दूसरा कडवक पूरा अलिल्लहमें है, व तीसरा-चौथा पञ्जाटिकामें। जहाँ मात्राएँ तो १६ ही हों, किन्तु इन दोनों छन्दोंके चरणान्त मात्राओंका नियम नहीं पाया जाता, वहाँ छन्द पादाकुलक कहलाता है। जैसे २, ७ की प्रथम दो पंक्तियाँ जहाँ चरणान्तमें गुरु मात्रा दिखाई देती है। कडवक १, ५ में दीपक छन्दका प्रयोग है, जहाँ दस मात्राएँ हैं व अन्तमें लघु। प्रत्येक कडवकके अन्तमें जो घत्ता कहा जाता है, वह सामान्य अपभ्रंश काव्यकी रीतिसे सन्धि-भरमें एक-सा ही रहना चाहिए, किन्तु यहाँ इस नियमका पालन नहीं पाया जाता।

कवि परिचय और रचना-काल

अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथामें उसके कर्त्ताने कुछ आत्मनिवेदन रचनाके अन्तमें (२, ९, ७-११) में किया है। इसके अनुसार वे अपने कुलज्यो आकाशको उद्योतित करनेवाले—उदयचन्द्र नामधारी—थे, और उनकी भार्याका नाम देमतिय या देवमती था। उन्होंने इस कथाको गाकर सुनाया था, जिस प्रकार कि उन्होंने जसहर और नायकुमारके चरित्रोंकी भी मनोहर भाषामें सुनाया था। सम्भव है उन्होंने स्वयं इन चरित्रोंकी भी रचना की हो। इसके अतिरिक्त इस रचनामें हमें कविके विषयमें और कोई वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता।

किन्तु उदयचन्द्रका नाम हमें इस प्रकारकी अन्य भी कुछ व्रतकथाओंमें उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ—

१—विनयचन्द्र मुनि कृत 'णिज्जर पंचमी कहा' के आदिमें उदयचन्द्र गुरु और बाल (बालचन्द्र मुनि) का स्मरण किया गया है—

पणविवि पंच महागुरु सारद धरिवि मणि ।

उदयचंदु गुरु सुमरिवि वंदिय बालमुनि ॥

विणयचंदु फलु अक्खइ णिज्जरपंचमिहिं ।

णिसुणहु धम्मकहाणउ कहिउ जिणागमहिं ॥

इसी ग्रन्थके अन्तमें यह भी व्यक्त किया गया है कि इस रासके रचयिता माधुर संघके मुनि विनयचन्द्र थे, और उन्होंने इसकी रचना त्रिभुवनगिरिकी तलहट्टीमें की थी।

तिहुयणगिरि तलहट्टी इहु रासउ रइउ ।

माधुरसंघहं मुणिवरु-विणयचंदिं कहिउ ॥

विनयचन्द्र मुनि कृत एक 'नरग उतारी कहा' भी है, जिसके आदिमें भी उन्होंने उदयचन्द्र गुरु और बालचन्द्र मुनिका स्मरण तथा नमन किया है। यथा—

उदयचंदु गुणगणहरु गरुवउ ।

सो मइ भावें मणि अणुसरियउ ॥

बालइंदु मुणि णविवि गिरंतरु ।

णरगउतारी कहमि कहंतरु ॥

इस रासके अन्तमें उन्होंने यमुना नदीके तटपर बसे हुए महावन नामक नगरके जिन-मन्दिरको अपना रचना स्थल प्रकट किया है। यथा—

अमियसरीसठ जवणजलु ।

णयरु महावणु सग्गु ॥

तहिं जिणमवणि वसंतइण ।

विरइउ रासु समग्गु ॥

विनयचन्द्रमुनिकी एक तीसरी रचना 'चूनडी' भी है, जिसमें उन्होंने माथुरसंघके मुनि उदय (उदय-चन्द्र) तथा बालचन्द्रको नमस्कार किया है, तथा त्रिभुवनगिरि नगरके अजयनरेन्द्र कुत राजविहारको अपनी रचनाका स्थान बतलाया है। यथा—

माथुरसंघहं उदयमुणीसरु ।

पणविवि बालइंदु गुरु गणहरु ॥

जंपइ विणयमयंकु-मुणि ।

तिहुयणगिरिपुरु जगि विक्खायउ ।

सग्गखंडु णं धरयलि आयउ ॥

तहिं णिवसंतं मुणिवरं अजयणरिंदहो राजविहारहिं ।

वेगें विरइय चूनडिय सोहहु मुणिवर जे सुय धारहिं ॥

पूर्वोक्त समस्त उल्लेखोंपर विचार कर यह प्रतीत होता है कि—

१. अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथाके कर्ता वे ही उदयचन्द्र हैं जिनका विनयचन्द्र मुनिने अपनी अनेक रचनाओंमें गुरु कहकर स्मरण किया है।

२. सुगन्धदशमी कथाकी रचनाके समय कविवर उदयचन्द्र गृहस्थ थे और उन्होंने अपनी पत्नी देवमतोका भी उल्लेख किया है। यही कारण है कि विनयचन्द्र मुनिने अपनी दो रचनाओंमें उनका गुरु रूपसे स्मरण तो किया है, क्योंकि वे उनके विद्यागुरु थे; किन्तु उन्हें नमस्कार नहीं किया, क्योंकि मुनिका गृहस्थको नमस्कार करना अनुचित है। विनयचन्द्रके दीक्षागुरु मुनि बालचन्द्र थे, और उन्हें उन्होंने सर्वत्र नमस्कार किया है।

३. कविवर उदयचन्द्र बादमें दीक्षा लेकर मुनि हो गये। इसी घटनाके पश्चात् विनयचन्द्रने अपनी 'चूनडी' नामक रचनामें उन्हें मुनीश्वर भी कहा है, और अपने दीक्षागुरु बालचन्द्र मुनिके साथ उन्हें भी प्रणाम किया है। तथापि यह ध्यान देने योग्य बात है कि उन्होंने विद्यागुरुके नाते उदयचन्द्रजीका सर्वत्र आदिमें उल्लेख किया है, और दीक्षागुरु बालचन्द्रका पश्चात्।

४. ये तीनों मुनि उदयचन्द्र, बालचन्द्र, और विनयचन्द्र माथुर संघके थे। इस संघका साहित्यिक उल्लेख सर्वप्रथम अमितगतिके ग्रन्थोंमें मिलता है, जिन्होंने अपना सुभाषित-रत्न-सन्दोह नामक ग्रन्थ मुंजनरेशके राज्यकालमें संवत् १०५० में रचा था। इस संघके दूसरे बड़े साहित्यकार अमरकीर्ति थे, जिन्होंने संवत् १२४७ में अपभ्रंश भाषाका 'छक्कम्मोवएस' (षट्कर्मोपदेश) रचकर पूरा किया। तीसरे महान् ग्रन्थकार यशःकीर्ति और उनके शिष्य पण्डित रइधू हुए, जिन्होंने संवत् १४८६ के आसपास अनेक अपभ्रंश ग्रन्थोंकी रचना की। (माथुर संघके विशेष परिचयके लिए देखिए डॉ० जोहरापुरकर कुत 'भट्टारक सम्प्रदाय' शोलापुर, १९५८) देवसेन-कृत दर्शनसार-गाथा ४०, आदिके अनुसार इस संघकी स्थापना मथुरामें रामसेन गुरु-द्वारा की गयी थी, जिसमें मुनियोंको पीछो रखनेका निषेध किया गया था।

५. उदयचन्द्र कविने अपनी सुगन्धदशमी कथामें रचना-स्थानका कोई उल्लेख नहीं किया। किन्तु उनके शिष्य विनयचन्द्रने अपनी 'नरगउतारी कथा' का रचना-स्थल यमुना नदीके तटपर बसा महावन नगर बतलाया है, और अपनी अन्य दो रचनाओं अर्थात् 'निर्झर-पंचमी कथा' और 'चूनडी' को तिहुयणगिरि

(त्रिभुवनगिरि) में रचित कहा है । सौभाग्यसे ये दोनों स्थान पहचान लिये गये हैं । महावन तो मथुराके निकट यमुना नदीके उस पार बसा हुआ है, और वह उत्तरप्रदेशके नकशेमें अब भी देखा जा सकता है । कविने इस नगरको स्वर्ग कहा है, जिससे उसकी उन दिनोंकी महत्ता प्रकट होती है । तिहुयणगिरि आज-कलका तिहनगढ़ (थनगढ़ या थनगिर) है, जो मथुरा या महावनसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर लगभग साठ मील दूर राजस्थानके पुराने करौली राज्य व भरतपुर राज्यमें पड़ता है । इस प्रकार इन ग्रन्थकारोंका निवास व विहारका प्रदेश मथुरा जिला और भरतपुर राज्यका भूमिभाग कहा जा सकता है ।

६. उक्त समस्त रचनाओंमें उनके रचनाकालका निर्देश नहीं पाया जाता । सौभाग्यसे विनयचन्द्र मुनिने अपनी 'चूनडी' नामक रचनामें एक ऐसा संकेत दिया है, जिससे इनके रचनाकालका अनुमान लगाया जा सकता है । उन्होंने कहा है कि 'चूनडी' की रचना उन्होंने तिहुयणगिरिमें अजयनरेन्द्रके राजविहारमें रहते हुए की थी । ऊपर हम देख ही चुके हैं कि यह तिहुयणगिरि आजकलका तिहनगढ़ है । इसके पूर्व इतिहासका पता लगानेपर हमारी दृष्टि वहाँके मध्यकालीन यदुवंशी राजाओंपर जाती है । भाटोंके जातों व उत्कीर्ण लेखोंपर-से पता चलता है कि भरतपुर राज्य व मथुरा जिलाके भूमि-प्रदेशपर एक समय यदुवंशी राजाओंका राज्य था, जिसकी राजधानी श्रोपथ (आधुनिक बयाना, राजस्थान) थी । यहाँ ग्यारहवीं शतीके पूर्वार्धमें जैतपाल नामक राजा हुए । उनके उत्तराधिकारी विजयपाल थे, जिनका उल्लेख विजय नामसे बयानाके सन् १०४४ के उत्कीर्ण लेखमें भी पाया गया है । इनके उत्तराधिकारी हुए त्रिभुवनपाल (तिहनपाल) जिन्होंने बयानासे १४ मील दूर तिहुयणगढ़ (तिहनगढ़) का किला बनवाया । इस वंशके अजयपाल नामक राजाकी एक उत्कीर्ण प्रशस्ति महावनसे मिली है, जिसके अनुसार सन् ११५० ई० में उनका राज्य प्रवर्तमान था । इनके उत्तराधिकारी हरिपालका भी सन् ११७० का एक उत्कीर्ण लेख महावनसे मिला है । भरतपुर राज्यके अधपुर नामक स्थानसे भी एक मूर्ति मिली है, जिसके सन् ११९२ में उत्कीर्ण लेखमें सहनपाल नरेशका उल्लेख है । इनके उत्तराधिकारी कुमारपाल (कुँवरपाल) थे, जिनका उल्लेख मुसलमानों त्वारोख ताजुल मआसिरमें भी मिलता है, और वहाँ कहा गया है कि इनके समय तिहनगढ़ या थनगढ़पर सन् ११९६ ई० में मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गौरीने आक्रमण कर वहाँके राय कुँवरपालको परास्त किया और वह दुर्ग बहाउद्दीन तुघरिलको सौंप दिया । कुँवरपालके उत्तराधिकारी अनंगपाल, पृथ्वीपाल व त्रिलोकपालके नाम पाये जाते हैं । किन्तु सम्भवतः इतिहासातीत कालसे प्रसिद्ध शूरसेन प्रदेश व मथुराके वासुदेव और कृष्णके नामोंसे सुप्रसिद्ध यदुवंशकी राज्यपरम्परा बारहवीं शती तक आकर मुसलमानों आक्रमणकारियोंके हाथों समाप्त हो गयी ।

यहाँ प्रस्तुतोपयोगी ध्यान देने योग्य बात यह है कि सुगन्धदशमी कथाके कर्ता उदयचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रने जिस त्रिभुवनगिरि (तिहनगढ़) में अपनी उक्त दो रचनाएँ पूरी की थीं, उसका निर्माण इस यदुवंशके राजा त्रिभुवनपाल (तिहनपाल) ने अपने नामसे सन् १०४४ के कुछ काल पश्चात् कराया था । तथा अजयनरेन्द्रके जिस राजविहारमें रहकर उन्होंने 'चूनडी' की रचना की थी, वह निस्सन्देह उन्हीं अजयपाल नरेश-द्वारा बनवाया गया होगा, जिनका सन् ११५० का उत्कीर्ण लेख महावनसे मिला है । सन् ११९६ में त्रिभुवनगिरि उक्त यदुवंशी राजाओंके हाथसे निकलकर मुसलमानोंके हाथोंमें चला गया । अतएव त्रिभुवनगिरिके लिखे गये उक्त दोनों ग्रन्थोंका रचना-काल लगभग सन् ११५० और ११९६ के बीच अनुमान किया जा सकता है । और चूँकि 'चूनडी' की रचनाके समय उदयचन्द्र मुनि हो चुके थे, किन्तु सुगन्धदशमीकी रचनाके समय वे गृहस्थ थे, अतः सुगन्धदशमीका रचनाकाल लगभग ११५० ई० माना जा सकता है ।

३. कथाका मौलिक आधार और विकास

यह बात सुज्ञात और सर्व-सम्मत है कि जीवमात्र अपने सुख-साधनका और दुःखके निवारणका प्रयत्न करता है । कहा है—

“जे त्रिभुवन में जीव अनन्त । सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त ॥” (दोलतराम : छहदाला)

सुखलिप्ताको इसी चेतनासे प्रेरित होकर मनुष्यने एक ओर कर्मशीलताका विकास किया, जिसके द्वारा उसने घर-द्वार निर्माण, अन्न-पान-संचय, वस्त्राभूषण, औषधि-उपचार आदि सम्बन्धी नाना प्रणालियों-का आविष्कार किया । दूसरी ओर उसने यह भी देखा कि उसके कार्य-क्षेत्रके परे कुछ ऐसी भी प्राकृतिक शक्तियाँ हैं, जैसे अग्नि, वर्षा, वायु, सूर्य आदि जो कभी अनुकूल होकर उसके सुखमें वृद्धि करती हैं, और कभी प्रतिकूल होकर उसकी उपर्युक्त सुख-सामग्रीको नष्ट-भ्रष्ट कर डालती हैं । उसने इसे अनुभवमय्य मनुष्य-स्वभावके आधारपर उन दिव्य शक्तियोंके रोष-तोषका परिणाम समझा । यह समझदारी प्राप्त होते ही उसने उन शक्तियोंको अपनी अर्चा-स्तुति-द्वारा प्रसन्न करने और अपने हितोंके अनुकूल बनानेका प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया । यह स्थिति हम भारतीय प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेदकी ऋचाओंमें प्रतिबिम्बित पाते हैं जहाँ यजमान स्पष्ट ही कहता है कि “मैं अग्निका आह्वान करता हूँ, अपने कल्याणके लिए; रात्रि जगत्-भरको विश्राम देती है, इसलिए मैं उसका भी स्वागत करता हूँ; और सविताको बुलाता हूँ कि वह मेरा परित्राण करे । (ऋग्वेद, १, ३५, १) इसी प्रकार इन्द्रसे गायों, घोड़ों, धन तथा योद्धाओंकी रक्षा करने-को (१, ४ आदि), वरुणसे पाससे बचाने व पूर्णायु प्रदान करने तथा अपना क्रोध दूर करनेकी (१, २४); मरुत्से बल-वृद्धि, शत्रु-दमन तथा यमके मार्गसे बचानेकी (१, ३७-३९); तथा ब्रह्माणस्पतिसे बल, अश्व, बलवान् शत्रुके विनाश आदि (१, ४०) की प्रार्थनाएँ की गयी हैं, और इन्हीं गुणोंके कारण उन्हें स्तुत्य, पूज्य तथा आह्वान करने योग्य माना गया है ।

क्रमशः रोष-तोषके कारण भक्तोंका अनिष्ट व इष्ट सम्पादन करनेका सामर्थ्य उन देवताओंके पार्थिव प्रतिनिधि ऋषियोंमें भी आया । यह क्रान्ति हमें विशेष रूपसे महाभारत व रामायण तथा अन्य पौराणिक साहित्यमें दृष्टिगोचर होती है । इतना ही नहीं, किन्तु ऋषियोंमें यह शक्ति भी मानी गयी है कि वे रुष्ट होकर शाप-द्वारा मनुष्यको जघोर-तिमें भी पहुँचा सकते हैं, और प्रसन्न होकर शापके निवारण व मनुष्यके उत्थानका भी उपाय बतला सकते हैं । कपिल मुनिने रुष्ट होकर सम्राट् सगरके साथ सहस्र पुत्रोंको भस्म कर दिया और फिर प्रसन्न होकर गंगाजल-द्वारा उनके उद्धारका भी उपाय बतला दिया (रामायण १, ४० आदि) । शुक्राचार्यके शापसे सम्राट् ययाति युवावस्थामें ही वृद्ध हो गये, किन्तु उन्हींके अनुग्रहसे उन्होंने अपने बेटे पुरुका यौवन प्राप्त कर लिया (महाभारत १, ७८) । ऋषियोंका यह सामर्थ्य इतना भी बढ़ा कि वे स्वयं देवताओंको भी शाप देकर मनुष्यादि योनियोंमें गिराने लगे । नहुष इन्द्रपदको प्राप्त होकर भी अगस्त्य ऋषिके शापसे सर्प बनकर अमरपुरीसे गिर पड़ा (महाभारत), व गौतम ऋषिके शापसे इन्द्रदेव भी विफल (नर्पुंसक) हो गये (रामायण १, ४८, २८-२९) ।

ऋषियोंके सामर्थ्यकी इस शृंखलामें महाभारतका निम्न आख्यान (परिशिष्ट १) ध्यान देने योग्य है--

अद्रिका नामकी एक प्रसिद्ध अप्सरा थी । कारणवश वह एक ब्राह्मणके कोपका भाजन बन गयी और ब्रह्मशाप-द्वारा यमुना नदीमें मछलीकी योनिमें उतरान् हुई । (महाभारत १, ५७, ४६) प्रसंगवश उसके उदरमें चेदि-सम्राट् वसुका वीर्य प्रविष्ट हो गया । गर्भके दसवें मासमें वह मछली घोवरों-द्वारा पकड़ी गयी और उसके उदरसे एक स्त्री और एक पुरुष निकले । मछली तो शापमुक्त होकर पुनः अप्सरा हो गयी, और उसकी मानवी-सन्तति-रूप उन स्त्री-पुरुषोंको राजा वसुको समर्पित किया गया । वसुने पुरुषको तो मत्स्य नामसे राजा बना दिया, और कन्याको एक दासको पालन-पोषणके लिए दे दिया । बड़ी होनेपर वह कन्या अपने दास पिताकी सेवा-सहायता करने लगी । और उनकी अनुपस्थितिमें नाव चलाकर पथिकोंको नदी पार भी करने लगी ।

एक बार इस दास-कन्याको नाव-द्वारा पराशर ऋषिको नदी पार करानेका प्रसंग आया । कन्या अत्यन्त रूपवती थी, किन्तु उसके शरीरसे मत्स्यकी दुर्गन्ध निकलती थी, जिसके कारण वह मत्स्यगन्धा

भी कहलाती थी। नाव जब नदीके बीचमें पहुँची, तब ऋषि पराशर अपनी कामवासनाको न रोक सके, और उन्होंने मत्स्यगन्धासे प्रेमका प्रस्ताव किया। आसपासके समीपवर्ती ऋषियोंकी दृष्टिसे बचनेके लिए उन्होंने अपने तपोबलसे कुहरेकी सृष्टि की और कन्याको यह भी वरदान दिया कि उनसे प्रेम करनेपर भी उसका कन्याभाव नष्ट नहीं होगा। ऋषिकी इच्छा-पूर्ति करनेपर कन्याने वरदान माँगा कि उसके शरीरकी दुर्गन्ध दूर होकर उसके गात्रोंमें उत्तम सुगन्ध आ जाये। ऋषिके प्रसादसे ऐसा ही हुआ और वह मत्स्यगन्धा तभीसे गन्धवती नामसे प्रसिद्ध हुई। उसके शरीरकी सुगन्ध एक योजन तक फैलने लगी, जिससे उसका नाम योजनगन्धा भी विरूपाक्ष हुआ। वैसे इस कन्याका नाम सत्यवती था, जो आगे चलकर कौरव-नरेश शान्तनुकी साम्राज्ञी हुई। उसके ही पुत्रका राज्याभिषेक हो, इसी हेतु शान्तनुके ज्येष्ठपुत्रने अपना विवाह न करनेकी भीष्म प्रतिज्ञा धारण की और भीष्म नामसे विख्याति पायी। तथा उसीने विचित्रवीर्य नामक राजपुत्रको जन्म दिया, जिसकी सन्तानसे धृतराष्ट्र और पाण्डु हुए। (महाभारत १, ५७, ५४ आदि)।

महाभारतके इस कथानकमें पाठकोंको प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाके मूलतत्त्वोंका दर्शन हुए बिना न रहेगा। ऋषिका अनिष्ट, उसके कारण कन्याके शरीरमें दुर्गन्ध व ऋषिके प्रसादसे दुर्गन्धके स्थानपर सुगन्धकी उत्पत्ति, एवं राजपद प्राप्ति, इन सभी बातोंमें उक्त कथानकोंका मेल बैठता है।

किन्तु कुछ अन्य बातोंमें वैदिक-परम्पराके उक्त आख्यान एवं जैन-परम्पराकी सुगन्धदशमी कथा विवरणमें बहुत भेद है। वैदिक-परम्पराके ऋषि तपोबल-समृद्ध तो होते हैं, किन्तु वे न तो गार्हस्थ्यके परित्यागी होते हैं, न ब्रह्मचर्यके परिपालक, और न रागद्वेषसे रहित। निरुक्त (२, ११) के अनुसार उनकी दृष्टि तीक्ष्ण होती है, तथा वे वेदोंके मन्त्रोंका दर्शन करते हैं। (ऋषिदर्शनात्) और भरतके अनुसार उनकी विद्वत्ता व विदग्धता प्रसिद्ध है (विद्याविदग्धमतयः ऋषयः प्रसिद्धाः)। तथापि वे गृहस्थ हैं (ऋषयो गृहमेधिनः)। वे आश्रम बनाकर रहते हैं, गौओं व घनका दान लेते हैं, और गौओंका पालन भी करते हैं। क्रुद्ध होकर वे शाप भी देते हैं, और प्रसन्न होकर वरदान भी। किन्तु जैन-परम्पराके मुनियोंकी प्रकृति आदितः ही उनसे भिन्न रही है। स्वयं ऋग्वेदके अनुसार वे वातरशना (सम्भवतः नग्न दिग्म्बर) होते हैं, उन्हें शरीरको निर्मल बनानेकी रुचि नहीं होती। वे लौकिक व्यवहारोंसे परे उन्मत्त (परमहंस) व मौन वृत्तिसे रहते हैं। वे अध्यात्मी होते हैं। लोग उनके शरीरको तो देख पाते हैं, किन्तु उनकी आध्यात्मिक चेतनाको नहीं (ऋ १०, १३६)। तैत्तिरीय आरण्यक (१, २१, ३; १, २६, ७) के अनुसार ये वातरशना मुनि, समाहितासः अर्थात् चित्तको एकाग्र करनेमें अप्रमादी तथा उर्ध्वमन्थिनः अर्थात् ब्रह्मचारी होते हैं। महाभारत (अनुशासन पर्व ११५, ७९) के अनुसार मुनि वे ही कहे गये हैं जो मधु, मांस और मद्यका सर्वथा त्याग करते हैं; तथा गोता (२, २६) के अनुसार मुनि स्थितप्रज्ञ होते हैं, जिन्हें दुःखमें उद्वेग नहीं, सुखकी वांछा नहीं, तथा मय और क्रोधरहित होते हुए वीतराग होते हैं। वातरशना मुनियोंको परम्परामें हुए भगवान् ऋषभदेव (जैनियोंके आदि तीर्थंकर) (भागवत पुराण ५, ६, २८ आदि) शरीर मात्र परिग्रह धारी थे, उन्मत्तावत् नग्न (गगन-परिधान) अवधूत, मलिन जटाओंसहित रहते थे। पुराणमें यह भी कह दिया गया है कि ऋषभदेवका यह अवतार कैवल्यकी शिक्षा देने हेतु हुआ था।

इन्हीं मुनियोंकी साधनाओंका अधिक विस्तारसे वर्णन महाभारतके शान्तिपर्व, अध्याय ९ में किया गया है, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर इच्छा प्रकट करते हैं कि “मैं तो अब मुनि होकर मुण्डसिर वनमें एकान्तवास करता हुआ भिक्षावृत्तिसे अपने शरीरका क्षपण करना चाहता हूँ। धूलि-धूसरित शून्यागार या वृक्षके नीचे निवास करता हुआ, तथा समस्त प्रिय और अप्रियका त्यागी होकर, शोक और हर्षसे रहित निन्दा और स्तुतिमें समभाव, कोई आशा व ममता न रखता हुआ निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह रहना चाहता हूँ। आत्मामें ही मेरा रमण हो, मेरा आत्मा प्रसन्न रहे, आकृति मेरी भले ही जड़, अन्ध और बधिर-जैसी हो। मैं किसी दूसरेसे कोई सलाह-सम्मति नहीं करना चाहता। अपने-अपने गुणधर्मोंमें स्थित चारों प्रकारके जंगम प्राणियोंके प्रति मेरा समता-भाव रहे। न मैं किसीकी हँसी उड़ाऊँ, न कभी किसीपर भुक्कुटी तानूँ। समस्त इन्द्रियों-

को संयमित रखता हुआ मैं सदैव प्रसन्न-मुख रहूँ। न मैं किसीसे माँग पूछूँ, न किसीके साथ चलूँ, न किसी देशको अथवा किसी दिशामें जानेको कोई विशेष इच्छा रखूँ। कोई अपेक्षा न रखता हुआ, पीछेकी ओर न देखकर सावधानी रखता हुआ, वस-स्थावर जीवोंको बचाता हुआ संयम भावसे सीधा गमन करूँ। वस्तु-स्वभाव आगे चलता है, क्षुधादि पीड़ाओंका प्रभाव पड़ता ही है, तथा सुख-दुःख आदि द्वन्द्व अपना विरोध छोड़ते नहीं। अतः मैं उनकी चिन्ता न करूँ। अल्प या स्वादहीन जो भी भोजन मिल जाये उसीमें सन्तोष करूँ। न मिले तो भी क्षुब्ध न होऊँ। जब रसोईघरका धुआँ शान्त हो जाये, मूसल रख दिया जाय, चूल्हमें आग भी न रहे, लोग भोजन कर चुकें, पात्रोंका संचार बन्द हो जाये व सामान्य भिक्षुक चले जायें, तब मैं दिनमें केवल एक बार दो, तीन या पाँच घण्टोंसे भिक्षा माँगूँ। स्नेह-बन्धनको छोड़कर मैं इस पृथ्वीपर विचरण करूँ। लाग हो या हानि हो मैं समदर्शी रहूँ, और महातपसे विचलित न होऊँ। मेरा आचरण न तो जीनेके लिए आतुरता लिये हो, और न मरणकी इच्छासहित। जीवनका मैं अभिनन्दन न करूँ, और न मरणसे द्वेष। कोई बसूलेसे मेरा हाथ काटे और कोई मेरे शरीरपर चन्दनका लेप करे, तो भी न मैं एक-का अकल्याण सोचूँ और न दूसरेका कल्याण। जीवनमें सांसारिक अभ्युदयकी क्रियाएँ करना शक्य है, उन सबका मैं परित्याग करूँ, और पलक मारने आदि शारीरिक क्रियाओंमें सावधान रहूँ। इन्द्रियोंकी क्रियाओंमें न मैं आसक्ति रखूँ, और न प्रवृत्ति। अपने आत्मकल्याणका संकल्प कभी न छोड़ूँ, और आत्माको मलिन करनेवाले कामोंसे अपनेको बचाता रहूँ। मैं सब प्रकारके संगोंसे मुक्त रहूँ व सब बन्धनोंसे परे रहूँ, किसीके वशमें न रहूँ। आयुके समान स्वतन्त्र वृत्ति होऊँ। इस प्रकार वीतराग भावसे आचरण करता हुआ मैं शाश्वत सुख-सन्तोषको प्राप्त करूँ। अभीतक तो मैंने अज्ञानके कारण तृष्णाके वशीभूत होकर महापाप किया।” मुनियोंके आचारका जो विधान जैन-शास्त्रोंमें पाया जाता है उससे उक्त बातोंका भलीभाँति समर्थन होता है।

ऋषियों और मुनियोंकी साधनाओं, प्रवृत्तियों एवं गुणधर्मोंमें उक्त भेद उन परम्पराओं-सम्बन्धी आख्यानोंमें स्वभावतः प्रतिबिम्बित हुआ है। जहाँ एक ही या एक ही प्रकारकी लोक-कथाका उपयोग धार्मिक उपदेशके लिए किया गया है, वहाँ अपनी-अपनी परम्पराओंके अनुकूल उसमें हेर-फेर भी हुआ है। महाभारतमें सत्यवतीके शरीरमें दुर्गन्ध आनेका कारण था उसकी अप्सरा माताका ब्रह्मशाप और दुर्गन्धसे मुक्ति एवं सुगन्धकी उत्पत्तिका कारण था ऋषिका वरदान। इस वरदानकी प्राप्ति किसी धार्मिक साधनाके फलस्वरूप नहीं हुई, किन्तु ऋषिकी कामवासना-तृप्ति-द्वारा उनका प्रसाद। किन्तु जैन-परम्परामें ये बातें नहीं बन सकतीं। यहाँ मुनि दुःख-सुखमें समान रूपसे समताभाव रखते हैं, और उनमें राग-द्वेषका भी अभाव होता है। अतः न तो वे शाप देते हैं, और न वरदान। जैन कर्म-सिद्धान्तके अनुसार माताके शापसे पुत्रीका शरीर दुर्गन्धित हो, यह बात भी नहीं बनती। फल प्रत्येक जीवकी स्वकृत कर्मके अनुसार ही प्राप्त होता है। हाँ, मुनिजन अपने ज्ञान-द्वारा यह अवश्य विश्लेषण कर बतलानेका प्रयत्न करते हैं कि कौन-से पापकर्मका फल दुःखमय हुआ और कौन-से पुण्यकर्म-द्वारा उसका निवारण किया जा सकता है। इन सिद्धान्तोंके अनुसार शरीरमें अप्रियताकी उत्पत्तिका जो आख्यान प्राचीन जैन (आगम णायधम्मकहा १६) में पाया जाता है वह इस प्रकार है—

चम्पा नगरीमें सोम, सोमदत्त व सोमभूति नामक धनी गृहस्थ रहते थे। उन्होंने एक बार विचार किया कि जब हमारे पास प्रचुर धन है तो क्यों न उसका भोग और दानमें सदुपयोग किया जावे। अतएव उन्होंने परस्पर आमन्त्रणों-द्वारा भोज और आमोद-प्रमोदका निर्णय किया। जब सोमकी बारी आयी तब उसकी पत्नी नागश्रीने खान-पानकी खूब तैयारी की। किन्तु जब उसने परीक्षाके लिए खूब घृत और मसालों सहित तैयार की गयी लौकीके शाकके एक बिन्दुको चखा तो उसे अत्यन्त कड़वा और बिपेला पाया। तब उसने उसे अलग रखकर अन्य शाक तैयार किये व अम्पागतोंको खूब खिलाया-पिलाया। आमोद-प्रमोदके पदचात् सब अपने-अपने घर गये। तब वहाँ धर्मरुचि नामके मुनि आहारकी भिक्षाके लिए उपस्थित हुए।

नागश्रीने विचार किया कि उस कड़वी अलाबुका शाक जिसमें उतना घृत और मसाला पड़ा है, अन्यत्र फेंकने-की अपेक्षा इस मुनिको दे देना अच्छा। ऐसा विचार करके उसने उस समस्त शाकको मुनिके भिक्षा-पात्रमें उड़ेल दिया। उसे लेकर धर्मरुचि मुनि अपने गुरु धर्मघोषके पास आये। उन्होंने उसकी गन्धका अनुभव कर एक बिन्दुका स्वाद लिया और उसे कटु व अखाद्य जानकर मुनिको उसे एकान्तमें उचित स्थानमें डाल देनेको कहा। धर्मरुचिने जाकर एक स्थानपर उसका कुछ भाग छोड़ा, और देखा कि जिस-जिस चींटीने आकर उसे खाया, वही तुरन्त मर गयी। यह देख मुनिने विचार किया कि इसे कहीं भी डालनेसे अगणित जीवोंका घात होगा। अतः इससे यही अच्छा है कि मैं ही इसे खा लूँ जिससे अन्य जीवोंके प्राण न जायें। ऐसा विचार कर उन्होंने उसका आहार कर लिया और वे शीघ्र ही मरणको प्राप्त हुए।

इस प्रकार नागश्रीकी करतूतसे मुनिके मरणकी बात सर्वत्र फैल गयी। बहुजन समाजने उसको निन्दा और भत्सना की, तथा उसे घरसे निकाल दिया। इस प्रकार निर्वासित और निन्दित होकर वह घर-घर भीख माँगकर अपना निर्वाह करती हुई श्वास, कास, शूल, कुष्ठ आदि सोलह महारोगोंसे ग्रस्त हो, मरकर नरक जाकर अगले तीन जन्मोंमें पुनः-पुनः मछली हुई, फिर अनेक एकेन्द्रियादि जीवोंमें सहस्रों बार उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् तिर्यच योनिसे उबरकर वह चम्पानगरीमें सागरदत्त सार्धवाहकी सुमालिका नामक पुत्री हुई। वह यद्यपि रूप और यौवनसे सम्पन्न थी, तथापि उसके शरीरका स्पर्श असहनीय था, जिसके कारण उसका पति उसके पाससे भाग गया। पिताने एक दरिद्रसे उसका पुनर्विवाह कर दिया, किन्तु वह भी उसका स्पर्श सहन न कर, निकल भागा। यह देख पिताने उसका सम्बोधन किया कि यह सब उसके पूर्वकृत कर्मोंका फल है। फिर उसने उसे अपने रसोईघरके काम-काजमें अपना चित्त लगानेका उपदेश दिया। कुछ काल पश्चात् वहाँ आर्यिकाओंका एक संघ आया। उनके समीप सुमालिकाने प्रव्रज्या ले ली।

चम्पामें एक ललिता नामक गोष्ठी थी। एक बार वहीं पाँच गोष्ठिक पुरुष देवदत्ता गणिकासहित आमोद-प्रमोदके लिए पहुँचे। किसीने देवदत्ताको अपनी गोदमें बिठलाया, किसीने छत्र लगाया, किसीने पुष्प-सज्जा की, किसीने पैरोंमें माहुर लगाया और किसीने चमर ढोरा। सुमालिकाने यह सब देखा और वह उस स्त्रीके भाग्यको सराहने लगी। उसने निदान किया कि यदि मेरी इस प्रव्रज्याका कुछ फल हो तो अगले जन्ममें मुझे भी ऐसा ही प्रेम-सत्कार प्राप्त हो। तभीसे वह अपने शरीरको सज्जककी ओर विशेष ध्यान देने लगी। मरनेके पश्चात् वह ईशान स्वर्गमें देवी हुई, और फिर द्रुपदकी राजकन्या द्रौपदी; जिसे पूर्व संस्कारवश अर्जुन आदि पाँच पाण्डवोंका पतित्व प्राप्त हुआ। (परिशिष्ट २)

इस कथानकमें न तो मुनिका शाप है, और न वरदान। किन्तु मुनिके प्रति दुर्भाव और दुर्व्यवहारके पापसे उसे स्वयं कुष्ठ आदि रोग हुए, नाना नीच योनियोंमें भ्रमण करना पड़ा, एवं मनुष्य-जन्ममें उसे उसी कड़वी तूँबी-जैसा असह्य शरीर मिला। फिर प्रव्रज्याके पुण्यसे अगले जन्ममें उसे सुन्दर रूपकी प्राप्ति हुई और उसके मनोवांछित पाँच पति भी मिले। यह कथानक अर्धमागधी आगमका है, जिसका उपलभ्य संकलन वीरनिर्वाणसे १८० वर्ष पश्चात् बलभीमें किया गया था। अतः वह ईसवीकी पाँचवीं शतीसे पूर्वकी रचना सिद्ध है।

हरिभद्र सूरि (लगभग ७५० ई०) विरचित सावयपण्णत्ति (श्रावक प्रज्ञप्ति) के पद्य ९३ की टीकामें भी इस प्रकारका एक कथानक सम्पत्त्वके विचिकित्सा नामक अतिचारके उदाहरण रूपसे आया है, जो इस प्रकार है—

एक सेठ था। उसकी पुत्रीके विवाहमें कुछ साधुजन आये। पिताने उसे उनकी परिचर्या करनेका आदेश दिया। किन्तु उनके शरीरकी मलिन गन्धसे उसे घृणा हुई, और वह विचार करने लगी कि यदि ये साधु प्रासुक जलसे स्नान कर लिया करें, तो क्या हानि है? उसने अपने इस दूषित विचारका कोई आलोचन-प्रतिक्रमण नहीं किया। अतः मरनेपर वह राजगृहकी एक गणिकाके यहाँ उत्पन्न हुई। जन्मसे ही उसके

शरीरसे दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे वह वनमें त्याग दी गयी। एक बार राजा श्रेणिक, भगवान् महावीरकी वन्दनाको जाते समय उसी वनसे निकले। दुर्गन्ध पाकर उन्होंने उसकी खोज करायी, और स्वयं जाकर उसे देखा। फिर भगवान्ने उसके विषयमें पूछ-ताछ की। उन्होंने उसके शरीरमें दुर्गन्ध उत्पन्न होनेका कारण जानकर उसके भावी होनहारकी बात पूछी। भगवान्ने कहा कि अब उसके पापका फल वह भोग चुकी। अब वह तुम्हारी ही अग्रमहिषी होगी, और आठ वर्ष तुम्हींरे साथ रमण करके, पश्चात् जो करेगी सो तुम जान लेना। राजा भगवान्को वन्दना कर आने भवनकी गये। उधर उस कन्याकी दुर्गन्ध दूर हो गयी, और एक अहीरने ले जाकर उसका पालन-पोषण किया। युवती होनेपर वह अपनी माताके साथ कौमुदी-महोत्सव देखने गयी। राजा भी अपने पुत्र अभयकुमारके साथ वेष बदलकर उत्सव देख रहा था। कन्याके अकस्मात् स्पर्शसे उसकी कामवासना जागृत हो गयी, अतः उसने अपनी नामांकित मुद्रिका उसे पहना दी, और अभय-कुमारसे कह दिया कि उनकी नाममद्रा किसीने चुरा ली, अतः उसकी खोज की जाये। अभयकुमारने नगरके सब द्वार बन्द करा दिये, और प्रत्येक मनुष्यकी जाँच-पड़ताल करायी। वह बालिका मुद्रिकासहित पकड़ी गयी, और राजाके पास लायी गयी। राजाने उससे अपना विवाह कर लिया। एक बार राजा अपनी अन्य रानियों सहित जलक्रीड़ाको गया, और वह सुन्दरी उनकी नावकी देखती रह गयी। इस प्रकार राजा-द्वारा अपनेको परित्यक्त समझकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

इस प्रकारका तीसरा आख्यान जिनसेन-कृत हरिवंशपुराण (शक सं० ७०७-७८५ ई०) में पाया जाता है—भरतक्षेत्र, मगधविषयके लक्ष्मी ग्राममें लक्ष्मीमती नामकी सुन्दर कन्या थी। एक बार वह दर्पणमें अपना रूप देख रही थी कि उसी समय भिक्षाके लिए समाधिगुप्त मुनिको आया देख उसे धृणा हो उठी, और वह मुनिकी निन्दा करने लगी। इस महापापके कारण सातवें दिन ही उसके शरीरमें कुष्ठ व्याधि उत्पन्न हो गयी। कन्याने अग्नि-प्रवेश-द्वारा मरण किया। तत्पश्चात् उसने क्रमशः खरी, शूकरी और कुक्कुरीका जन्म ग्रहण किया। फिर वह मण्डूकग्राम निवासी मत्स्यजीवीकी पुत्री हुई। उसका शरीर दुर्गन्धमय होनेसे माताने तो उसका परित्याग कर दिया, किन्तु मातामहीने पाल-पोषकर उसे बड़ा किया। मुनिका संयोग होनेपर उसे धर्मोपदेश मिला। वह आर्यिकाओंके साथ राजगृह गयी और सिद्धांशिलाकी वन्दना करके, नीलगुफामें समाधिस्थ हो, मरकर अच्युत स्वर्गमें महादेवी हुई। वहाँसे उतरकर वह राजा भीष्मकी कन्या हविमणी हुई। यही कथानक महासेन-कृत प्रद्युम्नचरित (सर्ग ८, १४०-१६०) तथा हरिषेण-कृत कथाकोश (१०८) में भी पाया जाता है।

इस कथानकमें मुनिके निरादरसे कुष्ठरोगकी उत्पत्ति, नीच योनियोंमें जन्म तथा शरीरमें दुर्गन्धका होना एवं धर्माचरणसे उस पापका निवारण होकर स्वर्ग एवं उच्चकुलमें जन्मका फल बतलाया है।

हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश (५७), (९३१ ई०), तथा श्रीचन्द्रकृत अपभ्रंश कथाकोश (संधि १९-२०, लगभग १०६० ई०) में एक और कथा है अशोक रोहिणीकी, जिसके अनुसार हस्तिनापुरके समीप नीलगिरि पर्वतकी शिलापर मुनिराज यशोधर आतापन योग करते थे। उनके प्रभावसे वहाँके मृगमारी नामक व्याधको कोई शिकार नहीं मिल पाता था। इससे क्रुद्ध होकर उसने जब मुनिराज भिक्षाको गये थे, तब उस शिलाको अग्नि जलाकर खूब तप्त कर दिया। मुनिराजने आकर उसी शिलापर शान्त भावसे समाधिमरण किया। इस पापके फलसे उस व्याधको कुष्ठ रोग हो गया, और वह असह्य वेदनासे सातवें दिन मरकर नरक गया। वहाँसे निकलकर नाना नीच योनियोंमें भ्रमण करता हुआ वह जोव पुनः मनुष्य योनिमें आया, और गोपालके रूपमें उसी नीलगिरिके दावानलमें जलकर भस्म हुआ।

उसी हस्तिनापुरमें सेठ धनमित्रके पूतिगन्धा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसकी उग्र दुर्गन्धके कारण कोई उससे विवाह नहीं करता था। संयोगवश उसी नगरके सेठ वसुमित्रका पुत्र श्रीपेण बड़ा दुराचारी था। एक बार वह चोरीके अपराधमें पकड़ा गया। धनमित्रने उसे इस शर्तपर राजासे प्रार्थना कर छुड़ा

दिया कि वह उसकी उस दुर्गन्धा पुत्रीसे विवाह करे। किन्तु विवाहके पश्चात् ही वह उसकी दुर्गन्धको न सह सकनेके कारण भाग गया। दुर्गन्धाके दिन पुनः दुःखसे बीतने लगे।

एक बार सुव्रता आर्यिका घनमित्रके घर आहारको आयी। दुर्गन्धाने भक्तिसे आहार-दान दिया। नगरमें मुनिसंघ आया। दुर्गन्धा भी मुनियोंकी वन्दना को गयी। मुनिने उसकी दुर्गन्धका कारण बतलाया कि पूर्वभवमें वह गिरिनगरके सेठ गंगदत्तकी सिन्धुमती नामक भार्या थी। एक बार सेठ-सेठानी दोनों राजाके साथ वन-विहारको जा रहे थे कि समाधिगुप्त नामक मुनि आहार निमित्त आते दिखाई दिये। सेठने अपनी पत्नीको उन्हें आहार करानेके लिए वापस भेजा। सेठानीने क्रुद्ध हो मुनिराजको कड़वी तूम्बीका आहार कराया। उसकी वेदनासे मुनिका स्वर्गवास हो गया। राजाको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने उसे निरादरपूर्वक नगरसे निकाल दिया। उसे कुष्ठ व्याधि हो गयी, और वह सात दिनोंके भीतर मर गयी। वह नरकोंमें तथा कुत्ती, शूकरी, शृगाली, गधो आदि नोच योनियोंमें जन्म लेकर अन्ततः तू अब पूतिगन्धाके रूपमें उत्पन्न हुई है।

अपने पूर्वभवका यह वृत्तान्त सुनकर पूतिगन्धाको बड़ी आत्मग्लानि हुई, और उसने मुनिराजसे पूछा कि उस पापसे उसे किस प्रकार मुक्ति मिले। मुनिराजने उसे रोहिणी-व्रतका उपदेश दिया, जिसके अनुष्ठानसे वह अंगदेशकी चम्पानगरीके मधवा नामक राजाकी रोहिणी नामक राजकन्या हुई। अब वह यह जानती भी नहीं थी कि दुःख और शोक कैसा होता है।

राजकन्या रोहिणीके पति अशोकका भी पूर्वभव मुनिराजने सुनाया। कनकपुरमें सोमभूतिके पुत्र सोमशर्मा और सोमदत्त थे। पिताकी मृत्युके पश्चात् सोमदत्त राजपुरोहित हुआ, जिसके कारण उसका ज्येष्ठ भ्राता सोमशर्मा उससे द्वेष करने लगा। उसके दुराचारको वातसे सोमदत्तको वैराग्य हो गया, और वह मुनि हो गया। अब सोमशर्मा राजपुरोहित हुआ। एक बार जब राजा सोमप्रभ विजय-यात्रापर जा रहे थे तब उन्हें सम्मुख सोमदत्त मुनिके दर्शन हुए। इसे सोमशर्माने अपशकुन बताकर, मुनिको मरवा डालनेकी सलाह दी। किन्तु राजाने अन्य ज्योतिषियोंसे यह जानकारी प्राप्त की कि मुनिका दर्शन अपशकुन नहीं किन्तु बड़ा शुभ शकुन माना गया है, जिससे कार्यमें अवश्य सफलता प्राप्त होती है। हुआ भी ऐसा ही। तथापि सोमशर्माने द्वेषवश गुप्त रूपसे मुनिका घात कर दिया। यह जानकर राजाने उसे दण्डित किया। सातवें दिन उसे कुष्ठ व्याधि हो गयी। दुःखसे मरकर उसने अनेक बार नरकोंमें तथा मत्स्य, सिंह, सर्प, व्याघ्र आदि क्रूर पशुओंमें जन्म लेकर अन्ततः सिंहपुरके राजा सिंहसेनका दुर्गन्धी शरीर युक्त पुत्र हुआ। एक बार मुनिराजसे अपने पूर्वभवका यह वृत्तान्त सुनकर उसे धार्मिक रुचि उत्पन्न हो गयी, और रोहिणी व्रतके प्रभावसे वह उस मुनि-हत्याके पापसे मुक्त होकर अशोक कुमार उत्पन्न हुआ। पुण्याख्य कथाकोश (३६-३७) में भी यह कथानक आया है, और वह भी इसी कथाकोशपर आधारित प्रतीत होता है।

कथाकोशके अन्तर्गत रोहिणी चरित्रके उपर्युक्त तीनों उपाख्यानोमें मुनि-घातके पापसे कुष्ठ रोगकी उत्पत्ति, नरक-गति, नोच योनियोंमें परिभ्रमण, और अन्ततः धार्मिक आचरण-द्वारा उस पापका परिमार्जन, सुगति और सुखोंकी प्राप्तिके उदाहरण उपस्थित किये गये हैं। उपर्युक्त समस्त कथानकोंके मिलानसे इस बातमें सन्देह नहीं रहता कि प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाका सबसे निकटवर्ती आधार रोहिणीका पूर्वभव-वृत्तान्त ही है।

प्रस्तुत सभी कथानकोंमें मुनिनिन्दा या निरादरके पापसे कुष्ठव्याधि व दुर्गन्धित शरीरकी उत्पत्तिके अतिरिक्त दूसरा प्रबल तत्त्व है, नोच योनियोंकी दीर्घ परम्परा। महाभारतके मत्स्यगन्धा-सम्बन्धी आख्यानमें वह परम्परा दूसरे जन्मसे आगे नहीं बढ़ी। किन्तु बिष्णुपुराण (३, १८) में एक ऐसा आख्यान भी आया है, जिसमें नोच योनियोंकी एक लम्बी शृंखला दिखलायी गयी है। एक समय राजा शतघनु और उनकी रानी शैव्या गंगामें स्नान करके निकले ही थे कि उन्हें अपने सम्मुख एक पापण्डीके दर्शन हुए, जो राजाके

धनुर्वेदी आचार्यका मित्र था। अतः राजाने उससे गौरवपूर्ण मित्रवत् व्यवहार किया। इस पापके फलसे वह मरकर क्रमशः शृगाल, वृक, गृध्र, व्याल व मयूर हुआ। प्रत्येक जन्ममें उसकी पतिव्रता पत्नीने उसके पूर्व-जन्मोंका स्मरण कराया, जिससे पापण्डोंके साथ सद्ब्यवहारका घोर पाप क्रमशः क्षीण होते-होते वह मयूरके जन्ममें राजा जनकके अश्वमेध यज्ञमें जा पहुँचा। उन्होंने यज्ञानुष्ठानसम्बन्धी अवभृथस्नानके समय उसे भी स्नान कराया, जिसके पुण्यसे वह अगले जन्ममें स्वयं राजा जनकका पुत्र हुआ।

वैदिक परम्पराके पुराणोंमें विष्णुपुराण अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन माना जाता है; अतः महाभारतके समान इस पुराणके वृत्तान्तका प्रभाव भी पूर्वोक्त जैन-आख्यानोंपर पड़ा हो तो आश्चर्य नहीं।

४. कथाका उत्तर भाग

प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाका दूसरा भाग, जो दूसरी सन्धिमें वर्णित है, अपनी मौलिकता और रोचकताकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। सुगन्धदशमी व्रतके पुण्यसे दुर्गन्धा अपने अगले जन्ममें रत्नपुरके सेठ जिनदत्तकी रूपवती पुत्री तिलकमती हुई। किन्तु उसका पूर्वजन्म कुछ पापकर्म अभी भी भोगनेको शेष रहा था। अतः जन्मके कुछ ही दिन उसकी शाश्वत देशान्तर हो गया। पिताने दूसरा विवाह किया, और उससे भी एक कन्या उत्पन्न हुई तेजमती। सौतेली माँ अपनी पुत्रीको बहुत प्यार करती, और तिलकमतीसे उतना ही द्वेष। इस कारण इस कन्याका जीवन बड़े दुःखसे व्यतीत होने लगा। युवावस्था आयी और पिता-को कन्याओंके विवाहकी चिन्ता हुई। किन्तु इसी समय उन्हें वहाँके नरेश कनकप्रभका आदेश मिला कि वे रत्नोंको खरीदनेके लिए देशान्तर जायें। जाते समय सेठ पत्नीसे कह गया कि सुयोग्य वर देखकर दोनों कन्याओंका विवाह कर देना। जो वर आते वे तिलकमतीके रूपपर मुग्ध होकर, उसीकी याचना करते। किन्तु सेठानी उसकी बुराई कर अपनी पुत्रीको ही आगे करती, और उसीको प्रशंसा करती। तो भी वरके हठसे विवाह तिलकमतीका ही पक्का करना पड़ा। विवाहके दिन सेठानी तिलकमतीको यह कहकर श्मशान-में बैठा आयी कि उनकी कुल-प्रथाके अनुसार उसका वर वहीं आकर उससे विवाह करेगा। किन्तु घर आकर उसने यह हल्ला मचा दिया कि तिलकमती कहीं भाग गयी। लग्नकी वेला तक उसका पता न चल सकनेके कारण वरका विवाह तेजमतीके साथ कराना पड़ा। इस प्रकार कपटजाल-द्वारा सेठानीने अपनी इच्छा पूरी की।

उधर राजाने महलपर चढ़कर देखा कि एक सुन्दर कन्या घोर रात्रिमें श्मशानमें अकेली बैठी है। वह तुरन्त उसके पास गया और पूछ-ताछ कर व सब बात जान-समझकर उसने स्वयं उससे अपना विवाह कर लिया। पूछनेपर राजाने अपना नाम पिण्डार (ग्वाल—महिषोपाल) बतलाया और यही नाम कन्याने अपनी सौतेली माँको भी बतला दिया। एक पृथक् गृहमें उसके रहनेकी व्यवस्था कर दी गयी। राजा रात्रि-को उसके पास आता, और सूर्योदयसे पूर्व ही चला जाता। पतिने रत्नजटित वस्त्राभूषण भी उसे दिये, जिन्हें देख सेठानी घबरा गयी कि निश्चय ही उन्हें उसके पतिने राजाके यहाँसे चुराकर उसे दिये होंगे। इसी बीच सेठ भी विदेशसे लौट आये और सेठानीसे सब वृत्तान्त सुनकर राजाको खबर दी। राजाने चिन्ता व्यक्त की, और सेठको अपनी पुत्रीसे चोरका पता प्राप्त करनेका आग्रह किया। पुत्रीने कहा मैं तो उन्हें केवल चरणके स्पर्शसे पहचान सकती हूँ; अन्य कोई परिचय नहीं है। इसपर राजाने एक भोजका आयोजन कराया, जिसमें सुगन्धाको आँखें बाँधकर अम्प्यागतोंके पैर धुलानेका कार्य सौंपा गया। इस उपायसे राजा ही पकड़ा गया। तब राजाने उस कन्यासे विवाह करनेका अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जिससे समस्त वातावरण आनन्दसे भर गया। इस प्रकार मुनिके प्रति दुर्भावके कारण जो रानी दुखी दरिद्री दुर्गन्धा हुई थी, वही सुगन्धदशमी व्रतके पुण्यसे पूर्वोक्त पापको धोकर पुनः रानी बन गयी।

५. फ्रेन्च और जर्मन कथाओंसे तुलना

इस कथाके प्रसंगमें मुझे सिन्ड्रेला नामक अँगरेजीकी एक कहानीका स्मरण आ गया, जिसे मैंने

अपने स्कूलके दिनोंमें पढ़ा था। अब खोजनेपर वह कहानी मुझे “दि स्लीपिंग व्यूटी एण्ड अदर फेयरी टेल्स फ्रॉम दि ओल्ड फ्रेंच, रिटोल्ड बाई ए० टी० विचलर-कोउच”, नामक कथा-संग्रहमें मिल गयी। इस ग्रन्थके आदिमें कहा गया है कि ग्रन्थकारने प्रस्तुत कथानक फ्रेंच भाषाके ‘केबिने डे फों’ नामक कथा-कोशके इकतालीस खण्डोंमें-के प्रथम भागसे लिखा है। उसके कर्ता चार्ल्स पेरोल्टका जीवन-काल सन् १६२८ से १७०३ तक माना गया है। संक्षेपतः यह कथानक इस प्रकार है—

एक धनिककी एक सुन्दर कन्या थी। उसके बचपनमें ही उसकी माताकी मृत्यु हो गयी। पिताने दूसरा विवाह किया। इस पत्नीके साथ उसकी पहलेकी दो पुत्रियाँ भी आयीं। सौतेली माँको अपनी सौतेली पुत्रीसे बड़ा द्वेष हुआ, क्योंकि उसके समक्ष उसकी वे दोनों पुत्रियाँ रूप और गुणोंमें बहुत फीकी पड़ती थीं। माँ उस सौतेली लड़कीसे घरका सब काम-काज कराती, उसे फटे-पुराने कपड़े पहनाती तथा सूखा-रूखा खानेको देती। किन्तु वह अपनी दोनों पुत्रियोंको खूब सज-धजसे रखती, और उनकी भी चाकरी उस सौतेली लड़कीसे कराती। इस लड़कीको जब घरके सब काम-काजसे कुछ अवकाश मिलता, तब वह घरके एक कोनेमें जहाँ कोयला रखा जाता था, जाकर पड़ जाती थी। इसीसे उसका नाम ‘सिन्ड्रेला’ पड़ गया। (सिंडर - कोयला)।

एक बार उस नगरके राजकुमारने नृत्योत्सवका आयोजन किया, जिसमें राज्यके समस्त धनी-मानी निमन्त्रित थे। धनिककी दोनों युवती कन्याओंको भी निमन्त्रण मिला, और वे खूब ठाठ-बाटसे नियत समयपर नृत्योत्सवमें पहुँचीं। किन्तु उस बेचारो सौतेली लड़कीको अपनी उन बहिनोंकी तैयारीका काम तो खूब करना पड़ा, परन्तु उत्सवमें जानेका उसका भाग्य कहाँ? वह अपने उसी गन्दे कोनेमें बैठ सिसक-सिसककर रोने लगी।

रोते-रोते अर्धचेतसी अवस्थामें जब उसने आँखें पोंछकर देखा तो अपने सम्मुख एक दिव्य मूर्तिको खड़ा पाया। उसने बड़े प्यारसे पूछा, “बेटी, रोती क्यों है? तू क्या चाहती है?” इस प्यारकी बोलीसे सिन्ड्रेलाका गला और भी रुँध गया और वह कुछ भी बोल नहीं सकी। तब देवीने स्वयं पूछा, “क्या तू राजकुमारके नृत्योत्सवमें जाना चाहती है?” सिन्ड्रेलाके हाँ कहनेपर देवीने अपनी जादूकी छड़ीसे छूकर एक कुम्हड़ेको सुन्दर गाड़ीका रूप दे दिया, चूहोंके घोड़े और प्यादे बना दिये, और कन्याके मैले-कुर्चले वस्त्रोंको सुन्दर बहुमूल्य वेश व रत्नमय आभूषणोंमें बदल दिया। सिन्ड्रेलाका रूप-सौन्दर्य अब किसी भी राजकन्यासे होने नहीं रहा। दिव्य रूप व वेश-भूषा तथा राजोचित वैभवके साथ सिन्ड्रेला नृत्योत्सवमें गयी।

उत्सवमें राजकुमार सिन्ड्रेलाकी ओर ही सबसे अधिक आकृष्ट हुआ। उसने उसका सर्वाधिक आदर-सत्कार किया और उसीके साथ बहुलतासे नृत्य भी किया। अकस्मात् ज्योंही सिन्ड्रेलाने पीने बारह बजे रात्रिकी घण्टी सुनी, त्योंही वह लौटनेके लिए अधीर हो उठी, क्योंकि देवीने उसे खूब सचेत कर दिया था कि उसका वह दिव्य वैभव अर्धरात्रिके पश्चात् नहीं ठहरेगा। वह राजकुमारसे तुरन्त छुट्टी लेकर तथा उसके आग्रह करने पर पुनः दूसरे दिन नृत्योत्सवमें आनेका वचन देकर, अपनी बहिनोंके लौटनेसे पूर्व ही घर आ गयी, तथा अपनी फटी-पुरानी वेश-भूषामें उनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगी।

दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार, किन्तु उससे भी अधिक सज-धजके साथ वह नृत्योत्सवमें पहुँची। आज राजकुमारने अपना सारा समय उसीके साथ व्यतीत किया। वह भी इतनी तल्लीन हो गयी कि उसे अर्धरात्रि-से पूर्व घर लौटनेका ध्यान ही न रहा। अकस्मात् जब पूरे बारह बजेकी घण्टी बजती प्रारम्भ हुई तब वह सचेत हुई और घबराकर तुरन्त वहाँसे भागी। उस जल्दीमें उसके पैरका एक काँचका जूता निकलकर वहीं रह गया, जिसे राजकुमारने बड़े चावसे उठाकर अपने पास रख लिया।

अब घर लौटनेके लिए सिन्ड्रेलाके पास न वे गाड़ी-घोड़ा थे और न प्यादे। उसकी पोशाक भी अपने स्वाभाविक मैले-कुर्चले कपड़ोंमें बदल गयी थी। रात अंधेरी, मार्ग बहुत पथरीला और ऊपरसे घनघोर

वृष्टि। अतः वह बड़े कष्टसे अपने घर पहुँच पायी। सौभाग्यसे उसकी बहिनोंकी गाड़ीका एक चाक निकल पड़ा था, जिससे वे भी बहुत विलम्बसे आयीं और सिन्ड्रेला उनके कोपके प्रसादसे बच गयी।

सिन्ड्रेलाके लौटनेपर उसकी वह देवी माता सम्मुख आ उपस्थित हुई, और बोली “बेटी तूने मेरी बातका ध्यान नहीं रखा, जिसके कारण तुझे इतना क्लेश भोगना पड़ा। अच्छा, यह जो तू अपनी छातीमें छिपाये हुए है, वह क्या है?” सिन्ड्रेलाका वह दिव्य वेश तो बदल गया था, किन्तु न जाने क्यों उसने अपनी वह बचो हुई काँचकी एक जूती अपनी आँगियामें छिपाकर रख ली थी, और वह अभी भी ज्योंकी त्यों बनी हुई थी। उसे देखकर देवीने कहा, “अच्छा यह एक तो है, पर इसकी जोड़ी कहाँ है?” सिन्ड्रेला घबरायी। किन्तु देवीने कहा, “भला तुम असावधान तो हो, परन्तु जो मेरी देनको इतनी निशानी बचा ली है, वही तुम्हारे भाग्यकी विधायक होगी।” इतना कहकर देवी अदृश्य हो गयी।

उधर दूसरे ही दिनसे राजकुमार व्याकुल होकर खोज करने लगा—यह काँचकी जूती किसके पैरकी है? उसने घोषणा करा दी कि जिसके पैरमें वह जूती ठीक बैठ जावेगी, वही उसकी प्रिय रानी होगी। क्रमशः एकसे एक राजकुमारियों व अमीरों-जमोदारों व सेठ-साहूकारोंकी कन्याओंने अपने-अपने भाग्यकी परीक्षा की, किन्तु वह जूती किसीके भी पैरमें ठीकसे नहीं बैठी। सिन्ड्रेलाकी दोनों सौतेली बहिनोंकी भी वारी आयी, किन्तु उन्हें भी निराश होना पड़ा। सिन्ड्रेला देख रही थी। उसने कहा, “क्या मैं भी प्रयत्न करूँ?” इसपर उसकी बहिनें हँस पड़ीं। किन्तु राजपुरुषने कहा, “मुझे इस जूतीकी सभी युवतियोंके पैरमें पहनानेका आदेश है, इसलिए तुम भी इसे पहनकर देखो।” सबके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब सिन्ड्रेलाका पैर खटसे उस जूतीमें भली प्रकार बैठ गया। यही नहीं, उसने अपने आँगियामेंसे उसकी जाड़ीकी जूती निकालकर अपने दूसरे पैरमें पहन ली। अब कोयलेके कोनेमें रहनेवाली सिन्ड्रेला राजमहलकी रानी बन गयी।

यही कथानक जर्मनीमें कुछ हेर-फेरके साथ लोक-प्रचलित पाया जाता है। ऐसी लोक-कथाओंका एक संग्रह जेकब लुडविक कार्ल ग्रिम (१७८५-१८६३) कृत ‘दि किंडर उण्ड हाउसमार्खेन’ की तीन जिल्दोंमें प्रकाशित हुआ था, जिसका अनुवाद अंगरेजीमें ‘ग्रिम्स टेल्स’ में पाया जाता है। इस संग्रहमें अश्वपुटेलकी कहानीका सार यह है—

एक धनिककी पत्नीने मरते समय अपनी एक मात्र पुत्रीको पास बुलाकर कहा—“बेटी, तুম सदा भली रहना, मैं स्वर्गसे भी तुम्हारी देख-रेख करूँगी।” माताकी मृत्युके पश्चात् पुत्री प्रतिदिन उसके श्मशान पर जाकर रोया करती थी।

उसके पिताने शीघ्र ही दूसरा विवाह कर लिया। इस नयी पत्नीकी पहलेसे दो पुत्रियाँ थीं, जो देखनेमें सुन्दर, किन्तु हृदयसे बहुत मैली थीं। वे अपनी सौतेली बहनसे घृणा करतीं, उससे घरका सब काम-काज करातीं, और खूब-सूखा खानेको देती थीं। वह रसोईघरके राखके ढेरके पास सोया करती थी, जिससे उसका नाम अश्वपुटेल पड़ गया।

एक बार वह धनिक किसी मेलेमें जा रहा था। उसने अपनी पुत्रियोंसे पूछा कि वे मेलेसे क्या मँगाना चाहती हैं। एकने अच्छेसे अच्छे वस्त्र और दूसरीने हीरा-मोती लानेको कहा। अश्वपुटेलसे पूछनेपर उसने कहा—“पिताजी, जब आप घर लौटनेलगे, तब जो वृक्षकी डाल आपके टोपसे उलझ जाये, उसे ही मेरे लिए लेते आइए, बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए।” धनिकने वैसा ही किया। घोड़ेपर सवार होकर लौटते समय एक झुरमुटके वनमें उसके टोपसे हैजल (Hazel) वृक्षकी डाल टकरायी। बस उसे ही तोड़ कर वह अपनी अश्वपुटेलके लिए लेता आया। अश्वपुटेलने उसे ले जाकर अपनी माँ के श्मशान पर लगा दिया, तथा रो रोकर उसे अपने आँसुओंसे सींच डाला।

कुछ समय पश्चात् वहाँके राजाने एक तीन दिनका उत्सव मनाया, जिसमें राजकुमारका स्वयंवर भी होना था। अश्वपुटेलकी दोनों बहिनोंको उस उत्सवमें जाना था, अतएव अश्वपुटेलको उनके बालोंकी कंधी

करनी पड़ी, उनके जूतोंपर पालिश भी करनी पड़ी, तथा उनकी पोशाककी साज-समहाल भी करनी पड़ी। अश्वपुटैलने अपने माँसे अपने जानेकी भी इच्छा प्रकट की। सौतेली माँने उसे टालनेके लिए कहा,, “अच्छा मैं इन कुंडे भर मटरके दानोंको उस राखके ढेरमें मिला देती हूँ, यदि तुम उन्हें दो घण्टोंके भीतर चुनकर अलग कर लोगी, तो मैं तुम्हें भी स्वयंवरमें जाने दूँगी।” अश्वपुटैलने यह शर्त स्वीकार कर ली, और अपने साथी कबूतरों व अन्य पक्षियोंकी सहायतासे उस कामको एक घण्टेमें ही निपटा दिया। किन्तु माँने फिर कहा, “नहीं, नहीं, तुम्हारी पोशाक बहुत मलिन है, अतः मैं तुम्हें राजोत्सवमें न जाने दूँगी।” अश्वपुटैलके पुनः आग्रह करनेपर उसने कहा, “अच्छा, मैं अब दो कुंडे मटरके दानोंको राखके ढेरमें मिलाती हूँ, यदि तुम एक घण्टेमें इन्हें चुन लोगी, तो मैं तुम्हें भी जाने दूँगी।” अश्वपुटैलने कबूतरोंकी सहायतासे यह कार्य भी पूरा कर लिया। किन्तु सौतेली माँका हृदय फिर भी न पसीजा। अन्तमें उसने यह कहकर उसे बिलकुल मना कर दिया कि तुम्हारा वहाँ जाना बिलकुल निरर्थक है। तुम्हारे पास न तो अच्छी पोशाक है, और न तुम्हें नाचना ही आता है। अतएव तुम्हारे वहाँ जानेसे हम सबको लज्जित होना पड़ेगा।

सब राजोत्सवमें चले गये, और बेचारो अश्वपुटैल अपनी माताकी इमशान भूमि पर जाकर उस हैजल-के वृक्षके नीचे फूट-फूटकर रोने लगी। और गाने लगी —

हिलो हिलो तुम हैजल वृक्ष। चाँदी सोना बरपे स्वच्छ ॥

इस पर उसके मित्र पक्षीने वृक्षसे उड़कर उसे चाँदी-सोनेकी पोशाक और रेशमकी जूतियाँ ला दीं। उन्हें पहिनकर अश्वपुटैल भी स्वयंवर उत्सवमें जा पहुँची। उसकी बहिनोंने उसे देखा, किन्तु वे पहिचान न सकीं। उन्होंने समझा वह कोई राजकुमारी होगी।

उत्सवमें राजकुमारने अश्वपुटैलको ही अपने साथ नृत्य करनेके लिए चुना, और अन्त तक उसका हाथ न छोड़ा। बहुत रात गये जब वह घर जाने लगी तब राजकुमारने स्वयं उसके साथ जाकर घर पहुँचा देनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु इस बातसे अश्वपुटैल बहुत घबरायी, और राजकुमारकी आँख बचाकर वहाँसे निकल भागी।

दूसरे दिनके उत्सवमें भी अश्वपुटैल उसी भाँति सुसज्जित होकर पहुँची। आज राजकुमारने निश्चय कर लिया कि वह उसका साथ कभी न छोड़ेगा। उत्सवसे बिदा होते समय वह उसके साथ हो गया। किन्तु घरके पास पहुँचने पर वह राजकुमारकी आँखें बचाकर बगीचेमें छिप गयी, और चुपके-चुपके अपने स्थान पर जा पहुँची। परन्तु राजकुमारने निश्चय कर लिया था, अतएव वह वहीं डटा रहा। अश्वपुटैलके पिताके लौट आने पर राजकुमारने उससे कहा कि उसकी प्रिया उसी बगीचेमें कहीं छिप गयी है। दोनोंने मिलकर बहुत ढूँढ़ा, किन्तु उसका पता न चला।

तीसरे दिन और भी अधिक सुसज्जित होकर अश्वपुटैल उत्सवमें पहुँची। सबकी दृष्टि उसीके अनुपम सौन्दर्य और अपार वैभवकी ओर थी। राजकुमारने आज पलभरके लिए भी उसका साथ न छोड़ा। जाते समय पुनः उसका पीछा किया। तथापि अपने घरके समीप पहुँचकर अश्वपुटैल अदृश्य हो गयी। किन्तु घबराहटमें उसके पैरकी एक जूती पैरसे निकलकर गिर पड़ी। इस सुवर्णजटित जूतीको राजकुमारने अपने पास रख लिया, और अपने पिताके पास जाकर कहा कि जिसके पैरमें यह जूती ठीक बैठ जायेगी, उसीसे मैं अपना विवाह करूँगा। जिस घरमें उसकी सुन्दरी प्रिया अदृश्य हुई थी, वह घर तो उसे विदित था ही। अतः वह जूती उसी घरमें लायी गयी। पहले बड़ी लड़कीने अपना भाग्य आजमाया किन्तु उसके पैरका अँगूठा इतना बड़ा था कि वह जूतीमें किसी प्रकार समाता ही नहीं था। तब उसकी माँने उस अँगूठेको कटवा दिया, और जूती पहनाकर उसे राजकुमारके सम्मुख उपस्थित किया। राजकुमार घोड़ेपर बैठाकर उसे अपने साथ ले जाने लगा। जब वे उस हैजल वृक्षके समीपसे निकले, तब उसपर बैठा परेवा पक्षी गाने लगा—

लौटो लौटो राजकुमार । देखो जूती खूब निहार ॥

हूँदो अपनी पत्नी प्यारी । यह है रानी नहीं तुम्हारी ॥

यह सुनकर राजकुमार लौट पड़ा, और उसे उसके घर उतार दिया, अब माताने अपनी दूसरी पुत्रीके पैरमें उस जूतीको पहनानेका प्रयत्न किया, उसकी एड़ी इतनी बड़ी थी कि वह जूतीमें नहीं बैठ सकी । तथापि रानी बनानेके लोभसे मानी उसे जबर्दस्ती जूतीमें ठूस दिया, जिससे एड़ी लहू-लुहान हो गयी । राजकुमार उसे अपने घोड़ेपर बैठाकर ले चला । किन्तु उस हैजल वृक्षसे पुनः वही गानेकी ध्वनि सुनायी दी । अतएव राजकुमार फिर लौट पड़ा । लाचार होकर अबकी बार अस्पुटेलके पैरमें जूती पहनायी गयी । वह खटसे ठीक बैठ गयी । उसे लेकर जब राजकुमार हैजल वृक्षके समीपसे निकला तो उसे सुनायी पड़ा —

अब घर जाओ राजकुमार । खूब करो रानीसे प्यार ॥

इतना गाकर वह कपोत पक्षी उड़कर उस सुन्दरीके कन्धे पर आ बैठा । वे सब जाकर राजमहलमें प्रविष्ट हुए ।

इन फ्रेंच और जर्मन दोनों कथाओंमें परस्पर बहुत-सी बातोंमें भेद होने पर भी उनमें निम्नलिखित तत्त्व समान रूपसे विद्यमान हैं —

एक धनी गृहस्थ, उसकी पत्नी और एक पुत्री । पत्नीके देहान्त हो जाने पर धनीका पुनर्विवाह व नयी पत्नीकी अपनी दो पुत्रियाँ । इस पत्नीका अपनी दो पुत्रियोंसे प्यार, और उस सौतेली लड़कीसे दुर्म्यवहार । राजमहलमें उत्सव । सौतेली लड़कीकी अवहेलना, किन्तु एक अदृश्य शक्ति (उसकी मृत माताकी आत्मा) -द्वारा उसकी सहायता । दर्शन-मात्रसे राजकुमारका उसकी ओर आकर्षण, और उसकी खोजबीन । सौतेली माँका अपनी पुत्रियोंको रानी बनानेका निष्कल प्रयास । अन्ततः सौतेली लड़कीका भाग्योदय और राजमहलकी रानीके रूपमें प्रवेश ।

ये समस्त तत्त्व प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाके द्वितीय भागमें विद्यमान हैं, और जो भेदकी बातें हैं, वे भारतीय और यूरोपीय सभ्यता व संस्कृतिके बीच भेदसे सम्बन्ध रखती हैं । यूरोपीय कथाओंमें धनिकने अपनी पूर्व पत्नीकी मृत्यु होने पर एक ऐसी महिलासे विवाह किया, जिसकी पहलेसे ही दो पुत्रियाँ थीं । यह बात भारतीय स्वस्थ परम्पराके अनुकूल नहीं । अतएव यहाँ दूसरा विवाह हो जानेके पश्चात् एक पुत्री उत्पन्न होनेकी बात कही गयी है । उसी प्रकार राजोत्सवका आयोजन, उसमें उन कन्याओंका जाना व राजकुमारके साथ नृत्य करना, तथा जूतीके द्वारा राजकुमारको सच्ची प्रेयसीका पता लगाया जाना, यह सब भी यूरोपीय परम्पराके अनुकूल है, भारतीयताके अनुकूल नहीं । दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि यूरोपीय दोनों कथाओंमें उस सौतेली कन्याके दुर्भाग्यको पलटनेके लिए बहुत कुछ दैवी चमत्कारका आश्रय लिया गया है । किन्तु उक्त भारतीय कथानकमें कहीं भी किसी अप्राकृतिक तत्त्वकी योजना दिखाई नहीं देती । सर्वत्र ऐसी स्वाभाविकता है जो कभी भी कहीं घटित हो सकती है । यहाँ जूती-द्वारा पत्नीकी पहचान नहीं, किन्तु पत्नी-द्वारा पतिके चरण-स्पर्शसे उसकी पहचान करायी गयी है । वह भारतीय संस्कृतिका अपना असाधारण लक्षण है, जो यूरोपीय रीति-रिवाजके अनुकूल नहीं ।

उक्त सांस्कृतिक तत्त्वोंको पृथक् करके देखने पर हमें यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहता कि सम्भवतः यूरोप और भारतके बीच इस कथानकका आदान-प्रदान हुआ है । मैक्समूलर व हर्टेल आदि अनेक विद्वानोंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि भारतीय कथाओंका अटूट प्रवाह अति प्राचीनकालसे पश्चिमकी ओर प्रवाहित होता रहा है, जिसके फलस्वरूप वेदकालीन, जातकसम्बन्धी तथा पंचतन्त्र, हितोपदेश व कथासरित्सागर आदि भारतीय आख्यान साहित्यमें निबद्ध अनेक लोक-कथाएँ पाश्चात्य देशोंमें जाकर, वहाँके वातावरणके अनुकूल हेर-फेरसहित प्रचलित हुई पायी जाती हैं । उक्त यूरोपीय कथाके सबसे प्राचीन लेखक चार्ल्स परोल्टका जीवन काल सन् १६२८ से १७०३ तक माना गया है । उनसे पूर्व इस कथानकके यूरोपमें प्रचलित होनेका कोई प्रमाण हमारे सम्मुख नहीं है । इसकी तुलनामें भारतकी सुगन्धदशमी कथाकी परम्परा

अति प्राचीन है। इसका मराठी अनुवाद जिनसागर-द्वारा सन् १७२४ के लगभग, संस्कृत अनुवाद श्रुतसागर-द्वारा व गुजराती अनुवाद जिनदास-द्वारा सन् १४५० के लगभग, एवं अपभ्रंशकी मूल रचना सन् ११५० ई० के लगभग हुई पायी जाती है। अतः कोई आश्चर्य नहीं जो भारतीय अन्य कथाओंके सदृश इस कथाका भी देशान्तर-गमन हुआ हो, जिसका प्रसार-क्रम गवेषणीय है।

६. कथाका उत्तरकालीन प्रभाव

सुगन्धदशमी कथाका प्रभाव उससे उत्तरकालीन कथा-साहित्यपर पर्याप्त मात्रामें पड़ा दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ—हरिभद्रकृत सम्मत्तसत्ति (सम्यक्त्वसप्तति) नामक ७० गाथात्मक एक रचना है, जिसपर गुणशेखर सूरिके शिष्य संघतिलक सूरिने वि० सं० १४२२ (सन् १३६५) में एक सुविस्तृत टीका लिखी है। इस टीकामें उदाहरण रूपसे बीस कथाओंका समावेश पाया जाता है, जिसमें देव-गुरु वैयावृत्यके उदाहरणमें 'आरामसोहा' नामक प्राकृत गद्यात्मक कथा (सूरियपुर, वि० सं० १९९७) यहाँ ध्यान देने योग्य है—

चम्पा नगरीमें कुलधर नामक सेठ और उसकी कुलानन्दा पत्नी रहते थे। उनके कमलश्री आदि सात पुत्रियोंके पश्चात् आठवीं कन्या उत्पन्न हुई। उस समय सेठकी सम्पत्ति नष्ट हो जानेसे वे दुखी रहते थे। इसीसे इस कन्याका नाम निर्भगा पड़ गया। युवती हो जाने पर भी उसके विवाहका सेठ कोई प्रबन्ध नहीं कर पाता था जिससे वह चिन्तित रहने लगा। अकुस्मात् एक दिन कोई नवागन्तुक उनके द्वारपर कुछ पूछताछके लिए आ उपस्थित हुआ। सेठने उसे लोभ देकर अपनी पुत्रीसे विवाह करनेके लिए राजी कर लिया। वह चोल देशसे आया था, अतः वहीं जानेके लिए सेठने उसे अपनी पुत्रीसहित केवल मार्गके लिए कुछ सम्बल देकर बिदा किया। उज्जैनमें आकर उसने विचार किया कि उनके पास मार्गमें दोनोंके खाने-पीने योग्य सामग्री नहीं है। अतः वह अपनी वधूको वहीं सोती छोड़ वहाँसे चल दिया। लगने पर निर्भगा विलाप करने लगी। उसी समय मणिभद्र सेठने वहाँ पहुँच कर उसे आश्वासन दिया और अपने घर ले आया। यहाँ वह घरका काम-काज तथा मन्दिरमें धर्म कार्य बड़ी श्रद्धापूर्वक करने लगी। मन्दिरका सूखा उद्यान भी उसने अपने परिश्रमसे हरा-भरा कर लिया। अन्ततः मरकर वह स्वर्गमें गयी।

स्वर्गमें अपनी आयु पूर्ण कर निर्भगा भारतवर्षमें कुसट्ट देशवर्ती 'बलासज' नामक ग्राममें अग्निशर्मा ब्राह्मणकी पत्नी अग्निशिखाके गर्भसे विद्युत्प्रभा नामक कन्या उत्पन्न हुई। आठ वर्षकी आयुमें उसकी माताका देहान्त हो गया, और उस छोटी सी बालिकाके ऊपर ही घरका सब काम-काज आ पड़ा। उसका बोझ हलका करनेके निमित्त पिताने दूसरा विवाह किया, जिससे एक और कन्याका जन्म हुआ। यह विमाता विद्युत्प्रभासे अच्छा व्यवहार नहीं करती थी। अतः उसका भार हलका नहीं हुआ, बल्कि दुगुना हो गया, जिससे कन्या अपने दुर्भाग्यको दोषी ठहराने लगी। एक दिन वह सदैवकी भाँति अपनी गौओंको चराने ले गयी थी। मध्याह्न हो गया, और वह ऐसे स्थानपर पहुँच गयी जहाँ वृक्षकी छाया भी उपलब्ध नहीं थी। वह थक कर धूपमें ही लेट गयी। उसी समय एक काला नाग वहाँ आ पहुँचा, जिसने मानवी भाषामें उसे जगाया, और अपना पीछा करने वाले गारुडिकसे रक्षाके लिए अपनी गोदमें आश्रय देनेकी प्रार्थना की। कन्याने वही किया। गारुडिकोंके चले जानेके पश्चात् उस नागने अपना दिव्य रूप प्रकट किया, और कन्यासे वरदान माँगनेको कहा। उसने केवल गौओंको चरानेकी सुविधाके लिए अपने ऊपर छाया प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। नागदेवने उसके ऊपर एक सुन्दर उद्यानका निर्माण किया जो उसके साथ-साथ उसकी इच्छानुसार गमन करे। इसके अतिरिक्त उसने यह भी वरदान दिया कि जब भी उसपर कोई विपत्ति पड़े, या साहाय्यके लिए उसका स्मरण करे, तभी वह आकर उसकी रक्षा व इच्छापूर्ति करेगा। इन वरदानोंसे उसके दिन सुखपूर्वक बीतने लगे।

एक दिन विद्युत्प्रभा गौओंको चराकर मध्याह्नमें उसी माया-उद्यानकी छायामें विश्राम कर रही थी,

तभी पाटलिपुत्रका राजा जितशत्रु विजय-यात्रानिमित्त अपनी चतुरंगिणी सेनासहित वहाँसे निकला, और उस सुन्दर उद्यानमें ही अपना पड़ाव डालकर विश्राम करने लगा। सैन्यके कोलाहलसे जाकर कन्या अपनी गौओंको देखने चल पड़ी। उसके साथ वह उद्यान भी चल पड़ा। इस आश्चर्यसे प्रभावित होकर राजा व उसके मन्त्रीने परामर्श कर उससे पूछताछ की, और उसका समस्त वृत्तान्त जानकर उसके पिताको बुलाकर, उसकी अनुमतिसे उस कन्याके साथ अपना विवाह कर लिया। उद्यानके अतिशयके प्रसंगसे राजाने अपनी इस नयी बधूका नाम आरामशोभा रखा।

अपनी सौतेली पुत्रीके इस सौभाग्यसे उसकी विमाताके चित्तमें ईर्ष्या और विद्वेषकी अग्नि भड़क उठी और उसने सोचा कि यदि किसी प्रकार उसकी मृत्यु हो जाये, तो राजा उसकी औरस कन्याको ही कदाचित् अपनी रानी बना ले। इस आशासे उसने विष-मिश्रित मोदक बनाये, और इन्हें अपने पतिके हाथों आरामशोभाको खानेके लिए भेजा। किन्तु मार्गमें जब वह विश्राम कर रहा था, तब उस नागदेवने इस वृत्तान्तको जानकर, उन विषमय मोदकोंके स्थान पर अमृत मोदकोंसे उस पात्रको भर दिया। उन मोदकोंको राजभवन में बड़ी प्रशंसा हुई। घर लौटने पर उससे सब वृत्तान्त सुनकर, उसकी पत्नीको बड़ी निराशा हुई। उसने दूसरी बार हालाहल विषमिश्रित फेनियोंकी पिटारी भेजी, जिसे पूर्ववत् उस नागदेवने अमृतफेनीसे बदल दिया। तृतीय बार तालपुट विषयुक्त मांड़े भेजे गये, जो पुनः नागदेवके प्रसादसे अमृतमय होकर राजभवनमें पहुँचे। पत्नीके निर्देशानुसार इस बार ब्राह्मणने अपनी गर्भवती पुत्रीको साथ लिवा ले जानेका भी आग्रह किया। विवश होकर राजाको अनुमति देनी पड़ी। अपने पितृगृहमें आरामशोभाने पुत्रको जन्म दिया। तत्पश्चात् अवसर पाकर विमाताने उसे अपने घरके पीछेके कुएँमें डकेल दिया, और अपनी पुत्रीको राजकुमार के समीप सुलाकर उसे ही आरामशोभा प्रकट किया।

जब परिचारिकाओंने आरामशोभाको अपने सौन्दर्यादि गुणोंसे हीन देखा तो वे बहुत घबरायीं। उधर राजाकी ओर से मन्त्री आया, और राजकुमार सहित उसकी माताको पाटलिपुत्र लिवा ले गया। राजाने भी उसे अपने स्वाभाविक रूप तथा अनुगामी उद्यानसे रहित देखकर खेद और आश्चर्य प्रकट किया। पूछने पर नयी आरामशोभाने कपट उत्तर देकर प्रसंगको टाल दिया।

उधर कूपमें गिरने पर सती आरामशोभाने नागदेवका स्मरण किया। उसने तुरन्त आकर उसकी रक्षा की, और उसे वहीं पातालभवन बनाकर रखा। कुछ काल पश्चात् आरामशोभाने अपने पुत्रको देखनेकी इच्छा प्रकट की। नागदेवने उसे इस प्रतिबन्धके साथ अनुमति देकर राजभवनमें पहुँचा दिया कि यदि वह वहाँसे सूर्योदय होनेसे पूर्व लौटकर नहीं आयी तो उसके केशपाशसे एक मृतनाग गिरेगा और फिर उसे उसके दर्शन न होंगे। आरामशोभाने यह स्वीकार किया, और घात्रियोंके बीच सोये हुए पुत्रको लाड़-प्यार कर, उसपर अपने दिव्य उद्यानके पुष्पोंकी वृष्टि करके वह घर आ गयी। प्रभात होनेपर घात्रियोंने उन पुष्पोंको देख राजाको खबर दी। राजाके पूछनेपर उस बनावटी आरामशोभाने कह दिया कि मैंने ही अपने दिव्य उद्यानके पुष्पोंको अपने पुत्रपर बिखेरा है। राजाने कहा कि तुम उस उद्यानको लाकर मुझे दिखलाओ। किन्तु उसने उत्तर दिया वह उद्यान वहाँ दिनको नहीं लाया जा सकता। राजा पुनः शंकित होकर रह गया।

इस प्रकार तीन दिन बीत गये। चौथे दिन राजा सतर्क रहा और ज्योंही आरामशोभा पुत्रपर फूल बिखेर कर जाने लगी, त्योंही राजाने उसका हाथ पकड़ लिया, और उसके प्रार्थना व आग्रह करनेपर भी उसे नहीं छोड़ा, प्रत्युत समस्त वृत्तान्त जानना चाहा। विवश होकर आरामशोभाने अपनी विमाताका वह कपटजाल प्रकट कर दिया। इतनेमें सूर्योदय हो गया। और केशपाशसे मृतनाग गिरा। इसे देख आरामशोभा मूर्छित हो गयी। सचेत होनेपर उसने अपने रक्षक नागदेवका सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजाने रुष्ट होकर उसकी कपटिनी भगिनीकी बाँधकर कोड़े मारना प्रारम्भ किया, व उसके पिता और विमाताको नाक-कान काटकर देशसे निकाल देनेका आदेश दिया। किन्तु आरामशोभाने प्रार्थना कर उन

सबको क्षमा प्रदान करायो एवं अपनी भगिनीको अपने पास ही रखा ।

एक दिन आरामशोभाने अपने पतिसे कहा—नाथ मैं पहले दुःखी थी, पीछे इतनी सुखी हुई, यह किसी पूर्वकृत कर्मका परिणाम होना चाहिए । यह बात जाननेके लिए राजा-रानी उसी समय बिहार करते हुए उद्यानमें आये मुनिराज सूरिके समीप गये, और उनसे अपनी शंकाके निवारणकी प्रार्थना की । मुनिने आरामशोभाके पूर्वजन्मकी कथा सुनायी, और बतलाया कि उसने पूर्वजन्ममें मिथ्यात्वी पिताके गृहमें रहते हुए जो पाप उपार्जन किया था, उसके फलस्वरूप उसे इस जन्ममें उतना दुःख भोगना पड़ा । पीछे मणिभद्र सेठके घरमें रहते हुए उसने जो देव-गुरु-वैयावृत्य किया था, फसके जलसे उसे वे असाधारण सुखभोग प्राप्त हुए । उसने जो जिनमन्दिरका सूखा उद्यान अपने परिश्रमसे हरा-भरा कर दिया था उसके फलसे उसे वह दिव्य उद्यान प्राप्त हुआ, इत्यादि । यह सुनकर आरामशोभाको अपना जातिस्मरण हो आया और राजा-रानी दोनों ही अपने पुत्रका राज्याभिषेक कर, प्रव्रजित हो गये ।

इस कथानकमें प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाके उत्तर भागका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । आराम-शोभाके बालपनमें ही उसकी माताकी मृत्यु, पिताका दूसरा विवाह, और उससे भी एक कन्याकी उत्पत्ति, विमाताका विद्वेष, बड़ी पुत्रीका भाग्योदय व राजरानी पदकी प्राप्ति, विमाता-द्वारा उसके स्थानपर अपनी औरस पुत्रीको स्थापित करनेका छल-कपट, आदि तत्त्व वे ही हैं, जो सुगन्धदशमी-कथामें हैं । किन्तु उनके विवरण और विस्तारमें बहुत-सा भेद है, जो इस कथानकका अपना वैशिष्ट्य है । विशेष ध्यान देने योग्य यहाँ विमाताका वह प्रयास है, जिसके द्वारा आरामशोभाका विवाह हो जानेपर भी उसने उसके स्थानपर अपनी पुत्रीको रानी बनानेका कपटजाल रचा । दूसरी बात ध्यान देने योग्य है नागदेव-द्वारा आरामशोभाके भाग्योदयमें योगदान, तथा राजभवनमें आकर सूर्योदयसे पूर्व लौटने, व अन्यथा उसके नागदेवके सहयोगसे वंचित हो जाने की । ये प्रसंग पूर्वोक्त सिङ्गेला और अश्वटैलके फ्रेंच और जर्मन कथानकोंसे तुलनीय हैं, जहाँ उस सौतेली पुत्रीकी देवीने सहायता की, आधी रातसे पूर्व राजोत्सवसे लौट आनेका प्रतिबन्ध लगाया व विमाताने अपनी एक या दूसरी पुत्रीको जबर्दस्ती रानी बनानेका प्रयास किया । आश्चर्य नहीं, सुगन्धदशमीके जिस कथानकका विदेशमें प्रसार हुआ, उसमें इस कथाके उक्त तत्त्वोंका भी प्रवेश व मिश्रण रहा हो ।

७. सुगन्धदशमी-कथा : संस्कृत

संस्कृतमें वर्णित सुगन्धदशमी-कथा १६१ श्लोकोंमें पूर्ण हुई है, जिनमें अन्तके एक पद्यको छोड़कर शेष सब अनुष्टुप छन्दमें है । अन्तिम पद्यका छन्द मालिनी है । इसकी शैली साधारण कथा-प्रधान है । इसके कर्ताने अपने गुरुके नामका निर्देश रचनाके आदिमें और अन्तमें भी किया है । इससे सिद्ध है कि उसके रचयिता विद्यानन्दि यतिके शिष्य श्रुतसागर हैं । उन्होंने स्वयं अपने व अपनी रचनाके विषयमें इतना और कहा है कि वे वर्णी अर्थात् ब्रह्मचारी (देशव्रती साधु) थे, मुनि नहीं, तथा उन्होंने यह रचना अपने गुरु विद्यानन्दिके अनुरोधसे व उन्हींके उपदेशसे की थी । श्रुतसागरकी और भी अनेक रचनाएँ हैं टीकात्मक और स्वतन्त्र । इनमें यहाँ विशेष उल्लेखनीय है उनकी अनेक व्रत-कथाएँ, जैसे ज्येष्ठ-जितवर कथा, षोडश-कारण कथा, मुक्तावली कथा, मेरुपंक्ति कथा, लक्षण-पंक्ति कथा, मेघमाला-व्रत कथा, सप्तपरम स्थान कथा, रविवार कथा, चन्दनपट्टी कथा, आकाशपंचमी कथा, पुष्पाञ्जली कथा, निदुःख सप्तमी कथा, श्रावण-द्वादशी कथा व रत्नत्रय कथा । इनमें-से कुछ रचनाओंमें श्रुतसागरने अपने गुरुके आम्नायादि विषयपर कुछ अधिक प्रकाश डाला है । जैसे षोडशकारण कथामें उन्होंने कहा है—

श्री मूलसंघे विबुधप्रपूज्ये श्रीकुन्दकुन्दान्वय उत्तमेऽस्मिन् ।

विद्यादिनन्दी भगवान्बभूव स्ववृत्तसारश्रुतसारमाप्तः ॥

तत्पादभक्तः श्रुतसागराहो देशव्रती संयमिनां वरेण्यः ।

कथ्याणक तैमुहुराग्रहेण कथामिमां चारु चकार सिद्ध्यै ॥

इसपर-से जाना जाता है कि उनके गुरु विद्यानन्दि मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वयके आचार्य थे। अन्य प्रमाणोंपर-से इस आम्नायकी सूरतमें स्थापित शालाके निम्न आचार्योंका परिचय प्राप्त होता है—पद्मनन्दि देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र आदि। विद्यानन्दिने अनेक मूर्तियोंकी स्थापना करायी थी, जिनमें उनके वि० सं० १५१३ से १५३७ तकके उल्लेख मिलते हैं। उनके द्वारा सूरतमें एक पंचमेरुकी स्थापना सं० १५२६ में करायी गयी थी, जिसके चारों कोनोंपर क्रमशः पद्मनन्दि, देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दि और कल्याणनन्दिकी मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। इसपर-से श्रुतसागरका रचनाकाल वि० सं० १५३० (सन् १४७२) के आस-पास अनुमान किया जा सकता है।

यहाँ श्रुतसागरकी एक रचना प्राकृत-व्याकरण विशेष उल्लेख करने योग्य है। उनके इस व्याकरणका नाम औदार्य चिन्तामणि है, और उसपर उनकी स्वोपज्ञ वृत्ति भी है। उसके आदिमें उन्होंने कहा है—

अथ प्रणम्य सर्वज्ञं विद्यानन्दास्वदप्रदम् ।

पूज्यपादं प्रक्षयामि प्राकृतव्याकृतिं सताम् ॥

समन्तभद्रेरपि पूज्यपादैः कलङ्कमुक्तैरकलङ्कदेवै-

र्यदुक्तमप्राकृतमर्थसारं तत्प्राकृतं च श्रुतसागरं ॥

इस व्याकरणके द्वितीय अध्यायकी पुष्पिका है :—

इत्युभयभाषाकविचक्रवर्ति-व्याकरणकमलमार्तण्ड-तार्किकशिरोमणि-परमागमप्रवीणसूरिश्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्र-
शिष्य-मुमुक्षुविद्यानन्दिभट्टारकान्तेवासि-श्रीमूलसंघपरमात्मविद्वत्सूरिश्रुतसागर-विरचिते औदार्यचिन्तामणिनाम्नि
स्वोपज्ञवृत्तिनि प्राकृतव्याकरणसंयुक्ताव्ययनिरूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

यहाँ श्रुतसागरकी उभयभाषा अर्थात् संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंकी विद्वत्ता, व्याकरणमें निपुणता तथा तर्क व आगममें प्रवीणताका उल्लेख किया गया है।

८. सुगन्धदशमी कथा : गुजराती

इस रचनाका ग्रन्थकार ने 'रास' नाम दिया है, और उसे प्रथम नमस्कार पद्यके अतिरिक्त आगे 'भासों'में विभक्त किया है। इन भासोंमें क्रमशः २१ + २२ + २२ + २८ + २३ + २४ + २२ + ४३ इस प्रकार कुल २०५ पद्य हैं। जसोधरनी, विनतिनी, चोपाइनी, रासनी, सुणो सुन्दरिनी, हेलिकी, गुणराज भासकी और चौपईनी, ये उन भासोंके नाम दिये गये हैं। चौपई तो हिन्दी पाठकोंका सुपरिचित छन्द है, क्योंकि उसीमें तुलसीकृत रामायणकी तथा अन्य अनेक प्राचीन हिन्दी काव्योंकी रचना हुई है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त चौपई भासोंका अन्त कुछ 'दूहा' पद्योंके साथ किया गया है। यह चौपई-दोहाकी शैली अपभ्रंश काव्यके पद्धतियाँ घत्ता छन्दात्मक मुसम्बद्ध कडवकोंपर-से हिन्दी आदि भाषाओंमें अवतरित हुई है। विनति और रास ये गीतोंकी दो शैलियाँ रही प्रतीत होती हैं। 'सुणो सुन्दरि' पद उस भासकी प्रत्येक पंक्तिके पद्यमें आया है। और उसी प्रकार 'हेलि' पद उस नामके भासकी प्रत्येक पंक्तिके अन्तमें आया है। इसीपर-से उन भासोंको वे नाम दिये गये हैं, जसोधरनी भास और गुणराज भासमें सम्भावित उस-उस नायकसे सम्बद्ध पूर्व सुपरिचित रचनाकी गेय शैलीका अनुकरण किया गया है, जैसे हिन्दीमें कहा जाता है—चाल आल्हाको, या चाल डोलामाहकी। इन समस्त पद्यशैलियोंको किसी वर्णात्मक या मात्रात्मक छन्दकी नियामकतामें बाँधना असम्भव है। वे तो स्वच्छन्द सजीव गेय शैलियाँ हैं, जिनका असली स्वरूप और माधुर्य तभी आँका जा सकता है, जब उन्हें किसी गायकके मुखसे सुना जाये।

इस रासके रचयिताने आदिके पद्यमें, तथा दूसरी, पाँचवीं, छठी और नवमी भासके अन्तमें, अपना नाम ब्रह्म जिनदास अंकित किया है। इससे स्पष्ट है कि वे मुनि नहीं, ब्रह्मचारी साधु थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने रचनाके आदि और अन्तमें अपने दो गुरुओंके नाम सकलकीर्ति और भुवनकीर्ति प्रकट किये हैं।

यद्यपि उन्होंने अपनी इस रासमें इन गुरुओंकी संघ व मण-गच्छादि परम्पराका तथा रचना कालका कोई उल्लेख नहीं किया, तथापि अन्वय प्राप्त उल्लेखोंके द्वारा उनका पता सुलभतासे लग जाता है। सकलकीर्ति और उनके शिष्य भुवनकीर्ति मूलसंघ, बलात्कार गणकी ईडर (गुजरात) में स्थापित शास्त्राके आदि भट्टारक थे। जिनके उल्लेख मूर्तियों और ग्रन्थोंमें संवत् १४९० से १५२७ तकके मिले हैं। स्वयं जिनदासने अपनी एक रचना—रामायणरासमें सं० १५२० का उल्लेख किया है। इसपर-से सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उनका प्रस्तुत रचना भी इसी काल अर्थात् सन् १४५० ई० के आस-पास लिखी गयी होगी।

ब्रह्म जिनदासकी रचनाओंका भाण्डार विशाल है। प्रस्तुत ग्रन्थके अतिरिक्त उनके २. रामायण, ३. हरिवंश, ४. सुकुमाल, ५. चारुदत्त, ६. ओपाल, ७. जीवन्वर, ८. नागश्री, ९. धर्मपरीक्षा, १०. अम्बिका, ११. जम्बूस्वामी, १२. यशोधर, १३. नागकुमार, १४. जोगी, १५. जीवदया, १६. पंचपरमेष्ठी, १७. आदिनाथ, १८. श्रेणिक, १९. करकण्ठ, २०. प्रद्युम्न, २१. धनपाल, २२. हनुमत्, २३. आकाशपंचमी, २४. निर्दोष सप्तमी, २५. कलश दशमी, २६. अनन्त चतुर्दशी, २७. षोडश कारण, २८. दशलक्षण, २९. चन्दनपष्टी, ३०. भद्रसप्तमी, ३१. लब्धिविधान, ३२. अष्टाङ्गिक, ३३. पुष्पाञ्जलि, ३४. श्रावणद्वादशी, ३५. पुरन्दर, ३६. ध्रुतिस्कन्ध नामक रास व कथानक पाये गये हैं। इनके अतिरिक्त भी उनकी पूजा-पाठविषयक अनेक रचनाएँ हैं। ब्रह्म जिनदासकी इन रचनाओंमें अपभ्रंशसे आधुनिक भाषाओं गुजराती, मराठी, हिन्दी आदिके विकास तथा काव्य शैलियाँ गीतों और छन्दोंके प्रादुर्भावको समझनेकी प्रचुर सामग्री विद्यमान है।

ब्रह्म जिनदासके कुछ शिष्यों और उनकी भी साहित्यसेवाके कुछ प्रमाण मिलते हैं। उन्होंने अपने रामायण-रास व हरिवंश-रासमें ब्रह्म मल्लिदास और गुणदास नामक शिष्योंका उल्लेख किया है। यथा —

शिष्य मनोहर रुक्मा ब्रह्म मल्लिदास गुणदास ।

पढ़ो पढ़ावो विस्तरे जिम होइ सौख्य निवास ॥

इनमें-से गुणदासने मराठीमें श्रेणिक चरित्रकी चार अध्यायों व ओबो छन्दमें रचना की। उसमें कहा गया है—

शिष्यु सकलकीर्ति देवाचा । तो जिनदासु गुरु आमुचा ॥

प्रसाहु लाघला त्याचा गुरादासे खा ॥ (अ० ४, ओ० ९५)

जिनदासके एक अन्य शिष्य शान्तिदासने अपभ्रंश, गुजराती व संस्कृत मिश्रित पूजापाठविषयक अनेक ग्रन्थ रचे। शान्तिनाथ पूजाके अन्तमें वे कहते हैं —

मया श्रुत्वा गुरुः पार्श्वे हास्यहेतु निवेदयन् । ब्रह्मश्री जिनदासेन आश्वासनं ददौ मम ॥

पूज्यपादकृतं स्तोत्रं श्रुतसिन्धुकृताष्टकम् । आशाधरोक्तमवगाह्य ग्रन्थमेतं मया कृतम् ॥

उस समयकी चालू संस्कृतका यह एक नमूना है।

मुद्रित पाठका संशोधन सेनगण दिगम्बर जैन मन्दिरके शास्त्र भण्डारसे उपलब्ध तीन हस्तलिखित संग्रह प्रतियों पर-से किया गया है। तीनों प्रतियोंमें और भी अनेक रचनाएँ हैं। तीनों प्रतियोंके पाठभेद भी यहाँ अंकित किये गये हैं। इन प्रतियोंका विशेष परिचय इस प्रकार है—

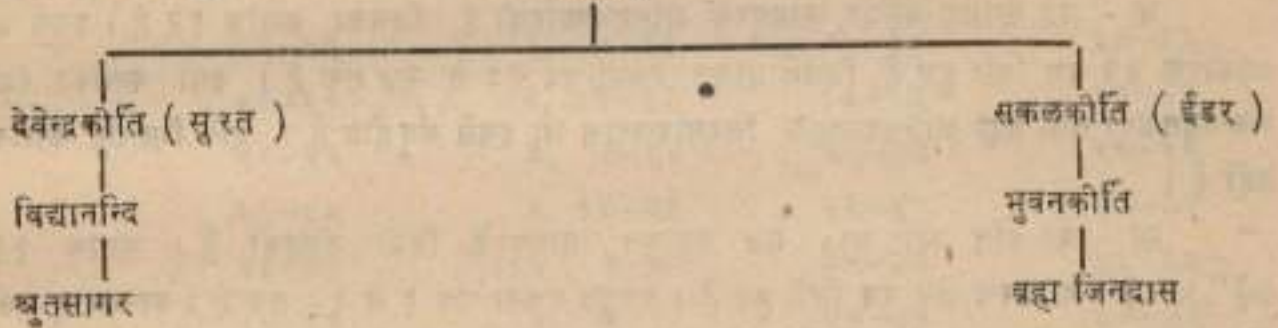
अ—क्रमांक ३। इसमें ९" × ७" आकारके १७१ पत्र सिले हुए हैं जिनमें प्रस्तुत कथा पत्र ११ से २२ तक पायी जाती है। यहाँ इसी कर्ताकी अन्य कथा-रचनाएँ हैं — आकाशपंचमी, निर्दोषसप्तमी, कलश दशमी, अनन्तव्रत, चन्दनपष्टी, षोडशकारण, दशलक्षण, अम्बिका, सुकुमाल रास व चारुदत्त रास। अन्य रचनाएँ हैं — ज्ञानसागरकृत द्वादशी व्रतकथा, विमलकीर्तिकृत आराधना व मेधराजकृत जसोधर रास (मराठी)। प्रारम्भिक वाक्य है — 'अथ सुगन्धदशमी कथा प्रारम्भते', तथा अन्तिम वाक्य है — 'इति सुगन्धदशमी रास कथा सम्पूर्ण समाप्त'। भासशीर्षक और विराम चिह्न लाल स्याहीमें लिखे गये हैं, और शेष भाग काली स्याहीमें। लेखन-कालका निर्देश नहीं है।

ब—क्रमांक २१। इसमें १०" × ६" आकारके ५९० पत्र सिले हुए हैं जिनमें प्रस्तुत कथा पत्र ५५७ से ५६९ तक पायी जाती है। यहाँ अन्य रचनाएँ संकलित हैं—वनारसीविलास, सुमतिकीर्तिकृत धर्मपरीक्षा रास, सामुद्रिक लक्षण व माधवानल। तथा स्वयं जिनदासकृत रचनाएँ हैं—श्रीपाल रास, नागकुमार रास व आकाशपंचमी, निर्दोषसप्तमी, कलशदशमी, सोलहकारण, पुष्पांजलि व चन्दनपट्टी—ये कथाएँ। अन्तिम पुष्पिका-वाक्य है—हे पोथी पठनार्थ साधजी नेमासा तथा पुत्र गौरासा व आम्बुसा मालवि वास्तवे खोलापुर सुभं भवतु। सके १६४१ मिति अधिक सुद चौदस १४। लेखनार्थ अर्धवक शैव सेनगण। शुभं भवतु।

स—क्रमांक १९। इसमें ७" × ६" आकारके २९६ पत्र सिले हुए हैं जिनमें प्रस्तुत कथा पत्र २१५ से २३६ तक पायी जाती है। अन्य रचनाएँ हैं—अष्टाह्निका, सोलहकारण, दशलक्षण, चन्दनपट्टी, लब्धिदत्त, लब्धिविधान, निर्दोषसप्तमी, आकाशपंचमी, श्रीपाल, नागपंचमी, मोडसप्तमी, श्रुतस्कंध, पुरन्दर, अम्बिका, षट्कर्म, पुष्पांजलि, कलशदशमी, अनन्त, होली और श्रावण द्वादशी। लेखन-कालका निर्देश नहीं है।

संस्कृत कथाके रचयिता श्रुतसागर और गुजराती कथाके लेखक ब्रह्म जिनदासकी जो गुरुपरम्पराएँ ऊपर बतलायी गयी हैं उनसे एक पोढ़ी और ऊपर जानेपर वे एक ही गुरुसे जुड़ जाती हैं। यह बात निम्न वंशवृक्षसे स्पष्ट हो जाती है—

पारम्परिक — आचार्य श्री सुविधित्तामर जी महाराज गन्धनन्दि



६. सुगन्धदशमी कथा : मराठी

मराठी भाषामें निबद्ध सुगन्धदशमी कथामें कुल १३६ पद्य हैं। इनकी रचना विविध छन्दोंमें हुई है, जो इस प्रकार है—उपेन्द्रवज्रा ४२, भुजंगप्रयात ३८, रथोद्धता २१, स्वागता ८, शालिनी ६, उपजाति ६, वार्दूलविक्रोडित ५, मालिनी ४, कलहंसा २, वसन्ततिलका १, सर्वया १, द्रुतविलम्बित १, शिखरिणी १। इन छन्दोंके नाम जहाँ वे आये हैं स्वयं मूलमें ही दिये गये पाये जाते हैं, और उन्हींके अनुसार इस रचनाका प्रकरण-विभाग हुआ है। इस प्रकार यह मराठी कविता संस्कृत छन्दोंमें निबद्ध है।

ग्रन्थकारने ग्रन्थके अन्तमें प्रकट किया है कि वे देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य जैनादिसागर अर्थात् जिनसागर हैं। यद्यपि देवेन्द्रकीर्ति नामके अनेक आचार्य हुए हैं, तथापि जिनसागरकी अन्य अनेक रचनाओंमें जो उनका स्थान व काल-निर्देश पाया जाता है, उसपर-से वे कारंजाकी मूलसंघ बलात्कारगण शास्त्राके देवेन्द्रकीर्ति तृतीय सिद्ध होते हैं, जिनका भट्टारक काल संवत् १७५६ से १७८६ तक पाया जाता है। जिनसागरकी आदित्य व्रतकथाकी रचना कारंजा (जि० अकोला, बरार) में शक १६४६ में हुई थी। उनकी जिनकथा भी कारंजामें ही शक १६४९ में पूर्ण हुई थी। पुष्पांजलि कथाका रचनाकाल शक १६६०, तथा जीवन्धर पुराण का शक १६६६ निर्दिष्ट पाया जाता है। इस प्रकार १८वीं शती ईसवीका मध्यभाग उनका रचनाकाल सिद्ध होता है। कुछ रचनाओंमें उनके रचनास्थल शिरड (जि० परभणी) का उल्लेख है। उक्त रचनाओंके अतिरिक्त उनकी निम्नलिखित कृतियाँ पायी गयी हैं—अनन्तव्रतकथा, लवाकुश कथा, कलशदशमी व सप्तमी कथा, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ, पद्मावती व क्षेत्रपाल स्तोत्र, पंचमेरु, ज्येष्ठजिनवर, नवग्रहपूजा, दशलक्षण,

महावीर, पद्मावती व षोडशकारण आरती । इन रचनाओंमें जो रचनास्थलोंका उल्लेख आया है, उसपर-से कवि विदर्भप्रदेशवर्ती सिद्ध होते हैं ।

स्वभावतः जिनसागरकी भाषामें वैदभी मराठीकी अनेक विशेषताएँ दिखाई देती हैं । उदाहरणार्थ प्रस्तुत ग्रन्थमें (११) कां म्हणूनके लिए काम्हुनि (११) म्हणूनके लिए म्हुनि (५७) दुकानाहूनके लिए दुकानूनि (६६) सर्वनामोंके स्त्रीलिंगी रूप एकारान्त-जैसे जे एकता (जो एकता) बोलेचना ते (बोलेचना तो) आशार्थ क्रियाके दीर्घतर रूप, जैसे — वदवीस (वदव) जाई (जा), साखरका उच्चारण साकर, अनु-स्वारोंका प्रयोग कम मात्रामें आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो आज भी विदर्भकी बोलीमें प्रचलित हैं ।

कारक विभक्तियोंमें यहाँ प्राचीनताके लक्षण दिखाई देते हैं । जैसे शारदेसी (शाददेला दि०), चमरें (चमराने तू०) दुकानूनि (दुकानाहून पं०) सिहासनीं (सिहासनावर स०) भोजना लागि (भोजना करता च०) मनाभाजि (मनांत स०) । यहाँ स्पष्टतः हमें अपभ्रंशकी प्रवृत्तियों तथा परसर्गोंके प्रादुर्भावका दर्शन होता है । शब्दावलिमें भी गंगावन (वेणी), निवाडी (निर्णय), कूड (कूट-क्रोध), बीजा (बादरसे), घाला (तृप्त), ओटीत (आंचलसे), विराली (उद्धिग्न), सेजारिनो (पड़ोसिनें), मलवट (कुंकुमकी रेखा) आदि शब्दोंमें देशी प्रभाव दिखलाई पड़ता है । सामान्यतः रचना सर्वत्र ही संस्कृत व अपभ्रंशसे प्रभावित है ।

ग्रन्थके संशोधनमें तीन हस्तलिखित प्रतियोंका उपयोग किया गया है जो इस प्रकार हैं —

क — यह सेनगण मन्दिर, नागपुरके शास्त्रभण्डारकी है, जिसका क्रमांक १२ है । इसमें ७" × ६" आकारके ३२ पत्र सिले हुए हैं, जिनमें प्रस्तुत रचना पत्र १३ से २४ तक है । इसी कर्ताकी जिनकथा व अनन्तव्रतकथा तथा ब्रह्म शान्तिदासकृत निरमाइलरास भी इसमें संगृहीत हैं । प्रति लेखनके कालका निर्देश नहीं है ।

ख — यह प्रति श्री भा० स० महाजन, नागपुरके निजी संग्रहकी है । क्रमांक ११ । इसमें ७½" × ५½" आकारके ७२ पत्र सिले हुए हैं । प्रस्तुत रचना पत्र १ से १२ तक है । तत्पश्चात् इसी लेखककी आदित्यव्रत और अनन्तव्रत कथा, तथा वृषभकृत नववाड, मेघराजकृत भरतक्षेत्र विनति, कान्हासुत कमलकृत बलभद्र विनति, महीचन्द्रकृत कालीगोरी वाद तथा पद्मावती, सहस्रनाम, इन रचनाओंका संग्रह है । इनके अतिरिक्त पद्मावती, वृषभनाथ, चन्द्रनाथ, पार्श्वनाथ, सिद्ध तथा मुक्तागिरिके पूजापाठ भी यहाँ सम्मिलित हैं । लेखनकालका निर्देश नहीं है ।

ग — यह प्रति भी सेनगण भण्डार नागपुरकी है, और बड़ी महत्वपूर्ण है । इसमें १०½" × ६" आकारके २३ पत्र (४६ पृ०) हैं, जिनमें कथावर्णनके साथ-साथ विविध प्रसंगोंके रंगीन चित्र भी हैं । आश्चर्य नहीं जो यह लेखन और चित्रण स्वयं ग्रन्थकर्ताका हो । इस सम्पूर्ण प्रतिके चित्र यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं । उनका वर्णन भी अन्यत्र दिया जा रहा है ।

१०. सुगन्धदशमी कथा : हिन्दी

हिन्दी सुगन्धदशमी कथाकी रचना दोहा-चौपाई छन्दोंके १४३ पद्योंमें हुई है । चौपाइयोंके बीच-बीचमें दोहे आये हैं, किन्तु उनको संख्यामें एकरूपता नहीं है । उदाहरणार्थ आदिमें आठ चौपाइयोंके पश्चात् एक दोहा आया है । फिर पन्द्रह चौपाइयों (१०-२४) के पश्चात् दो दोहे आये हैं । फिर छह चौपाइयोंके पश्चात् एक दोहा है । इस प्रकार अक्रमसे रचनामें कुल एक सौ इक्कीस चौपाइयाँ और उन्नीस दोहे हैं । बीचमें तीन पद्य (६७-६९) चौदह मात्रात्मक अन्य छन्दोंके हैं ।

इस कथाके रचयिताने अपना नाम ग्रन्थके अन्तमें खुशाल (खुशाल या खुशालचन्द्र) प्रकट किया है । उन्होंने वहाँ यह भी कह दिया है कि उनको इस रचनाका आधार श्रुतसागर-कृत सुगन्धदशमी कथा है । यह वही संस्कृत कथानक है, जो यहाँ भी संकलित किया गया है, और जिसका परिचय भी अन्यत्र दिया

जा चुका है। चूँकि श्रुतसागरका काल १६वीं शती सिद्ध होता है, अतः प्रस्तुत रचना उससे पदचात्कालीन है। इस कविकी और भी अनेक कृतियाँ पायी जाती हैं, जिनमें उनके रचनाकालका भी उल्लेख मिलता है, व अन्य कुछ और भी परिचय। तदनुसार उनका उपनाम काला था, और व सांगानेर (राजस्थान) के निवासी थे। उन्होंने हरिवंशपुराणकी रचना सं० १७८० में, यशोधर चरित्रकी सं० १७८१ में, पद्मपुराणकी १७८३ में, व उत्तरपुराणकी १७९९ में की थी। उनको अन्य रचनाएँ धन्यकुमार चरित्र, व्रतकथाकोश, चम्बूचरित, मोतीसी पूजापाठ आदि भी मिलती हैं। उनकी भाषामें राजस्थानी व विशेषतः जयपुरकी बूंदेली भाषाकी पुट पायी जाती है। इस रचनाका प्रस्तुत पाठ इसकी एक मुद्रित प्रतिपर-से तैयार किया गया है, जो कस्तूरचन्द छाबड़ा, भादवा (जयपुर)-द्वारा संगृहीत तथा जिनवाणी प्रेस, कलकत्ता-द्वारा दीपावली संवत् १९८६ में द्वितीय बार मुद्रित कही गयी है। इसमें प्रस्तुत सम्पादकको केवल साधारण मुद्रणादि दोषोंके संशोधनकी आवश्यकता पड़ी है।

अपभ्रंश व संस्कृत, गुजराती, मराठी और हिन्दी कथानकोंकी संगति

अपभ्रंश	संस्कृत	गुजराती	मराठी	हिन्दी
सन्धि १ कडवक				
१	३-६	१	१-३	१-९
२	१०-२२	२, १-३	४-५	१०-११
३		२, ४	६	११
४	२२-२३	२, ५-११	७-१०	१२-१३
५	२४-२५	२, १२-२१	१०-१५	१४-१९
६	२६-३६	३, १-१४	१६-२५	२०-२६
७	३६-४३	३, १५-२२	२६-३४	२७-३६
८	४३-४९	४, १-७	३५-३६	३७-३८
९	५०-५४	४, ७	४०-४२	४०-४२
१०	५५-५८	४, ८-११	४३	४३-४४
११	५९-६५	४, १२-१७	४४-४८	४४-४८
१२	६६-७३	४, १८-२२	४९-५०	४९-५८
सन्धि-२				
१	७४-८३	५, १-१३	५१-६१	५६-६६
२	८४-१०६	५, १४-२८	६१-९१	६७-८५
		६, १-२३		
		७, १-९		
३	१०७-११९	७, १०-२४	९२-९९	८५-१०३
		८, १-६		
४	१२०-२२	८, ७-९	९९	१०४-१०६
५	१२३-१३६	८, १०-१६	१००-१०५	११०-१२०
		९, १-७		
६	१३७-१४२	९, ८-१३	१०६-१११	१२१-१२६
७	१४३-१५६	९, १४-३२	११२-१२३	१२७-१४०
८	१५७-१०६	९, ३३-४१	१२४-१३५	१४१-१४२
९	१६१	९, ४२-४३	१३६	१४३

अपभ्रंश कथाका विषयानुक्रम

सन्धि—१

१

चतुर्विंशति जिनको नमस्कार, श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें तीर्थकर-द्वारा सुगन्ध-दशमी कथाका व्याख्यान । काशी देशका वर्णन । ३

२

वाराणसी पुरी, राजा पद्मारथ और रानी श्रीमती, वसन्त ऋतुका आगमन । ४

३

वसन्तका उद्दीपन और दमणियों-द्वारा गीत, नृत्य, रास चर्चरी आदि लीलाएँ । ५

आगतिक आगतिक श्री सुविधित्तान्त जी

राजाका रानियों-सहित उद्यान-क्रीड़ाके लिए प्रस्थान । मार्गमें सुदर्शन मुनिका दर्शन व रानीको घर लौटकर मुनिको आहार-दानका राजाका आदेश । ६

५

रानीका कोप व मुनिराजको कड़वी तूम्बीका आहार-दान । मुनिको पीड़ाकी उत्पत्ति । रानीका तुरन्त उद्यानगमन । देखते ही राजाकी रानीसे विरक्ति । ७

६

रानीके मुखसे दुर्गन्धकी उत्पत्ति । लौटकर राजा ने मुनिकी मूर्छाका समाचार सुना । राजाका क्रोध व रानीका परित्याग । रानीका आर्तध्यानसे मरण व भैंसकी योनिमें दूसरा जन्म, सरोवरकी कीचड़में फँसकर मरण । तीसरे जन्ममें शूकरी, चौथेमें साँभरी और पाँचवेंमें योजन दुर्गन्धा चाण्डालिनीके रूपमें जन्म । ८

७

दुर्गन्धके कारण चाण्डालों-द्वारा उसका अटवीमें परित्याग व आठ वर्ष तक फलों व पत्तोंसे उसकी जीवनवृत्ति । मुनिसंघका उस ओर विहार व गुरु-द्वारा शिष्यको उसकी दुर्गन्धके कारणका तथा उस पापसे छूटनेका उपाय बतलाना । उत्तम क्षमादि दश धर्म, पंच उदुम्बर, निशि-भोजन व मद्यपानके त्यागका उपदेश । दुर्गन्धा-द्वारा यह सुनना और उसपर श्रद्धान तथा उसके प्रभावसे अगले जन्ममें उज्जयिनीके एक दरिद्र कुटुम्बमें पैदा होना । १०

८

उसकी दुर्गन्ध कुछ कम हो गयी, जन्म होते ही माताका मरण लकड़ी, घास बेचकर जीवनवृत्ति । नगरमें मुनि-आगमन, राजा जयसेनकी दर्शन-यात्रा । दुर्गन्धा भी वहाँ पहुँच गयी । ११

९

मुनिराजके दर्शनसे दुर्गन्धाको मूर्छा, सचेत होनेपर राजाके प्रश्नके उत्तरमें अपना पूर्व वृत्तान्त-निवेदन । १२

१०

राजाके प्रश्नके उत्तरमें मुनि-द्वारा दुर्गन्धा के वृत्तान्तका समर्थन व कर्मोंके छेदके लिए सुगन्धदशमी व्रतका निर्देश । उसी बीच विमान-द्वारा ध्रुवजय विद्याधरका आगमन । मुनिराज-द्वारा सुगन्धदशमी व्रत पालन व उसके उद्यापनके उपदेशकी प्रतिज्ञा । १३

११

सुगन्धदशमी व्रत पालन विधि । —१५

१२

सुगन्धदशमी व्रतके उद्यापनकी विधि—१६

सन्धि—२

१

राजा व नगरवासियों तथा दुर्गन्धा-
द्वारा व्रतका पालन । इस पुण्यके प्रभाव-
से दुर्गन्धाका राजा कनकप्रभ-द्वारा
शासित रत्नपुरके सेठ जिनदत्तकी पुत्री
तिलकमतीके रूपमें पुनर्जन्म । उसका
सुन्दर और सुगन्ध युक्त शरीर । माता
जिनदत्तकी मृत्यु व सेठका दूसरा विवाह
और पुत्री तेजमती । —१७

२

सौतेली माँका अपनी पुत्रीका पक्षपात
और तिलकमतीसे दुर्व्यवहार । सेठका
रत्न खरीदने विदेश गमन व सेठानीको
पुत्रियोंके विवाहका आदेश । तिलकमती-
का विवाहकी रात्रिको श्मशान प्रेषण
और उसके स्थानपर तेजमतीका
विवाह । राजा कनकप्रभका श्मशानमें
जाकर तिलकमतीसे विवाह । —१८

३

प्रातः महिषीपालके रूपमें अपना परिचय
तथा प्रतिदिन रात्रिमें मिलनका आश्वा-
सन देकर राजाका प्रस्थान । सेठानी-
द्वारा उसकी खोज व लोक प्रपंच ।
सन्ध्याको राजाका वस्त्राभरण लेकर
तिलकमतीके पास आगमन । —२०

४

उसे सुसज्जित देख माताका कोप, व
उनका परिहरण । —२२

५

सेठका द्वीपान्तरसे आगमन; विवाहके
वृत्तान्तका पत्नीके मुखसे श्रवण, तथा
उन आभूषणोंको राजाके पहचान कर
राजाको निवेदन । राजा-द्वारा चोरका
पता लगानेका आदेश । पुत्रीसे सब बातें
जानकर सेठका राजाको पुनः निवेदन ।
राजा-द्वारा सेठके घर भोजका
आयोजन । —२३

६

तिलकमती-द्वारा आँखोंपर पट्टी बाँधकर
भी पैर धुलानेके मिषसे चरण-स्पर्श-द्वारा
पतिकी पहचान । राजा-द्वारा स्वयं
समर्थन, आनन्द, उत्साह और
विवाह । —२४

७

तिलकमतीका रानीके रूपमें वैभव, अन्त-
में संन्यास-द्वारा मरण; व स्त्रीलिंग
छेदकर ईशान स्वर्गमें देवोत्पत्ति । —२५

८

जिनेन्द्रका श्रेणिकको सम्बोधन व सुगन्ध
दशमी व्रतके प्रभावका वर्णन । —२६

९

सुगन्धदशमी व्रत पालनका भावना-सहित
कथा-पाठ करनेका, व्याख्यानका, सुनने
तथा श्रद्धान करने व सीखनेका
सुफल । —२७

ग्रन्थकारका आत्म-निवेदन । —२८

मुअंधदहमीकहा
[अपभ्रंश]

सुअंधदहमीकहा

पढमो संधी

पार्श्वदर्शक — आचार्य श्री सुविदित्वागम जी द्वारा

१

जिण चउवीस एवेण्णिणु हियइं धरेण्णिणु देवत्तहं चउवीसहं ।

पुणु फलु आहासमि धम्मु पयासमि वर-सुअंधदसमिहिं जह ॥

पुच्छिउ सेणिएण तित्थंकरु । कहहि सुअंधदसमि-फलु मणहरु ।

भणइ जिणिंदु णिसुणि अहो सेणिय । भव्यरयण गुणरयणनिसेणिय ।

इह जंबुदीवे सुरगिरि - समरणे । लवणायणव-परिवेढिय-रवणणे ।

तहिं भरहु वि णामे वरिसु संति । जहिं सुरवर-णर खेयर रमंति ।

तहिं कासी णामइं विसउ अत्थि । जहिं सहिं चल जूह भमंत हत्थि ।

जहिं सरवर कमलालय हसंति । रहिं सण्णह रह - चकइं धरंति ।

जहिं सरिउ पवर पाणिय सहंति । सुलिणि-करवालहिं अणुहरंति ।

५

हिन्दी अनुवाद

१

चौबीसों जिन भगवान्को नमस्कार करके तथा चौबीस देवताओंको हृदयमें धारण करके मैं श्रेष्ठ सुगन्धदशमी व्रतका जो फल होता है उसका व्याख्यान करते हुए धर्मका स्वरूप प्रकाशित करता हूँ ।

राजा श्रेणिकने चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीरसे पूछा 'हे भगवन् ! सुगन्धदशमी व्रतके पालनका जो फल होता है उसका कथन करनेकी कृपा कीजिए ।' श्रेणिक नरेशका यह प्रश्न सुन कर भगवान् महावीर जिनेन्द्र बोले—हे श्रेणिक ! तुम भव्य जीवोंमें श्रेष्ठ और गुणरूपी रत्नोंके निधान हो । अतः तुम्हें मैं सुगन्ध दशमी व्रतके फलकी कथा सुनाता हूँ । तुम ध्यान लगाकर सुनो ।

सुरगिरिके समान, लवण-समुद्रसे वेष्टित तथा रमणीक इस जम्बूद्वीपमें भरत नामक देश है, जहाँ उत्तम देव, मनुष्य व खेचर सभी रमण करते हैं । इस भरत क्षेत्रमें काशी नामक प्रदेश है जहाँ हाथियोंके झुण्ड विचरण करते हैं, और जहाँ सरोवर कमल-पुष्पोंसे शोभायमान हो रहे हैं । वे चक्रवर्त्तियोंको धारण करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे रथी अपने रथोंके चक्रोंको धारण किये हों । इस प्रदेशकी सरिताओंमें प्रचुर पानी बहता रहता है और इस प्रकार वे उन शूल व

जहि सरसइं सुअ-चुंबिय घणाइं । मुहकमल पुरंधिहि जिह वणाइं । १०
 जहि सघणाइं पयपूरइं सहंति । गामइं जलहरहं वि अणुहरंति ।
 जहि कंसदलण-लंगलकराइं । पामरइं व हरि-बल-सगिणहाइं ।
 जहि तिलय-सालिवर-संजुआइं । छेत्ताइं व कामिणि णं थियाइं ।
 जहि मुह-मइलणु थड्डिम थणाहं । करपीडणु ताहं जि णउ जणाहं ।
 चवलत्तणु जहि तिय-लोयणाहं । मउ कलहु वि कुंजर-साहणाहं । १५

घत्ता—तहो देसहो मज्जे पसिद्धिया पुरि वाणारसि थिय पवर ।

परिहा-पायारहि परियरिय धयमालालंकरियधर ॥ १ ॥

२

बहुवण रेहइ णं भड-संगरु । जोह-कुडुंबु व दाविय-वरसरु ।
 वर-धवलहर-जुत्त कइलासु व । चोर-कुडुंबु व थिय वइवेसुव ।
 रेहइ सरु जिह सउणावासिय । काणणु जिह वर-कइहिं णिवासिय ।

कृपाणधारी वीराङ्गनाओंका अनुसरण करती हैं जिनके शस्त्रोंकी धारें खूब पानीदार अर्थात् पैनी हैं । वहाँके सघन वन-उपवन सरस फलोंसे व्याप्त हैं जिनका शुक चुम्बन करते हैं; जिस प्रकार कि वहाँ की पुरनारियोंके मुखकमल लावण्ययुक्त हैं जिनसे वे अपने पुत्रोंके मुखोंका खूब चुम्बन करती हैं । उस प्रदेशके ग्राम धन-धान्य तथा जलसे परिपूर्ण होते हुए शोभायमान हैं और इस प्रकार वे वहाँके इन्द्रधनुष और पयसे पूर्ण जलधरों अर्थात् मेघोंकी समानता करते हैं । वहाँके ग्रामीण किसान जब अपने काँसके खेतोंको जोतनेके लिए हलोंको हाथमें लेकर चलते हैं तब वे विष्णु और हलधर (बलभद्र) के समान दिखाई देते हैं । वहाँके खेतोंमें तिलक नामक वृक्षों तथा उत्तम शालिधानकी प्रचुरता होनेसे वे वहाँकी उन कामिनी स्त्रियोंकी तुलना करते हैं जो भालमें तिलक दिये हुए हैं और अपने वरों अर्थात् पतियोंके सहित सुखसे रहती हैं । वहाँ मुखकी मलिनता, कठोरता एवं करपीडन तो केवल स्त्रियोंके स्तनोंमें देखे जाते हैं न कि जनतामें । उसी प्रकार वहाँ चपलता केवल स्त्रियोंके लोचनोंमें पाई जाती है और मद व कलह केवल सेनाके हाथियोंमें, न कि लोक-समूहमें ।

इस प्रकारके उस सुन्दर, समृद्ध और सदाचरणशील (काशी देशमें सुप्रसिद्ध और विशाल वाराणसी नगरी है जो परिखा और प्राकार अर्थात् पुरीकी रक्षाके निमित्त बनाई हुई खाई और कोटसे सुसज्जित है) वहाँके घर ध्वजा मालाओंसे अलंकृत रहते हैं ॥१॥

२

वह नगरी अपने अनेक वनोपवनोंसे ऐसी शोभायमान है जैसे योद्धाओंका युद्ध व्रण अर्थात् शस्त्राघातोंसे परिपूर्ण होता है । वहाँ जो उत्तम सरोवर दिखाई देते हैं उससे वह नगर शरोंसे सुसज्जित योद्धाओंके समूहके समान प्रतीत होता है । वहाँके धवलगृहोंके द्वारा नगर कैलाश पर्वत-सा दिखाई देता है । वहाँ व्रतियोंके वेश्म अर्थात् धार्मिक लोगोंके घर स्थित हैं, अतः वह चोरोंके कुटुम्बके सदृश हैं जो बिना घर-द्वारके रहते हैं । शकुन अर्थात् पक्षियोंसे परिपूर्ण वहाँका सरोवर ऐसा सुन्दर दिखाई देता है मानो वह शकुनों अर्थात् शुभ सूचनाओंका घर ही हो । वहाँ उत्तम कवियोंका निवास देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कवियों अर्थात् बन्दरोंसे बसा हुआ कोई वन ही हो ।

तहिं शिउ पोमणाहु विक्खाइउ । रां सइं सग्गहु इंदु पराइउ ।
 रां अरि-करिहिं जोह पंचाणणु । रां लच्छी सणाहु णारायणु ।
 तहो पिय सिरिमइ सिरि-अग्गेसरि । रां हिमवंतहो गंग महासरि ।
 रां पोमावई वि धरणिदहो । हरहो गउरि जिम रोहिणि चंदहो ।
 तउ तहो पिययमएहिं पहाणिय । जिम दहमुह मंदोदरि राणिय ।
 तहिं जा ते समु रज्जु करंतउ । ताम वसंतमासु संपत्तउ ।

घत्ता—कल-कोइल-सदहिं महुअरबिदहिं रां आलावणि वज्जइ ।

१०

सुअपढणसहासहिं बहुविहभासहिं णडु वसंतु रां गज्जइ ॥२॥

३

रे रे एहु जणु णच्चइ रा काई । मइं विणु उगिरणाय-चित्तु णाई ।
 विणु मेहहिं को सरवर भरेइ । विणु सुहडहि को संगरु करेइ ।
 विणु कइहिं णिबंधइ को वि-कवु । जिणदेवहं विणु को कहइ दब्ब ।
 मइं विणु को जणु बहु भासएहिं । णच्चावइ चच्चरि रासएहिं ।
 एत्थंतरे जाणोवि जणे वसंतु । आयउ विरहिणि-सोसणु वसंतु ।
 ता तरुणिहिं पारब्भिउ सुरम्मु । मुणि-मयणुदीवणु गेयकम्मु ।

५

उस वाराणसी नगरीका सुविख्यात राजा पद्मनाथ था, जो अपने प्रभावसे ऐसा दिखाई देता था मानो स्वर्गसे स्वयं इन्द्र ही भूतल पर आ उतरा हो । वह अपने शत्रुरूपी हाथियोंके लिए सिंहके समान शूरवीर योद्धा था और अपनी राज्यलक्ष्मी सहित साक्षात् नारायण सा प्रतीत होता था । उस पद्मनाथ राजाकी प्रिय रानी श्रीमती थी जो श्री अर्थात् लक्ष्मीसे भी अधिक सुन्दर थी; मानो हिमवान् पर्वतकी स्वयं गंगा महानदी हो, धरणेन्द्र देवकी पद्मावती देवी हो अथवा शिवजीकी पत्नी गौरी व चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणी हो । श्रीमती पद्मनाथ राजाकी प्रियतम रानियोंमें प्रधान थी, जैसे दशमुख अर्थात् रावणकी रानियोंमें मन्दोदरी प्रमुख थी ।

पद्मनाथ जब श्रीमतीके साथ बनारसमें राज्य कर रहे थे, तब वसन्त मासका आगमन हुआ । उस समय कोकिलोंकी ध्वनियों और भौरोंकी गुंजारसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे आलापिनी वीणा बज रही हो । शुक अर्थात् तोतोंके सहस्रों प्रकारके पाठों और नानाविध स्वरोंसे ऐसा लगने लगा मानो वसन्त नट बनकर गरज रहा हो ॥ २ ॥

३

वह वसन्त रूपी नट क्या कह रहा था सो सुनिण—“अरे, अरे, ये लोग नृत्य क्यों नहीं कर रहे ? मानो मेरे बिना वे चित्तमें निरुत्साह हो रहे थे । बिना मेघोंके सरोवरोंको कौन भरे और सुभटोंके बिना युद्ध कौन करे ? कवियोंके बिना काव्योंकी रचना करनेवाला तथा जिनदेवके बिना द्रव्योंका कथन करनेवाला भला अन्य कौन है ? इसी प्रकार मेरे बिना विविध भाषाओंमें लोगोंको रासों सहित चर्चरी नचाने वाला और कौन रखा है ?” ऐसा समझकर ही लोगोंके बीच विरहिणी स्त्रियोंको सन्ताप उत्पन्न करनेवाला वसन्त मास आया ।

वसन्तके उत्साहमें तरुणी स्त्रियोंने सुरम्य गीत गाना प्रारम्भ किया जिससे कि मुनियोंके

क वि राखचइ जरा-संतोसयारि । क वि रास भराइ विरहिगहि मारि ।
 क वि चच्चरि देइ हरीति ताल । क वि दावइ थरा तह मिसिरा बाल ।
 क वि रासु रमइ शिय-कंत-जुत । हिंदोलइ क वि तह गीयरत्त ।
 क वि कील करइ जलि पिय-समाण । आलविय रमइ तह क वि जुवाण ।

१०

घत्ता—इय गायरजण उदीवियमण रमइ वसंतहो लीलए ।

ता शिवइ सकंतउ परियणजुत्तउ चलिउज्जाणहो कीलए ॥ ३ ॥

४

ता लयउ पसाहण राणिएहि । बहुवरण वत्थ शिव-माणिएहि ।
 मयगलि आरूढउ गारवरिदु । रेहइ अइरावइ गणइ इंदु ।
 अद्दासणे पिय उवइइ केम । तिणायणहो भडारिय गउरि जेम ।
 पहि चलिउ ससाहण शिवइ जाम । आवंतउ दिइ, मुण्डि तांम ।
 परिपालिय-सावय-वयधरेण । सम्मत्त - अडंबर-धुरधरेण ।
 शिवाहिय-अतिहिइ शिमएण । जिणधम्म-परजिय-चित्तएण ।
 दिइउ वि सुदंसण मुणिवरिदु । मयलंछणहीण अउव्व-इंदु ।
 दो-दोसा-आसा-चत्तकाउ । गणत्तय-जुत्तउ वीयराउ ।

५

मनमें भी रागका उद्दीपन हो उठे। कोई लोगोंको सन्तोषदायक रीतिसे नृत्य करने लगी, और कोई विरही जनोंको मार डालनेवाला रास कहने लगी। कोई ताल दे देकर चर्चरी नाचने लगी और कोई बाला (युवती) उसी बहाने अपने स्तनोंका दर्शन कराने लगी। कोई अपने पतिके साथ रास खेलने लगी, और कोई गीतमें मस्त होकर हिंडोला झूलने लगी। कोई अपने पतिके साथ जलक्रीड़ा करने लगी, और कोई अपने आलापों द्वारा युवकोंके मनको रमाने लगी। इस प्रकार नगर-निवासी मदोन्मत्त होकर वसन्तकी लीलामें रमण करने लगे। तब राजा पद्मनाथ भी अपनी रानी श्रीमती तथा परिजनों सहित उद्यान-क्रीड़ाके लिए निकला ॥ ३ ॥

४

उद्यान क्रीड़ाके लिए रानियोंने अपना शृङ्गार किया। राजाकी प्रियाओंने रंग-विरंगे वस्त्र धारण किये। मदोन्मत्त हाथी पर सवार हुआ नरेश ऐसा शोभायमान था जैसे इन्द्र ऐरावत पर सवार होकर निकल रहा हो। राजाके साथ अर्ध आसन पर उनकी प्रिय रानी श्रीमती बैठी ऐसी शोभायमान हुई जैसे त्रिनयन अर्थात् महादेवजीके साथ भगवती गौरी ही विराजमान हों। इस प्रकार जब राजा सजधजसे उद्यान क्रीड़ाके लिए जा रहा था, तभी उसने एक मुनीन्द्रको आते हुए देखा। राजा पद्मनाथ श्रावकके व्रतोंको धारण किये हुए थे और उन व्रतोंको भलीभाँति पालते भी थे। वे सम्यक्त्वको उसके समस्त अंगों सहित धारण करते थे और सम्यक्त्वी जीवोंमें अग्रेसर थे। वे अतिथियोंका नम्रतापूर्वक सत्कार करते थे। उनका चित्त जैन धर्मके प्रभावसे पूर्ण था। ऐसे पद्मनाथ राजाने जब उन सुदर्शन नामक मुनिवरको देखा, तो वे उन्हें ऐसे प्रतीत हुए मानो मृगरूप कलंकसे हीन कोई अपूर्व चन्द्रमा ही हो। वे मुनि राग और द्वेष इन दोनों

सव्वंग-मलेण विलित्तगत्तु ।
 परमेसरु सिरि मासोपवासि ।
 सो पेक्खवि परमाणंदएण ।
 इह पेसणजोग्गु ए अएण को वि ।
 जाएणिएण अणुराएण वुत्त ।
 लब्भइ पियमेलण भवसमुद्दे ।
 इउ सुलहउ जीवहो भवि जि भए ।
 दुलहउ सुपरादाण वि विमलु ।

चउविकहा-वरणणे जो विरत्तु ।
 गिरि कंदरे अहव मसाण वासि ।
 पभणिय पिय परमसणेहएण ।
 तो हउं मि अह व फुडु पत्तु होइ ।
 पारणउ करावहि मुणिए तुरंत ।
 वराकीलारोहण गयवरिदे ।
 दुलहउ जिणधम्म भवरावए ।
 मुत्ताहल-सिप्पिहि जेम जलु ।

१०

१५

घत्ता—तं जाएवि भावइं गुरु-अणुरायइं देहि जोग्गु जं एयहो ।

फासुअउ सुगिल्लउ भहुरु रसिल्लउ जाउ कम्म जिण एयहो ॥ ४ ॥

५

ता चलिय जंपंति ।
 कहि आउ पाविट्ठु ।
 मइ विग्घु पिययस्स ।
 वणि निविण सह जामि ।

कोवेण कंपंति ।
 एहु धिट्ठु णिविकट्ठु ।
 किउ एण भोयस्स ।
 साणंद कीलामि ।

दोषोंसे मुक्त थे, वे मति, श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञानोंके धारी और वीतरोग थे । उनका समस्त शरीर मलसे विलिप्त था (क्योंकि वे मुनियोंको निषिद्ध स्नान नहीं करते थे व उन्हें अपने शरीरका कोई मोह नहीं था) । वे राजकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा व भोजनकथा, इन चारों प्रकारकी विकथाओंसे विरक्त थे । वे मुनीश्वर (मासोपवासी थे अर्थात् एक एक मासके अन्तरसे केवल एक बार आहार करने निकलते थे, और शेष समस्त काल पर्वतकी गुफाओंमें अथवा श्मशानमें ध्यान द्वारा व्यतीत करते थे) ।

ऐसे उन परम मुनीश्वर सुदर्शनका दर्शन पाकर राजाको परम आनन्द हुआ और उन्होंने बड़े स्नेहसे अपनी प्रिय रानी श्रीमतीसे कहा—“हे प्रिये ! इस समय हमारा जो कर्तव्य है उसको निभानेकी योग्यता अन्य सेवक-सेविकाओंमें नहीं है । इसके लिए पात्र तो स्पष्टतः तुम हो अथवा मैं । अतएव तुम स्वयं जाकर धर्मानुराग सहित मुनि महाराजकी तुरन्त पारणा करा आओ । इस भवसागरमें प्रिय-मेलन, वन-क्रीड़ा, गजारोहण आदि सुख तो इस जीवको जन्म-जन्मान्तरमें सुलभ हैं; किन्तु इस भवसमुद्रमें जिन-धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ है । और उसमें भी अति दुर्लभ है शुद्ध सुपात्र दानका सुअवसर, जिस प्रकार कि मुक्ताफलकी सीपके लिए स्वाति नक्षत्रका जलबिन्दु दुर्लभ होता है । अतएव सद्भाव सहित घर जाकर खूब अनुराग सहित इन मुनि महाराजको ऐसा योग्य आहार कराओ जो प्राशुक और गीला हो, मधुर और रसीला हो जिससे इनका धर्म-साधन सुलभ हो ॥ ४ ॥

५

राजाकी यह बात सुनकर रानी कोपसे काँप उठी और यह कहती हुई घरको वापिस चली कि “यह पापी, दीठ, निकृष्ट मनुष्य इसी समय यहाँ कहाँसे आ गया ? अपने प्रियतमके साथ उद्यानमें जाकर आनन्द क्रीड़ाका जो मुझे सुख होता, उसमें इसने विघ्न उत्पन्न कर दिया”

इय चितवंतीए ।	मुणि धरिउ ता तीए ।	५
पुण दुट्ठ-रुट्ठाइं ।	पारविउ मुणि ताइं ।	
कडु हलइं दिग्गाइं ।	जे डहइं अंगाइं ।	
जिउ हरइं तुरियाइं ।	रां गिम्ह-किरणाइं ।	
तं लेवि मुणिएण ।	मणि सरिस अमिएण ।	
कडु आसियउ जाम ।	तण भमिउ तहो ताम ।	१०
चित्तिउ रा सक्केमि ।	वणि अज्जु जाएमि ।	
ता अज्जु जिण-भवणे ।	अच्छेमि अइरमणे ।	
इय चितवंतो वि ।	जिण-भवेण पत्तो वि ।	
तहि दिवसु थिउ एक्कु ।	आहारु जा पक्कु ।	
ता तेहिं सावेहिं ।	किउ विणउ तहु तेहि ।	१५
पुरि खोहु संजाउ ।	हा हा रउण्णाउ ।	

घत्ता—उत्तहे देवी तुरिय गय शिवइ-पासे जा भवणाहो ।

ता दिट्ठ एरिंदइं भत्ति तहिं विरइ जणंती शिय-मणाहो ॥ ५ ॥

६

साहरण करालिय भावियाय ।	उदिह चित्तें रायाहिराय ।
एत्थंतरे आइय शिविड जाम ।	मुहि एह दुगंधु वि पउरु ताम ।
ता एतरे पुरि पइसंतएण ।	शिसुणिउ कोलाहलु तहि शिवेण ।

ऐसी ही कुभावना मनमें धारण करती हुई रानीने मुनिको अपने साथ लिया । घर जाकर उस दुष्ट रानीने रोषसे मुनिको कडुए फलोंका आहार कराया जिनसे अंगोंमें दाह हो और जिनसे अल्पकालमें मृत्यु भी सम्भव हो, जैसे ग्रीष्मकी प्रचण्ड किरणें ।

मुनि महाराजने उस आहारको भी अमृत सदृश मानकर ग्रहण कर लिया । किन्तु उन्होंने ज्योंही वह कडुए फलोंका आहार किया त्योंही उनके शरीरमें चक्कर आने लगे । तब उन्होंने विचार किया “अब मैं आज वनको तो वापिस जा नहीं सकता । अतः आजका दिन मैं यहींके अति रमणीक जिन-मन्दिरमें व्यतीत करूँगा ।” ऐसा विचार करते हुए वे जिन-मन्दिरमें आये । वहाँ वे एक दिन रहे जिससे उनका वह आहार पच जाय । मन्दिरमें श्रावकोंने विनयसे उनकी सेवा की । समस्त नगरीमें इस समाचारसे बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और लोग हाय, हाय, करने लगे ।

वहाँ रानी मुनिके आहारको दुष्ट भावसे निपटाकर झट पुनः अपने पतिके पास उपवनमें जा पहुँची । राजाने उसे आते देखा, किन्तु उनके मनमें तत्काल उसके प्रति अरुचि उत्पन्न हो उठी ॥ ५ ॥

६

भगवान् महावीर राजा श्रेणिकसे कहते हैं—हे राजाधिराज, उस समय यद्यपि रानी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थी, तथापि वह विकराल दिखाई देने लगी, और उसके चित्तमें भी अधीरता आ गई । भवितव्यता ऐसी होती है । इसी बीच जब रानी समीप आई, तब राजाको प्रतीत हुआ कि उसके मुखसे बहुत दुर्गन्ध आ रही है । अनन्तर जब राजाने नगरमें प्रवेश किया तो उन्हें

पुच्छिउ कि जिणहरे पउरु खोहु ।
 ता एक भएण वि चविउ तेत्थु ।
 राएण वुत्तु कहि कहिउ तेण ।
 देविण तुम्हइं वि सुपेसियाइं ।
 तं सुणिवि णारिंदए कोवण ।
 जइ मारमि तो जणो तिय-पवाउ ।
 इय चिंतिवि मुक्क णिरत्थ करिवि ।
 उप्पएण म्हाइसि-कुच्छिण हवेवि ।
 बहु रिणिधिणंति सा भसियकाय ।
 सा अएणहिं दिणो तएहाइं तत्त ।
 मग्गेण मुणीसर दिट्ठ जंत ।
 ता खुत्तु खंधु पंकए मरेवि ।
 मुअ मायरि छुहइ म खीणगत्त ।
 तहिं मुअ पुण संवरि भसियकाय ।

कि चोज्जु कवणु कि को विरोहु ।
 जइ अभउ देइ णिउ कहमि तत्थु ।
 मुच्छाविउ मुणवरु परवत्तेण ।
 दिणउ अपक्कु आहारु ताइं ।
 चिंतिउ किउ सयलु अजुत्त एण ।
 अच्छइं परिहारइं दूह ठाउ ।
 वइ अणुहवेवि दुत्तए मरिवि ।
 मुअ माइरि सेइत्तइ ण कोवि ।
 किमि सिमिसिमंत दुग्गंध जाय ।
 पहे सरिहे पइड्डिय पंकि खुत्त ।
 सिरु धुणइ सकोवइ हएणचित्त ।
 उप्पएण णिवइ-सुवरि हवेवि ।
 ताडिज्जइ लोयहिं किं कियत्त ।
 पुण मुअ चंडालिहिं गम्भे जाय ।

५

१०

१५

वहाँ महान् कोलाहल सुनाई पड़ा । राजाने पूछा कि जिन-मन्दिरमें इतना क्षोभ क्यों हो रहा है ? वहाँ कोई कौतुक हो रहा है या कुछ लड़ाई-झगड़ा उठ खड़ा हुआ है । तब किसी एक नागरिकने भयभोत होते हुए राजासे प्रार्थना की “हे महाराज, यदि अभय प्रदान करें तो मैं सत्य बात कहूँ ।” राजाने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर उसे वृत्तान्त कहनेके लिए आदेश दिया । तब उसने कहा “हे महाराज, आपके द्वारा प्रेषित होनेपर रानीजीने मुनिवरको अपक्व आहार दिया, जिसके कारण परवश होकर मुनिराजको मूर्च्छा आ गई ।” यह वृत्तान्त सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया । वे विचारने लगे “इस रानीने यह बहुत ही अयोग्य कार्य किया है । यदि मैं इसे मार डालूँ तो लोगोंमें यह अपकीर्ति होगी कि राजाने स्त्रीघात किया । और इसे यों ही राजमहलमें रहने दूँ तो लोग यह दोष देंगे कि राजाने रानीके घोर अपराधके लिए उसे कोई दण्ड नहीं दिया ।” ऐसा चिन्तन करके राजाने रानीके सब वस्त्राभूषण छीन लिये और उसे निर्धन करके राजमहलसे निकाल दिया । तब रानी बड़े क्लेशका अनुभव कर आर्तध्यानसे मरणको प्राप्त हुई । पश्चात् उसने (एक भैंसकी कुक्षिमें जन्म लिया) । उसके जन्म लेते ही माताका मरण हो गया और उसका पालन करनेवाला कोई न रहा । बहुत झूंक-झूंक कर वह कुछ बड़ी हुई, किन्तु उसका शरीर नितान्त दुर्बल था । उसके शरीरमें कीड़े पड़ रहे थे जिससे उसकी दुर्गन्ध भी आने लगी । एक दिन वह प्याससे तप्त होकर एक सरोवरमें घुसी और वहाँ कीचड़में फँस गई । उसी समय उस मार्गसे एक मुनीश्वर निकले । किन्तु उन्हें देखकर वह कोपसे सिर हिलाने लगी और उन्हें मारनेकी उसे इच्छा हुई । इससे उसके कन्धे भी कीचड़में डूब गये और वह वहीं मृत्युको प्राप्त हुई ।

भैंसकी योनिसे निकलकर उस रानीका जीव, हे राजन्, एक शूकरीके गर्भमें आया । उसे जन्म देनेवाली शूकरीका शीघ्र ही मरण हो गया और यह भूख प्याससे क्षीण-शरीर हो गई । लोग उसको मनमाना मारने पीटने लगे । निदान वह मरणको प्राप्त हुई ।

(शूकरीकी योनिसे निकलकर पुनः उस रानीका जीव साँभरी (मृगी) की योनिमें आया ।

घत्ता—गम्भत्थहे मुउ चंडालु तहे मायरि पुण जम्मंतियहे ।
जोयण दुग्गंधु सरीरहो वि आवइ फुडु तहे तीयहे ॥ ६ ॥

७

असहंतहिं चंडालहिं दुग्गंधु ।	चिंतिउ किं किज्जइ पडिणिबंधु ।	
कुडु एकइ बहुअहं होइ दुक्खु ।	तो किज्जइ जरि एतहिं जि सोवत्तु ।	
इम जंपिवि अडविहि रोइ मुक्क ।	वरिसट्ठ जाम ता तहिं मि थक्क ।	
पिप्पल पिलिखिणि उंबर फलाइं ।	भक्खइ आलुंवरि सदलाइं ।	
एत्थंतरे केण मुणीसरेण ।	गुरु पुच्छिउ सविणय गुअसिरेण ।	५
परमेसर पूरिय-णासरंधु ।	कहिं आवइ एहु अइसय-दुग्गंधु ।	
मुणि पभणइ णिय-हिय-कोवकरणि ।	चिरु रिसिहिं उवरि संसार-सरणि ।	
तें पावइं एहु दुग्गंधु जाउ ।	तं मुणिवि चविउ सिमु पुणु सराउ ।	
णिच्चरिहइ किम एहु एहु पाउ ।	ता कहिउ मुणिंदें तहो उवाउ ।	
मेल्लेविणु जिणवर-धम्मसारु ।	को जीवहं अणु जि होइ तारु ।	१०
दयमूलु खंति मदव परदुदु ।	अज्जव सउच्च सच्चोवविदु ।	

उसका शरीर यहाँ भी बहुत दुर्बल था । और शीघ्र वह यहाँ भी मरणको प्राप्त हुई ।

साँभरीकी योनिसे निकलकर वह रानीका जीव एक चाण्डालिनीके गर्भमें आया । गर्भमें आते ही उसके चाण्डाल पिताकी मृत्यु हो गई और उसको जन्म देनेकी पीड़ामें ही माताका मरण हो गया । इस चाण्डाल-सुताके शरीरसे एक योजन तक जानेवाली दुर्गन्ध निकलने लगी ॥ ६ ॥

७

इस मातृ-पितृ-विहीन चाण्डाल-कन्याकी उस घोर दुर्गन्धको उसके पड़ौसी चाण्डाल भी सहन न कर सके । तब वे सोचने लगे कि इस आपत्तिका क्या उपाय किया जाय । जब किसी एकके कारण अनेकोंको दुःख उत्पन्न हो, तो उस एकका तिरस्कार कर दिया जाय, इसीमें भलाई है । ऐसे आपसमें विचार कर उन्होंने उस दुर्गन्धा कन्याको एक अटवीमें ले जाकर छोड़ दिया । वहाँ वह आठ वर्ष तक रही । वह पीपल, पिलखिन, ऊमर आदि अभक्ष्य उदुंबर फलोंको मय पत्तोंके भक्षण कर जीवित रही ।

एक दिन उसी अटवीके समीप कुछ मुनि विहार कर रहे थे । एक मुनिने अपने गुरुको प्रणाम कर विनय भावसे पूछा—हे गुरुवर, यह हमारी नाकको भरनेवाली महान् दुर्गन्ध कहाँ से आ रही है ? तब उन मुनीश्वरने उत्तर दिया—“एक स्त्रीने अपने हृदयमें मुनिराजपर क्रोध धारण किया था, उसी पापके फलसे उसके मुँहमें दुर्गन्ध उत्पन्न हुई है, जो जन्म-जन्मान्तरमें भी उसका पीछा नहीं छोड़ती ।” गुरुकी यह बात सुनकर उस शिष्यने मुनिसे फिर भक्तिपूर्वक पूछा—हे गुरुवर, अब हमें आप कृपाकर यह बतलाइये कि उस स्त्रीका यह पाप कैसे दूर होगा ? तब मुनिराज उस पापके निवारणका उपाय बतलाने लगे । वे बोले—

इस संसारमें सारभूत वस्तु जैनधर्म ही हैं । उस जैनधर्मको छोड़कर और कौन इस जीवका तरण-तारण कर सकता है । दयामूलक उत्तम क्षमा और मार्दव ये पुरोगामी गुण हैं; आर्जव, शौच

संजमु तह पोसणु आवणीउ । तउ णउ जलउत्तहि तारणीउ ।
 वेउव्विय करि तह मज्झि खंभु । दह धम्महं णावइ पुरउ वंभु ।
 इउ पालइ पंचुंबर-विरत्ति । णिसिभोज्जहं मज्जहं किय णिवित्ति ।
 इय कहिउ असेसु वि मुणिवरेण । तेण वि आयणिणउ आयरेण । १५
 पुणु सदहाणु किउ धम्म तेण । णियमिय-पंचुंबर-भक्खणेण ।
 एत्तहे वि आउ परिपुणु जाउ । मुअ धम्महं उवरि धरंति भाउ ।

यत्ता—तहु वयहु पहावइ उवसम-भावइ दालिदिय-दियवरहो धरि ।
 जाइवि उप्पणिय देह कुवरिणय उज्जेणिहि आसण धरि ॥ ७ ॥

८

तहि कोसु एक्कु दुग्गंधु जाइ । बहु-पावहु कहिमि ण छेउ होइ ।
 तहि मायरि मुअ तहु दियहु कंत । माया-विहीण बहु-दुक्ख-तत्त ।
 जामच्छइ कव्वाडु वि करंति । खड-कट्ट-पण-फल विक्रिणंति ।
 ता अण्हि दिणि णंदण-वणम्मि । उज्जेणि-तडिहि तरवर-घणम्मि ।
 आयउ वि सुदंसणु मुणिवरिणु । गय-वाहणु रेहइ णं सुरिंद । ५
 तिदंसणु णं संकरु विहाइ । चउभासापट्टणु वंभु णाइ ।
 गय-रहिउ अउव्वु वि विणहु भाइ । बहुगुणु वणणणउं ण कहिमि जाइ ।

व सत्य, वे उन गुणोंके सहायक उपबृन्द हैं, संयम इन गुणोंका पोषण करनेवाला है, तप और त्याग जलोदधिके तारनेवाले हैं। विक्रिया अर्थात् अकिंचन उनका मध्यस्तम्भ है और ब्रह्मचर्य मानो दशों धर्मोंके आगे हैं। इन दश धर्मोंके अतिरिक्त पंच उदुम्बरका परित्याग करना चाहिए तथा रात्रिभोजन व मद्यपानसे भी निर्वृत्ति रखना चाहिए।

इस प्रकार मुनिराजने समस्त धर्मका सारभूत उपदेश दिया जिसे उस दुर्गन्धा चाण्डाली ने भी आदर सहित सुना। इसे सुनकर उसने धर्मपर श्रद्धा की और पंच उदुम्बरका त्याग किया। शीघ्र ही उसकी आयु भी पूर्ण हुई। तब वह धर्ममें भावना रखती हुई मृत्युको प्राप्त हुई। उस व्रतके प्रभावसे तथा मरणकालके उपशम भावसे वह (उज्जैनीमें एक दरिद्री ब्राह्मणके घर जाकर कुरूप कन्या उत्पन्न हुई) ॥ ७ ॥

८

इस भवमें अब उस कन्याकी दुर्गन्ध एक कोस तक ही जाती थी। तीव्र पापका अन्त शीघ्र नहीं हो पाता। जन्म होते ही उसकी माता द्विज-पत्नीका मरण हो गया। मातृ-विहीन होकर इसने बहुत दुःख पाया। वह घास, लकड़ी, पत्ते, फल आदि बेचनेका कवाड़ करके अपना पेट पालने लगी। तब एक दिन उस उज्जयिनी नगरीके समीप सघन वृक्षों वाले नन्दन वनमें सुदर्शन मुनिवरका आगमन हुआ। वे मुनीन्द्र गतवाहन अर्थात् वाहनरहित थे जिससे उसकी उपमा सुरेन्द्रसे दी जा सकती है जो गजवाहन अर्थात् हाथी पर आरूढ़ होते हैं। वे तीन दर्शनोंके (चक्षु अचक्षु और अवधि) के धारक थे जिससे वे त्रिदर्शन अर्थात् तीन आँखों वाले शंकरके समान थे। वे चार भाषाओंके पाठी थे जिससे वे ब्रह्माके समान थे जो चार वेदोंका पाठ करते हैं। वे गदारहित होनेसे अपूर्व विष्णुके समान दिखाई देते हैं। वे इतने गुणवान् थे कि उनके समस्त गुणोंका वर्णन करना अशक्य है।

एहउ परमेसरु आउ जाम ।
जससेणु राहाहिउ परियणेण ।
वणतिलय मणोहरि भज्ज तासु ।
ता खंतरि सा दियतणिय तणय ।
पुच्छिउ किं दीसइ रायरि खोहु ।
ता कारणु केण वि कहिउ तेत्थ ।
तहो वंदणभत्तिए जाउ लोउ ।
तं सुणिवि तेण भरु मेल्लिऊण ।

रायरिहि जणु जत्तहि गयउ ताम ।
गउ जत्तएं सहु अंतेउरेण ।
आया गुरुभत्तिएं मुणिवरासु ।
आया गिरहेप्पिणु कइ-तिणय ।
आवइ जणु वणहु असंसु एहु ।
जइवसहु परायउ एक्कु एत्थ ।
णिउ आयउ पेक्खइ अरणु कोउ ।
गय वणहु भत्ति कोऊहलेण ।

१०

१५

घत्ता—ता दिट्टउ लोयउ पुरउ वइट्टउ पुच्छंतउ जम्मंतरइं ।

दुक्कियइं पणासइ मुणिवरु भासइ जासु वि जाइं गिरंतरइं ॥ ८ ॥

६

मार्गस्थिति — आचार्य भी सुविधिसागर जी म्हारज

तहो धम्माहम्महो फलु वि के वि ।
एत्थंतरि तासु सुणेवि सव्वु ।
उम्मूलिउ जें भवतरुहु मूलु ।
भूसिउ रयणत्तय-भूसणेण ।
णिवडिय महियलि तहि अवसरेण ।

पुच्छहि वयदाणहि अराणए वि ।
अवलोयउ मुणिवरु मणहरव्वु ।
चूरिउ सल्लत्तउ जिं तिसुलु ।
जं दिट्ठिवि सा पुणु तक्खणेण ।
आणाविय णियडु मुणीसरेण ।

५

ऐसे परम मुनीश्वरके आनेपर नगर-निवासियोंकी उनके दर्शनके लिए यात्रा प्रारम्भ हो गई । राजा जयसेन अपने अन्तःपुर एवं परिजनों सहित यात्राको निकले । उनकी वनतिलका नामक मनोहर भार्या भी बड़ी भक्ति सहित मुनिवरके समीप आयी । इसी बीच वह द्विजकन्या दुर्गन्धा भी घास लकड़ी लिये हुए वहीसे निकली । उसने लोगोंसे पूछा “नगरमें इतनी हलचल क्यों हो रही है और वनकी ओर ये असंख्य लोग क्यों आ रहे हैं ? तब किसीने उसे बतलाया कि वहाँ एक यतिवर आये हैं और उन्हींकी वन्दनाके लिए लोग भक्ति सहित जा रहे हैं । और की तो बात ही क्या, स्वयं राजा भी उनके दर्शनके लिए आया है । यह बात सुनकर उस द्विज-कन्याको भी कौतूहल हुआ और वह अपना भार वहीं छोड़कर वनकी ओर चल पड़ी । वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि वहाँ बहुत लोग बैठे हुए हैं और वे अपने-अपने जन्मान्तरकी बातें पूछ रहे हैं । मुनि महाराज जिस किसीसे बोल लेते हैं उसके निरन्तर पापोंका विनाश हो जाता है ॥ ८ ॥

६

वहाँ कोई मुनिराजसे धर्म और अधर्मका फल पूछ रहे थे, तो अन्य कोई व्रत और दानका फल जाननेकी इच्छा कर रहे थे । इसी बीच दुर्गन्धाने वहाँ पहुँचकर और उनकी सब बातें सुनकर मनोहर मुनिवरकी ओर देखा । वे मुनिराज सामान्य नहीं थे । उन्होंने अपने संयम और तपके प्रभावसे भव रूपी वृक्षके मूलको नष्ट कर दिया था और त्रिशूल-सा चुभनेवाले मिथ्यात्व, माया और निदान इन तीनों शल्योंको चूर-चूर कर दिया था । वे दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य इन तीनों रत्नोंसे विभूषित थे । मुनिराजपर दृष्टि पड़ते ही दुर्गन्धा उसी समय मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी । मुनिराजने उसे अपने समीप मँगा लिया और गोपीर रससे उसका सिंचन कराया । वह क्षण भरमें सचेत हो गई ।

सिंचाविय गोसीरहु रसेण ।
 एत्थंतरे पुच्छिय रारवरेण ।
 ता भण्डिउ शिसुणि रायाहिराय ।
 परिहाहिवि सकइं जिणवरिंद ।
 जइ भणउं लेसु एक्कु जि कहेमि ।
 ता भण्डिउ रारिंदइं जेतिया वि ।
 सा भणइ एत्थ सुपसिद्ध जाय ।
 तहि रारवइ रणामें पउमणाहु ।
 हउं सिरिमइ रणामें तासु कंत ।
 ता अणहहि दिणि वणकीलणेण ।
 ता दिट्ठु मणीसरु सुमुहु एंवु ।
 ता रायएं शिलयहु पेसियाइं ।
 तें पावें तहि भवें शिवेण चत्त ।

खणमेक्कइं चेयण लइय तेण ।
 तुहुं मुच्छिय कवणहि कारणेण ।
 महु तणिय अहम्म-कहाणियाय ।
 महु दुक्खसंसं अह वा मुणिद ।
 रणीसेस रण कहणहं सक्कएमि ।
 सक्कहि कह पयडहि तेत्तिया वि ।
 रणामेण वणारसि रणयरि राय ।
 जिणवर-पय-भसलु महीसणाहु ।
 अइपाणपियारी गुणमहंत ।
 जा चल्लिय शिरु अद्वासणेण ।
 पुव्वक्कियकम्महो जो कयंतु ।
 खावाविउ मइं वि सरोसियाइं ।
 मुअ कुट्ठिणि होइवि दुक्खतत्त ।

१०

१५

घत्ता—हुअ महिसि सिंगालिय सूवरि कालिय पुणु संवरि चंडालि तह ।

एवहिं हुव वंभणि दुक्ख-णिसुंभणि एत्तए भव-आवलिय-कह ॥ ६ ॥ २०

१०

ता शिवेण वुत्त मुणि मज्झु भासि ।

इय सच्चु चवइ कि अलियरासि ।

दुर्गन्धाके सचेत होनेपर राजाने उससे पूछा कि हे कन्ये, तू यहाँ मूर्च्छित किस कारण से हुई ? तब दुर्गन्धाने कहा “हे राजाधिराज, मेरी अधर्मभरी कहानी सुनिये । मुझे जो असंख्य दुख सहन करने पड़े हैं वे या तो जिनेन्द्र ही कह सकते हैं अथवा ये मुनीन्द्र । यदि मुझे ही कहना है तो मैं केवल एक लेशमात्र कहती हूँ । समस्त वृत्तान्त कहना मेरी शक्तिके बाहर है । तब राजाने कहा जितनी कथा तू कह सके उतनी ही कह । तब दुर्गन्धाने कहा—

इसी भरत क्षेत्रमें बनारस नामकी सुप्रसिद्ध नगरी है । वहाँ एक बार पद्मनाथ नामका राजा राज्य करता था । वह राजा जिनपदभक्त अर्थात् जैन धर्मका उपासक था । मैं उसी पद्मनाथ राजाकी रानी श्रीमती थी । सर्वगुणसम्पन्न होनेसे राजा मुझे अपने प्राणोंके समान प्यार करता था । एक दिन जब मैं राजाके साथ अर्धासनपर बैठी हुई वन-क्रीड़ाके लिए जा रही थी, तब सम्मुख आते हुए एक मुनिराज दिखाई दिये । वे पूर्वकृत कर्मोंके क्षय करनेमें कृतान्त अर्थात् यमराजके समान थे । उनके दर्शन होनेपर राजाने मुझे उन्हें आहार करानेके लिए वापिस घर भेजा । मैंने आकर क्रोध भावसे उन्हें कड़वे फलोंका आहार कराया । उस पापके फलस्वरूप राजाने उसी भवमें मेरा परित्याग कर दिया । मैं कुष्ठ रोगसे पीड़ित हो गई और दुःखसे तप्तयमान होते हुए मैंने प्राण विसर्जन किये । जन्मान्तरमें मैं क्रमशः भैंस, शृंगाली, काली शूकरी, फिर साँभरी और फिर चण्डालिनी होकर अब इस जन्ममें ब्राह्मणी हुई हूँ । यही मेरे भवभ्रमणकी दुःखपूर्ण कहानी है ॥ ९ ॥

१०

दुर्गन्धाके जन्म-जन्मान्तरोंकी दुःखपूर्ण कथा सुनकर राजाने मुनिराजसे पूछा ‘हे मुनीन्द्र !

ता भणिउ मुणिदे सयलु सच्चु ।
 पुणु तत्थ एरिदे वुत्त साहु ।
 कहि को वि उवाउ अउवु तेम ।
 ता भणिउ सुअंधदहमि करेइ ।
 तहि अवसरि ताई एरेसरेण ।
 पभणिउ परमेसर कहहि तेम ।
 एत्थंतरि एहि जंतउ विमाण ।
 एणमेण धुवजउ खगवईसु ।
 अच्चइ कि अरि महु कूरभाउ ।
 इम चित्तिवि भायउ जा मणम्मि ।
 अच्चइ पयडंतउ धम्मसारु ।
 इम चित्तिवि खेयरु आउ तेत्थु ।
 वंदेप्पिणु तहि उवइट ठ जाम ।

अएणारिसु अत्थि ए एण वंचु ।
 किम कम्मछेउ होसइ सुलाहु ।
 चलि पावइ सुहगइ एह जेम ।
 दुत्तरु कम्मोवहि तिण तरेइ । ५
 भालयलि गिहियकर-एअसिरेण ।
 किज्जइ दिज्जइ उज्जमणु जेम ।
 पडिखलिउ विचितइ ता विमाण ।
 एणिय तेओहामिय-गहवईसु ।
 कि मुणिवरु को वि उज्झिय-कसाउ । १०
 ता जाणिउ मुणि गिम्मलु जणम्मि ।
 लइ जाउं ए गच्चइ जहि कयारु ।
 अच्चइ मुणि एणयर-जणु वि जेत्थु ।
 एत्थंतरे मुणि कह कहइ ताम ।

घत्ता—णिमुणहि गियपुत्तिए आयम-जुत्तिए णिमुणहि अवर वि सयलह । १५

भासमि विहिकरणउ पुणु उज्जमणउ फलु सुअंधदहमिहि जह ॥ १० ॥

यह जो दुर्गन्धा ब्राह्मणीने कहा है वह सब सत्य है या झूठ बातोंका पुंज है । मुनिराजने कहा— 'जो कुछ इसने कहा है वह सब सत्य है, औरोंके समान उसने झूठ कहकर धोखा देनेका प्रयत्न नहीं किया । तब राजाने मुनिसे पूछा 'हे मुनिराज, अब इस ब्राह्मणीको अपने कर्मोंका छेद करनेका अवसर कब और कैसे मिलेगा ? आप कोई ऐसा अपूर्व उपाय बतलाइये जिससे कि आगे चलकर यह कन्या शुभ गतिको प्राप्त हो सके । राजाका प्रश्न सुनकर मुनिराज बोले 'इस कन्याको सुगन्ध दशमी व्रतका पालन करना चाहिए । उसी व्रतके द्वारा यह कर्मोंके दुस्तर समुद्रको पार कर सकती है ।' इस अवसरको पाकर राजाने सिरपर हाथ जोड़ मुनिको नमन करके प्रार्थना की 'हे मुनिराज, अब यह बतलानेकी कृपा करें कि यह व्रत कैसे किया जाता है और उसके उद्यपनकी विधि क्या है ?'

ठीक इसी बीच आकाशसे गमन करता हुआ एक विमान वहाँ आकर सहसा रुक गया । अपने विमानको अवरुद्ध हुआ देखकर उसमें आरूढ़ हुआ विद्याधर भी विमान अर्थात् मानहीन होकर चिन्तामें पड़ गया । विमानका अधिपति ध्रुवजय नामक विद्याधरोंका राजा था जिसने अपने तेजसे ग्रहपति अर्थात् चन्द्रमाको भी पराजित कर दिया था । अपने विमानके अकस्मात् रुकनेसे वह विद्याधर सोचने लगा 'क्या यहाँ कोई मेरा शत्रु बैठा है जो मेरे प्रति क्रूर भाव रखता है; अथवा यहाँ कोई मुनिवर विराजमान हैं जिन्होंने अपने क्रोधादि कषाय त्याग दिये हैं ?' यह चिन्ता उत्पन्न होनेपर ज्योंही उस विद्याधरने मनमें ध्यान लगाया त्योंही वह जान गया कि वहाँ एक निर्मल स्वभाव और प्रचण्ड तपस्वी मुनिवर लोगोंके बीच बैठे हुए उन्हें धर्मका सार समझा रहे हैं । 'तो मैं भी शीघ्र वहीं जाऊँ जहाँ कुकर्मों नहीं जाता' ऐसा विचार कर वह विद्याधर भी वहीं आ पहुँचा जहाँ वे मुनिराज और नगरनिवासी बैठे थे । विद्याधर मुनिवरकी वन्दना कर जब वहाँ बैठ गया तब मुनिराजने अपना धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया ।

उस दुर्गन्धा कुमारी तथा अन्य उपस्थित जनोंको सम्बोधन करते हुए मुनिराज बोले

११

महवि सियपंचमि उवसिज्जइ ।
 राणाफलहिं फणस-विज्जउरहिं ।
 कुसुमहि पंच-पयार-सुअंधहिं ।
 पुणु दहमीहिं सुअंधउ किज्जइ ।
 अहवा पोसहु णउ सक्केज्जइ ।
 रयणिहि जिण चउवीस रहविज्जइ ।
 दहमुह-कलस करेवि यविज्जइ ।
 कुंकुमाइ दहदव्वइं जुत्तउ ।
 पुणु दह भत्तिहि अक्खय-जुत्तउ ।
 तहि दह दीवय उवरि धरिज्जइं ।
 दह पयार णेविज्जइं किज्जइं ।
 इय विहिण किज्जइ दह वरिसइं ।

पंचदिवसि कुसुमंजलि दिज्जइ ।
 फोफल-कुंभडहिं णालियरहिं ।
 महमहंत-वरधूवहि दीवहिं ।
 तदिणि आहारु वि शियमिज्जइ ।
 एयभत्त तो शियमइं किज्जइ ।
 दहवारें दह पुज्जउ किज्जइ ।
 पुणु दहंगु तहे धूउ दहिज्जइ ।
 किज्जइ जिण-समलहणु पवित्तउ ।
 लिहियइं मंडल अंसु विचित्तउ ।
 दह फल मणहर अग्गइं दिज्जइं ।
 दह वारइं जिणणाहु थुणिज्जइ ।
 दह पाणुइं परिवड्डिय-हरिसइं ।

५

१०

घत्ता—इय विहाणु शिसुणिउ शिवइ पुणु शिसुणहि उज्जुमणउ ।

(तं तुह) आहासमि कमिण पयासमि होइ जेम जं करणउ ॥ ११ ॥

“हे पुत्रि तथा अन्य नगरनिवासियो, सुनो । मैं तुन्हें आगम और युक्ति सहित यह समस्त विधि बतलाता हूँ जिसके अनुसार सुगन्धदशमीव्रतका पालन और फिर उसका उद्यापन करना चाहिए । मैं यह बतलाऊँगा कि इस व्रतके पालनका फल क्या होता है ॥ १० ॥

११

सुगन्धदशमी व्रतका पालन इस प्रकार किया जाता है—भाद्रपद शुक्ल पंचमीके दिन उपवास करना चाहिए और उस दिनसे प्रारम्भ कर पाँच दिन अर्थात् भाद्रपद शुक्ल नवमी तक कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिये । कुसुमाञ्जलिमें फनस, बीजपुर, फोफल, कूष्माण्ड, नारियल आदि नाना फलों तथा पंचरंगी और सुगन्धी फूलों तथा महकते हुए उत्तम दीप, धूप आदिसे खूब महोत्सवके साथ भगवान्का पूजन किया जाता है । इस प्रकार पाँच दिन नवमोत्तक पुष्पाञ्जलि देकर फिर दशमीके दिन जिन-मन्दिरमें सुगन्धी द्रव्यों द्वारा सुगन्ध करना चाहिए और उस दिन आहारका भी नियम करना चाहिए । उस दिन या तो प्रोषध करे, और यदि सर्व प्रकारके आहारका परित्याग रूप पूर्ण उपवास न किया जा सके, तो एक बार मात्र भोजनका नियम तो अवश्य पाले । रात्रिको चौबीसी जिन भगवान्का अभिषेक करके दश बार दश पूजन करना चाहिए । एक दशमुख कलशकी स्थापना करके उसमें दशांगी धूप खेना चाहिए । कुंकुम आदि दश द्रव्यों सहित जिन भगवान्की पवित्र पूजा स्तुति करना चाहिए । पुनः अक्षतों द्वारा दश भागोंमें नाना रंगोंसे विचित्र सूर्य मण्डल बनाना चाहिए । उस मण्डलके दश भागोंमें दश दीप स्थापित करके उनमें दश मनोहर फल और दश प्रकार नैवेद्य चढ़ाते हुए दश बार जिन भगवान्की स्तुति वन्दना करना चाहिए । इस प्रकारकी विधि हर्ष पूर्वक मन वचन कायसे पाँचों इंद्रियोंकी एकाग्रता सहित प्रति वर्ष करते हुए दश वर्ष तक करना चाहिए ।

मुनि महाराज कहते हैं, हे राजन् सुगन्धदशमी व्रतके विधानको तुमने सुना । अब आगे इस व्रतकी जो उद्यापनविधि है, उसमें जो कार्य जिस प्रकार करना चाहिए, उसे यथाक्रमसे बतलाता हूँ ॥ ११ ॥

१२

दह वरिसइं पूरिहिं उज्जुमणउ ।
 पुणु मणहरु फुल्लहरउ किज्जइ ।
 दह-धएहिं उब्भिज्जइ जिणहरु ।
 दिज्जइ घंट चमर जुअलुल्लउ ।
 दह पोत्थय वत्थइं घास्तिज्जइं ।
 दह साडय दिज्जइं वयधारिंहिं ।
 पुणु दह मुण्हिं रसहिं छहिं जुत्तउ ।
 दह कंचुल्ल खीर-धय-जुत्तइं ।
 एत्तउ उज्जवणु प शरैसर ।
 अहवा एत्तिउ जइ वि ण पुज्जइ :
 थोवइं हीणु पुणु उप्पज्जइ ।
 अहियहु तउ णिय-सत्तिए दियणउ ।
 सग्गहु पिंडु कहाणिय जारिसु ।

किज्जइ जिणवर-देवहं रहवणउ ।
 अंगणि चंदोवउ ताडिज्जइ ।
 तारइय हु लंबिज्जइं मणहरु ।
 धूवडहणु आरत्तिउ भल्लउ ।
 दह पुणु ओसह-दाणइं दिज्जइं ।
 दह अच्चाणय तह वंमारिहिं ।
 दिज्जइ आहारो वि पवित्तउ ।
 दिज्जइं सावय-धरिसु पवित्तइं ।
 कहिउ असेसु वि मइं तुह सिरिहर ।
 तो णियसत्तिए थोवउ दिज्जइ ।
 एउ ण चित्ति क्यावि धरिज्जइ ।
 थोवइं अहिउ पुणु पडिवरणउ ।
 होइ अणंतु पुणु इह तारिसु ।

५

१०

घत्ता—इय विहिय-विहारणइं सहु उज्जमणउ जो करेइ तिय पुरिसु लहु ।

सो कम्मइं खंडिवि भवदुहु छंडिवि पुणु पावइ सिउपयहु सुहु ।

१५

इय सुगंधदहमीकहाए पढमो संधी परिच्छेओ समत्तो ॥ १ ॥

१२

जब सुगन्धदशमी व्रतका विधिपूर्वक पालन करते हुए दश वर्ष पूर्ण हो जायें तब उस व्रतका उद्यापन करना चाहिए । मन्दिरजीमें जिन-भगवान्का अभिषेक पूजन करना चाहिए । समस्त जिन-मन्दिरको पहले मनोहर पुष्पोंसे खूब सजाना चाहिए, आँगनमें चंदोवा तानना चाहिए, दश ध्वजाएँ फहराना चाहिए और मनोहर ताराएँ भी लटकाना चाहिए । मन्दिरजीको घंटा और चामरोंकी एक जोड़ी तथा अच्छी धूपधानी और आरती चढ़ाना चाहिए । दश पुस्तकें और दश वस्त्र भी चढ़ाना चाहिए तथा दश व्यक्तियोंको औषधिदान देना चाहिए । जो व्रतधारी ब्रह्मचारी आदि श्रावक हों उन्हें दश धोतियाँ और दश आच्छानक (छत्तों) का दान देना चाहिए । फिर दश मुनियोंको षड्रस युक्त पवित्र आहार देना चाहिए । दश कटोरियाँ पवित्र खीर और घृतसे भरकर दश श्रावकोंके घरोंमें देना चाहिए । हे श्रीमान् नरेश, यह सुगन्धदशमी व्रतका उद्यापन विधान है जो मैंने तुम्हें समस्त बतला दिया । यदि इतना विधान करना व दान देना अपनी शक्तिके बाहर हो तो अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा ही दान करना चाहिए । थोड़ा देनेसे हीन पुण्य उत्पन्न होता है, ऐसा विचार चित्तमें कदापि न लाना चाहिए । बहुत दानकी अपेक्षा जो भी अपनी शक्तिके अनुसार दिया जाता है उससे अधिक ही पुण्य उत्पन्न होता है । नाना स्वर्गोंकी प्राप्तिकी जो नाना कहानियाँ कही जाती हैं उनके ही समान इस सुगंधदशमी व्रतके पालनसे भी अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है ।

ऊपर बतलाये हुए विधि विधानके अनुसार जो कोई स्त्री या पुरुष सुगंधदशमी व्रतका पालन करता और उद्यापन कराता है वह अपने कर्मोंका खण्डन करके व संसारके दुःखोंको छोड़कर उत्तम स्वर्गादि पदोंके सुखका अनुभव करता है ॥ १२ ॥

इति सुगंधदशमी कथा प्रथम सन्धि ।

बीओ संधी

१

दह मीहे वउ किज्जइ मणि अणुराए ।

कलिमलु अवहरइ पुव्वकिय मुचइ पावे ।

इउ कहिउ मुणिदइं जाम अत्थु । तहिं दिणि तहिं हुइ दहमि तत्थु ।

किउ वउ ता सयलंतेउरेण । किउ राएं सह पारंकारण ।

किउ एयरिहिं लोयहिं सयलएहिं । किउ तेण दुगंधइं अवरएहिं ।

ता दिण्णउ चंदणु केण ताहे । केण वि कुसुमक्खय दीणयाहे ।

केण वि तह अप्पिउ एहवणु अमलु । केण वि चरु दीवउ धूउ-सहलु ।

तेण वि किउ गुरु-अणुराएण । एहवणचणु सहं उववासएण ।

मुणिणहहो आउसु मुणिउ ताहे । अज्जियहे समप्पिय सुव्वयाहे ।

ता छट्ठोवासइं कंजियाइं । एवकंत-राय-रस-वज्जियाइं ।

अवराइं मि बहु भेयाइं जाइं । गुरुकायकिलेसइं कियइं ताइं ।

अवसाण-यालि जिणु संभरेवि । मुअ चउविहु सएणासणु करेवि ।

उप्पणिणय सुणि सेणिय-एरिद । जहिं वयहं पहावइं अरि-मइंद ।

५

१०

द्वितीय संधि

१

सुगंध दशमी व्रतका पालन मनमें अनुराग सहित करना चाहिए । इससे कलिकालके मलका अपहरण होता है और जीव अपने पूर्वमें किये हुए पापोंसे मुक्त होता है ।

जिस दिन मुनिराजने यह सुगंध दशमी व्रतके विधानका उपदेश दिया उसी दिन भाग्यसे वहाँ दशमीका दिन था । अतः इस व्रतको राजाने और उनके समस्त अन्तःपुर तथा परिवारके लोगोंने धारण किया । नगर-निवासी सभी लोगोंने भी व्रत किया । और सबके साथ उस दुर्गन्धाने भी व्रत धारण किया । उस दिन बालिकाको किसीने चन्दन दे दिया और किसीने फूल व अक्षत दे दिये । किसीने उसे निर्मल अभिषेककी सामग्री दे दी तथा किसीने नैवेद्य, दीप, धूप व फल प्रदान किये । इस समस्त सामग्रीको पाकर दुर्गन्धाने बड़ी भक्तिसे उपवास धारण किया और भगवान्‌का अभिषेक-पूजन भी किया । मुनि महाराजने अपने अवधिज्ञानसे उसकी आयु अल्प शेष रही जान उसे सुव्रता नामक अर्जिकाको सौंप दिया । दुर्गन्धाने अर्जिकाके समीप रहते हुए पष्ठोपवास अर्थात् लगातार दो-दो दिनके उपवास किये तथा राग और रससे वर्जित कांजीका आहार लिया । और भी जो उपवासोंके अनेक भेद हैं तथा जो कायक्लेश रूप व्रत हैं उन्हें दुर्गन्धाने विधिपूर्वक पाला । आयुका अन्त आनेपर उसने जिन भगवान्‌का स्मरण करते हुए खाद्य, स्वाद्य, लेद्य और पेय इन चारों प्रकारके आहारका संन्यास अर्थात् सर्वथा परित्याग करके मरण किया ।

भगवान् महावीर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि 'हे शत्रुरूपी मृगोंके लिए सिंह नरेन्द्र, उस सुगंध दशमी व्रतके प्रभावसे वह दुर्गन्धा मरकर पुनः अगले जन्ममें जहाँ उत्पन्न हुई उसकी कथा सुनिए—

रयणउरि रायरि वर-कणय-काउ ।	कणयपहु रामईं अत्थि राउ ।	
तहो कणयमाल रामेण कंत ।	अइमणहर पइ-गुरु-विणयवंत ।	
अह तहिं पुरि वणिं जिणयत्तु णाम ।	जिणयत्त भज्ज रइ-सोक्ख-धाम ।	१५
तहो सेट्ठि-अपुत्तहो पुत्ति जाय ।	उप्पणणी जाएवि तहि मि सा य ।	
रामेण तिलयमइ शिसुणि राय ।	बहुलक्खण-लंछिय कणयकाय ।	
अइसूहव सुकलालय विहाइ ।	तणुअंगे चंदहो रेह णाइ ।	
मइलिज्जइ तणु तहे कुंकुमेण ।	रहाविज्जइ पुणु चंदण-रसेण ।	
सई एइ सुअंधु सरारि ताहे ।	कणुणि ण तणु मग्गयाहे ।	२०
बहुभावहिं लालिज्जंतियाहे ।	मुअ मायरिं अणहि दिवहि ताहे ।	

घत्ता—ता ताएं परिणिय अण तहिं धीय ताहे उप्पणणी ।

रामेण राय सा तेयमइ लक्खण-गुण-संपणणी ॥ १ ॥

२

सा लालइ सज्जइ शियय बाल ।	अवहीलइ इयर वि शिरु सुबाल ।
आहरणइ वत्थइ णियहे देइ ।	उद्दालिवि इयरहि पासि लेइ ।
आहार पाण णियसुअहि देइ ।	इयर वि मग्गंति य णउ लहेइ ।

रत्नपुर नगरीमें उत्तम कनकके समान सुन्दर शरीर कनकप्रभ नामके राजा राज्य करते थे । उनकी प्रिय भार्याका नाम कनकमाला था जो बड़ी मनोहर और अपने पति तथा गुरुजनोंके प्रति बड़ी विनयवती थी । उसी रत्नपुर नगरमें सेठ जिनदत्त रहते थे जिनको पूर्ण सुख देनेवाली भार्याका नाम जिनदत्ता था । जिनदत्त सेठके कोई पुत्र नहीं था । उनके एक मात्र कन्या उत्पन्न हुई थी जिसका नाम था तिलकमती । हे राजन्, सुनिए—वह तिलकमती नामक कन्या सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न थी और शरीर तो इतना सुन्दर था जैसे मानो सुवर्णका ही बना हो । वह सुभग कन्या समस्त कलाओंकी भी निधान थी जैसे मानो कोमल शरीरधारण करके चन्द्र-कला ही उत्पन्न हुई हो । जिनदत्त सेठ उस कन्याको इतने लाड़-प्यारसे रखते थे कि केशरसे तो उसके शरीरका मालिश किया जाता था और चन्दनके रससे उसे स्नान कराया जाता था । उसके शरीरमें स्वभावसे ऐसी सुगन्ध आती थी जैसी कपूर और कस्तूरीमें भी नहीं पाई जाती । ऐसी उस सुन्दर लावण्यवती कन्याका जब नाना प्रकारके लाड़-प्यारसे लालन-पालन किया जा रहा था तब एक दिन अकस्मात् उसकी माता जिनदत्ताका स्वर्गवास हो गया ।

अपनी प्यारी भार्याकी मृत्युके पश्चात् उसके पिता सेठ जिनदत्तने दूसरा विवाह किया । इस दूसरी सेठानीके गर्भसे भी एक कन्या उत्पन्न हुई । हे राजा श्रेणिक, इस लक्षणों और गुणोंसे सम्पन्न कन्याका नाम तेजमती रखा गया ॥ १ ॥

२

सेठानी अपनी औरस पुत्रीको तो खूब लाड़ करती और सजाती थी, किन्तु उस दूसरी सौतेली कन्या तिलकमतीका उसके भले स्वभावकी होनेपर भी तिरस्कार करती थी । सेठानी अपनी पुत्रीको अच्छे आभरण और वस्त्र देती थी, किन्तु सौतेली पुत्रीके पास जो कुछ होता उसे भी छीन लेती थी । अपनी सुताको वह अच्छा भोजन खिलाती-पिलाती थी, किन्तु बेचारी सौतेली कन्या माँगनेपर भी भरपेट खानेको नहीं पाती थी । अपनी पुत्रीको सेठानी सदैव अपने पास

णिय सुअ धरेइ अप्पुणहु पासि ।	इयर वि कम्मावइ जेम दासि ।	५
ता ताएं जाणिउ महु सुआहे ।	ए सहेइ सवक्किहि विरहु ताहे ।	
इम चित्तिवि पुणु दुवि दासिआउ ।	खेवित्तिवि करिवि समप्पियाउ ।	
एत्थंतरे रयणइं लेवि साहु ।	पेसिउ एरण्णाहे सायराहु ।	
जंतरेण कंत पमणिय विवाहु ।	विहि जणिहि करेज्जहि भोयलाहु ।	
ता पिच्छिवि मग्गहिं सुवण कएण ।	एणामेण तिलयमइ कणयवएण ।	
ता दावइ अग्गइं णिय कएण ।	वएणइं लावसएणइं एह पएण ।	१०
इयर वि णिच्चंछइ दूअराय ।	विहरियल धूअ कय सुंदराय ।	
इय वयणहि केण वि वरिय सा वि ।	इयर वि जा ए लहिय मणहरा वि ।	
ता किउ संजोउ विवाहकम्मु ।	मंडउ चउ चंडरिए वेइ रम्मु ।	
पुणु तइल-पमुह वएणइं वराइं ।	कीयइं विहि जणिहि मणोहराइं ।	
परिणयण-दिवसि रयणीहि तेण ।	मुक्किय मसाणि सिगारिएण ।	१५
आवेसइ को इह वरु पसत्थु ।	परिणावहि अप्पुणु पुत्ति एत्थु ।	
चउपासहि दीवय चारि देवि ।	चउ वारइं चउपासहि थवेवि ।	
आईसहुं दासिहिं इय भणेवि ।	एक्कल्लिय तहिं सा वणि मुएवि ।	
एत्थंतरि णिउ सोहयल-सिहरि ।	ता पेक्खइ थिउ उत्तुङ्ग-पवरि ।	

रखती थी, किन्तु उस सौतेली पुत्रीको सदैव काममें लगाये रखती थी, जैसे कि वह कोई दासी हो ।

तिलकमतीके पिताने समझ लिया कि सेठानी उसकी पहली पुत्रीको पास रखना उसी प्रकार नहीं सह सकती जिस प्रकार कि वह अपनी पुत्रीका विरह नहीं सहन करती । इस चिन्तासे सेठने अपने घरमें दो दासियाँ नियुक्त कर दीं ।

इसी बीच एक और प्रसंग आ गया । राजा कनकप्रभने सेठ जिनदत्तको बुलाकर बड़े आदरसे उन्हें रत्न खरीदनेके लिए देशान्तर जानेकी आज्ञा दी । जाते समय सेठने सेठानीसे कहा “मैं तो राजाकी आज्ञासे देशान्तर जाता हूँ, किन्तु तुम अपनी इन दोनों पुत्रियोंका विवाह दो योग्य वर देखकर कर देना जिससे वे सुखसे रहें ।” यह कहकर सेठ तो देशान्तरको चले गये । इधर जो भी वर कन्याओंको देखने आता वह उसी कनकवर्ण सुन्दरी तिलकमतीसे ही विवाहकी याचना करता था । किन्तु सेठानी अपनी पुत्रीको ही आगे करके दिखाती और कहती यही कन्या सुन्दरवर्ण और लावण्यवती है । वह अपनी उस सौतेली कन्याकी बुराई करती और उसे कुरूप बनाकर दिखाती । इन वचनोंसे किसी वरने उस कन्यासे ही विवाह करना स्वीकार किया और उस मनोहर दिखाई देनेवाली दूसरी कन्यासे नहीं । सेठानीने विवाह पक्का कर लिया । विवाहका समय आया । मंडप सजाया गया जिसमें चँवरी लटकाई गई व रमणीक विवाह-वेदी बनाई गई । दोनों कन्याओंकी तेल,हलदी आदि विवाहकी उत्तम विधियाँ उत्सव पूर्वक की गईं । विवाहके दिन रात्रि होते ही तिलकमतीका श्रृङ्गार करके सेठानी उसे नगरके बाहर श्मशानमें ले गई और उसे वहाँ बैठाकर बोली “हे पुत्रि, तेरा श्रेष्ठ वर यहीं आवेगा और तुझसे विवाह कर लेगा ।” ऐसा कहकर उसके चारों ओर चार दीपक रखकर तथा चारों पाश्वर्कोंमें चार कलश स्थापित करके “दासियोंसहित आऊँगी” ऐसा कहकर सेठानी तिलकमतीको श्मशानमें अकेली छोड़कर घर लौट गई । उसी समय राजा कनकप्रभ अपने राजमहलकी ऊँची अट्टालिकापर चढ़कर

चितिउ कि दीसइ जविखणीय ।	किं साहइ विजइं मणुसिणीय ।	२०
किं देवि का वि गंधवि एह ।	किं अच्छरि वर लावण-देह ।	
अहवा किं एण वियप्पण ।	पुच्छमि लहु तुटइ भंति जेण ।	
इम चित्तिवि शिउ संपत्त तेत्थु ।	अच्छइ मसाणि वर बाल जेत्थु ।	
चितिउ पर होइ ण जविखणीय ।	लोयणहु फडफडु मणुसिणीय ।	
इम चित्तिवि अप्पु वि पयडु होइ ।	एउ तनु कुमारिहे शियडु सोइ ।	२५
बुद्धाविय का तुहुं एत्थु काइं ।	किं ईहहि मणु महु बालियाइं ।	
सा भणइ कुमारिय वरु शिएमि ।	परिणयणु एत्थु अज्जु वि करेमि ।	
महु पेसिउ ताउ एरेसरेण ।	देसंतरु रथणहं कारणेण ।	
पच्छइं सावक्किए मायरीए ।	पारदधु विवाहु मणोहरीए ।	
णियसुअहे गोहि महुतणउ इत्थु ।	ता राएं जाणिउ सयलु अत्थु ।	३०

घत्ता—तहिं रायए संजोउ करि परिणिय ता तहिं सुंदरि ।

जिह हरेण गंग अदिसिणय वि तह सा णयण-मणोहरि ॥ २ ॥

३

पच्चूसि शिवइ घरु जाइ जाम ।	धाएप्पिणु अंचलु घरिउ ताम ।
पुणु भणिउ कत्थ मइं परिणिऊण ।	चल्लिउ कहि एवहि छडिडऊण ।

नगरकी शोभा देख रहे थे । श्मशानकी ओर ज्योंही उनकी दृष्टि पड़ी त्योंही वे विचारने लगे—“श्मशानमें यह कौन दिखाई पड़ रही है ? क्या यह यक्षिणी है, अथवा कोई मनुष्यनी ही है जो किन्हीं विद्याओंकी साधना कर रही है। या यह कोई देवी है, या कोई गन्धर्विणी है, या श्रेष्ठ लावण्यवती कोई अप्सरा है ? अथवा इस संकल्प-विकल्पसे क्या लाभ ? वहाँ जाकर ही मैं उससे क्यों न पूछ लूँ जिससे मेरी सब भ्रान्ति दूर हो जाय ।” ऐसा विचारकर राजा उसी श्मशानमें आया जहाँ वह सुन्दर सेठ-कन्या बैठी हुई थी । राजाने उसकी ओर अच्छी तरह देखकर यह तो निश्चय कर लिया कि यह यक्षिणी नहीं है क्योंकि इसकी पलकें ढलती और उधड़ती हैं, अतएव यह मनुष्यनी ही है । इतना मनमें निश्चय कर राजा प्रकट होकर उस कुमारीके समीप गया । राजाने सम्बोधन कर कहा “हे बालिके, तू मुझे बतला कि तू कौन है, यहाँ क्यों बैठी है व क्या चाहनी है ?” राजाकी यह बात सुनकर वह कुमारी बोली “मैं यहाँ अपने उस वरकी प्रतीक्षामें बैठी हूँ जिससे आज ही मेरा विवाह होना है । राजाने मेरे पिताको रत्न खरीदनेके लिए देशान्तर-को भेज दिया । तत्पश्चात् मेरी मनोहर सौतेली माँ ने यह विवाहका समारम्भ किया है । आज ही उसकी निजी पुत्रीका विवाह घरपर और मेरा यहाँ पर होनेवाला है ।” उस कन्याकी ये बातें सुनकर राजाने समस्त वृत्तान्त समझ लिया और स्वयं उस नयन-मनोहर सुन्दरीसे अपना विवाह कर लिया, जिस प्रकार कि हर अर्थात् महादेवने गंगा देवीसे विना किसीके द्वारा कन्यादान दिये विवाह कर लिया था ॥ २ ॥

३

उस रात्रि राजा उस कन्याके समीप वहीं रहा । प्रातः सूर्योदयसे पूर्व ही जब राजा वहाँ-से घरको चलने लगा तब उस कन्याने दौड़कर उसका अंचल पकड़ लिया और बोली “आप मुझसे विवाह करके मुझे यहाँ अकेली छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? अब आपको आजन्म मेरा

आजम्मु जाम परिपालियाहि ।
ता एरवइं साणांदउ हसेवि ।
हउं जाउं घरइं तुह शिलइं संतु ।
ता ताएं भण्डिउ को तुहुं पयासि ।
गउ घरि शिउ एत्तहि मायरीए ।
पुणु जंपिउ कहि गय शिक्कलेवि ।
इय जंपिवि जोयहुं चलिय जाम ।
पुच्छिय दीसहि परिणियहि छाया ।
तैं भण्डिउ माए पिंडारएण ।
ता जंपइ पेक्खहु चरिउ एहि ।
करि विहि जणीहि भण्डिउ विवाहु ।
गय मंडवहुंतिय शिक्कलेवि ।
जसु तणुउ कम्मु जारिसु फुरंतु ।
इम वयणहिं रंजिउ सयलु लोउ ।
पुणु वुत्तु पुत्ति एहि भणहिं कंतु ।

मा विसहरु जिह दंसेवि जाहि ।
सा लत्तिय सुंदरि विहसिएवि ।
आएसमि दिणि दिणि शिसि तुरंतु ।
हउं म्हाइसिवालु गुणरयणरासि ।
वाहाविय मंडवि आउरीए ।
केरिसु तहे तायहो वयणु देवि ।
दिट्ठिय स मसाणि वड्डु ताम ।
वर-वत्थ-मउड कंकण-कराय ।
आवेप्पिणु परिणिय एत्थु तेण ।
महो सयणवग्ग दूसणु थवेहिं ।
कारावमि लोयहु भोयलाहु ।
अप्पउ पिंडारहं अप्पवेवि ।
अवतरिहइ तहु तारिसु भवंतु ।
कवडेण पयारिउ तहि मि सोउ ।
आएइ तुहारइ धरे तुरंतु ।

५

१०

१५

घत्ता—एत्थंतरि रायइं मणि अणुरायइं लेविणु वत्थाहरणु तहिं ।

आयउ सइं संक्कहिं खलहं दुगेज्झइं मंदिरं अच्चइ भज्ज जहिं ॥ ३ ॥

पालन-पोषण करना होगा । सर्पके समान डसकर आप मेरे पाससे अन्यत्र नहीं जा सकते ।” राजाने युवतीके ये वचन सुनकर आनन्द पूर्वक हँसकर कहा “हे सुन्दरि, अभी मैं अपने घर जाता हूँ । मैं प्रतिदिन रात्रिको तुम्हारे घर आया करूँगा ।” युवतीने यह सुनकर कहा “आप मुझे यह तो प्रकट करके बतला दीजिए कि आप कौन हैं ?” राजाने कहा “हे गुण रूपी रत्नोंकी राशि ! मैं महिषीपाल हूँ ।” इतना कहकर राजा अपने घर चला गया । इधर माताने अपने घर बड़ी आतुरताके साथ मण्डपमें अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया । फिर तिलक-मतीके वहाँ न दिखाई देनेका बहाना कर कहने लगी “यह बालिका घरसे निकलकर कहाँ चली गई ? अपने बापकी इसने कैसी अपकीर्ति की ?” ऐसा कहते हुए वह उसे ढूँढ़नेके बहाने चली । श्मशानमें पहुँचकर उसने तिलकमतीको वहाँ बैठे देखा । उसने कन्यासे पूछा “तेरी छवि विवाहित स्त्री जैसी दिखाई देती है, अच्छे वस्त्र, मुकुट और हाथमें कंकन विवाहके चिह्न हैं ।” तब कन्याने कहा “हे माता ! एक पिंडार (ग्वाल) ने आकर यहाँ मुझसे विवाह कर लिया है ।” यह सुनकर सेठानी बोली “देखो तो इस कन्याका चरित्र ? परिवारके सब स्वजन बन्धु मुझे ही दोष देते हैं । मैंने तो यह विचार किया था कि दोनों पुत्रियोंका निश्चित किये हुए वरोंके साथ विवाह कराकर लोगोंको जीमनवार कराऊँगी । किन्तु यह स्त्री भरे मण्डपमेंसे निकल गई और एक पिंडारको उसने आत्मसमर्पण कर दिया । अब मैं क्या करूँ ? जिसका जैसा कर्म उदयमें आता है तैसा ही उसे फल भोगना पड़ता है ।” इस प्रकारके वचनों द्वारा समस्त लोगोंका सन्तोष करके उसने कपट शोक प्रकट किया ! फिर उससे बोली ‘हे पुत्रि, जो हुआ सो हुआ, अब अपने प्रिय पतिसे तू यह कह कि वह तुम्हारे घर तुरन्त आकर रहने लगे ।’ इसी बीच राजा अपने मनमें उस कन्यासे अनुरक्त होकर वस्त्राभरण लेकर सन्ध्याकालमें उस भवनमें आया जहाँ वह कन्या रहती थी और जहाँ खल पुरुषोंका कोई प्रवेश नहीं था ॥ ३ ॥

४

पइ पिक्खवि उट्ठिय तहि सराय ।
 पुणु देविणु आसणु धाविआए ।
 एत्थंतरै रायइं देवि वत्थ ।
 दिरणुउ कंचुल्लिउ मणिमयाउ ।
 मणिमउ सिरि मउडु सुतार हार ।
 अरण वि कंकण मणि-खंचियाय ।
 इय सयलु समप्पिवि गयउ जाम ।
 पुणु लोयहि जाइवि कहिउ ताहे ।
 तामाइय कोवइं कंपमाण ।
 हे भग्गि णिलक्खणि तुहुं हयासि ।
 शिवभूसणाइं राउ होहिं अरण ।
 मारावियाइ आयाइयाय ।
 इम जंपिवि उरणवि ते वि लेवि ।

गुरुभक्ति केसहि लुहिय पाय ।
 उवाविट्ठ शियडु अणुराइयाए ।
 आहरण विलेवण बहु पयत्थ ।
 सुतेउ थणुहं उज्जोइयाउ ।
 सोहंति विविह रयणेहि फार ।
 ढोइय दत्तेण वुहार णाय ।
 पच्छा जणेण सा दिट्ठ ताम ।
 विजमायहे दुट्ठसहावयाहे ।
 पेक्खेप्पिणु भासइ तहे समाण ।
 किं चोरइं परिणिय एत्थु दासि ।
 चोरेप्पिणु केण वि तुज्ज दिरण ।
 तुहुं कुलखउ करिवइं जाइ जाय ।
 गय घरहं चोरु तहि खंडु देवि ।

५

१०

घत्ता—थिय शियघरु जाम वि जणमउ लाएवि बाहिरि कोवारउ करिवि ।

अच्छइ मणि मुद्धिय संसए छुद्धिय कम्मु पुराणउ संभरिवि ॥ ४ ॥ १५

५

एत्थंतरि दीवहं जाइ एवि ।

संपत्तु सेट्ठि शियमंदिरे वि ।

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविद्विज्जाना ४ जी महाराज

अपने पतिको आया देखकर अनुराग सहित तिलकमती उठी और बड़ी भक्ति सहित अपने केशोंसे पतिके चरणोंको पोंछा । फिर दौड़कर पतिके लिए आसन दिया और उनके निकट स्नेह सहित बैठ गई । तब राजाने उसे लाये हुए वस्त्र, आभरण, विलेपनादि बहुत प्रकारकी श्रृंगारकी सामग्री प्रदान की । उन्होंने उसे रत्नजटित चोलियाँ दीं जो अपने तेजसे स्तनोंको उद्योतमान करती थी । सिरके लिए एक मणिमय मुकुट और अच्छी लड़ियों वाले हार जो नाना प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान थे, तथा अन्य मणियोंसे जड़े कंकन आदि अपनी प्रिय पत्नीको पहननेके लिए दिये । राजा ये सब वस्त्राभूषण देकर चला गया और पश्चात् यहाँ लोगोंने तिलकमतीको वे सब धारण किये हुए देखा । देखकर उन्होंने जाकर उसकी उस दुष्ट-स्वभाव विमातासे कहा । माताने स्वयं आकर उसे देखकर और कोपसे कंपायमान होते हुए उसे कहा—“अरी भगोड़ी, कुलक्षणा, हत्यारी, दासी ! क्या तूने किसी चोरसे अपना विवाह किया है ? ये जो आभूषण तू पहने हुए है वे और किसीके नहीं, स्वयं राजाके हैं और वहीसे चुराकर किसीने तुझे दिये हैं । तू अपने बाप आदिको मरवाने, आतापित कराने तथा हमारे कुलका नाश करानेके लिए ही उत्पन्न हुई है ।” ऐसा कहकर उस विमाताने उसके वे सब वस्त्राभूषण उतरवा कर ले लिये और उसे पुनः एक फटा पुराना चीरका टुकड़ा पहनाकर अपने निवासको चली गई । इधर तिलकमती लोगोंसे भयभीत हुई तथा बाहर कोपसे रुदन करती और मनमें मूढ़ भावसे शंकित और क्षुब्ध हुई अपने पूर्व कर्मोंका स्मरण करती हुई घरमें बैठ रही ॥ ४ ॥

५

यहाँ जब रत्नपुर नगरमें यह सब घटना हो रही थी तभी सेठ जिनदत्त द्वीपान्तर जाकर

ता दिट्टु विवाह-परिक्कमो वि ।
 ता दिट्टिय पिय अमणोज्जियाई ।
 संताविये हउं तुह जाइयाई ।
 परिणिय चोरइं कि ईरिएण ।
 तिम जंपिवि दाविउ तेण सव्वु ।
 ता भायए तण वियक्खणेण ।
 विण्णाविउ देव ण मुणिमि कज्जु ।
 तामग्गे घरि जायउ विवाहु ।
 केण वि चोरेप्पिणु सुयहे दिरणु ।
 ता राएं शिसुणिवि साहुवयणु ।
 लइ सयलु खमिउ मइं तुज्ज एउ ।
 जे परिणिय सो दावहि शिरुत्त ।
 मोक्कल्लिउ ता वणि गउ घरम्मि ।
 ओलक्खहि परिणिय जेण पुत्ति ।
 सा पभणइ शिच्छउ मुणमि ताय ।

परिदीसइ तहि मि ण सुअणु को वि ।
 पुच्छिउ कारणु वज्जरिउ ताई ।
 सइं कियउ विवाहु उमाइयाई ।
 कारणु ण मुणिज्जइ कि पि तेण ।
 आहरण-वत्थ-कंचुलिय-दव्वु ।
 दाविउ णरणाहहो तवखणेण ।
 देसंतरु जाइवि आउ अज्जु ।
 अणु वि संपत्तउ कणयलाहु ।
 इउ तुम्हहं तणउ ण होइ अणु ।
 जंपइ सराउ पहसंतवयणु ।
 पर तुह सुअ चोरहं कहउ भेउ ।
 ओलक्खिउण पइ भणि तुरंतु ।
 पुच्छिय सुअ शेविणु विज्जणम्मि ।
 पइं सइं परिणाविउ कय अजुत्ति ।
 ओलक्खमि णियमइं तासु पाय ।

५

१०

१५

और वहाँ से लौटकर अपने घर आया । आते ही उसने वह सब विवाहका उपक्रम तो देखा, किन्तु विवाहके आगे पीछे भी जो स्वजन परिजनोंकी भीड़माड़ रहा करती है वह उसे कुछ दिखाई नहीं दिया ; सब सूना पड़ा था । उसने जाकर अपनी प्रिय पत्नीको देखा जो बिना किसी शृंगारके उदास बैठी हुई थी । सेठने इस उदासीका कारण पूछा । तब सेठानी बोली—“तुम्हारी इस पुत्रीसे मैं बहुत संतप्त हुई हूँ । इसने उन्मादमें आकर अपना विवाह स्वयं कर लिया है । मैं आपसे क्या कहूँ ? इसने अपना विवाह किसी चोरसे किया है । इसका कोई कारण मेरी समझमें नहीं आता ।” ऐसा कहकर सेठानीने अपने पतिको वे आभरण, वस्त्र, कंचुकी आदि समस्त मूल्यवान् वस्तुएँ दिखाई । उन्हें देखकर सेठ भी स्वयं भयभीत हो उठा । वह तो चतुर था, अतः उसने उसी समय वे सब वस्तुएँ ले जाकर राजाको दिखलाई । सेठने राजासे कहा—“हे देव, मुझे यहाँका सब कार्य कुछ भी ज्ञात नहीं है । मैं तो देशान्तर जाकर आज ही वापिस आया हूँ । मेरे आनेसे पूर्व ही इधर मेरे घरमें मेरी पुत्रियोंका विवाह हो गया है, और यह एक नया सुवर्ण-लाम हुआ है । किसी चोरने चुराकर ये सब वस्त्राभूषण मेरी कन्याको दिये हैं । किन्तु ये सब वस्तुएँ तो आपकी ही हैं ; वे और किसीकी नहीं हो सकतीं ।”

राजाने जिनदत्त सेठके ये वचन सुनकर प्रेमसे हँसमुख होते हुए कहा—“देखो सेठ, यह सब तुम्हारा अपराध तो मैं क्षमा करता हूँ; किन्तु तुम्हारी पुत्रीको उस चोरका मेद बतलाना पड़ेगा । जिसने उससे विवाह किया है उसे निश्चयसे मुझे दिखलाओ । अच्छी तरह यह सब देख भाल कर तुम शीघ्र मुझे सूचना दो ।”

इस प्रकार राजाके पाससे मुक्ति पाकर सेठ अपने घर गया । सेठने अपनी उस पुत्रीको एकान्तमें लेजाकर उससे पूछा—“हे पुत्रि, तुमने अयोग्य रीतिसे जिसके साथ स्वयं अपना विवाह कर लिया है उस पुरुषको मुझे बतलाओ ।” अपने पिताके ये वचन सुनकर कन्याने कहा—“हे तात, मैं निश्चयसे तो अपने पतिको उसके चरणोंका स्पर्श करके ही पहचान सकती हूँ, क्योंकि मैं नियमसे उसके चरणोंका ही स्पर्श करती रही हूँ ।” अपनी पुत्रीकी इस बातको

ता राउ वणि इय वयणुत्ति लेवि ।
ता राएं वुत्तु विवाह-भोज्जु ।
तेमइं चोरहु उवलंभु करहु ।

उवइट्ठु असेसु वि णिव कहेवि ।
तुह गेहि करेसमि हउं मि अज्जु ।
परिणिय अदिएण सुअ सो जि घरहु ।

घत्ता—ता सेट्ठहे घरि संजोउ किउ संपत्तु राउ परिमिय-सहइ ।

उवइट्ठु कमेण वि सहु जणहिं तहि मि चोज्जु सयल वि कहइ ॥ ५ ॥

२०

६

आणहि सुय रायणइं भंपजण ।
ता आणिय वणिणा वुत्त सा वि ।
सा भणइ धुआवहु मइं मि पाय ।
ता ताएं पाय धुआवियाय ।
णिव-पायहं कर छुडु लग्ग जाम ।
इहु चोरु वि जें हउं परिणियाय ।
एत्थंतरि णिवें साणंदएण ।
तहिं सयलहं मणि आणंदु जाउ ।
एत्थंतरि पुणरवि किउ विवाहु ।

जिम कइइ चोरु ओलक्खिजण ।
ओलक्खहि जें तुहुं परिणिया वि ।
णिसि दिट्ठउ ओलक्खमि ण ताय ।
घोवंति संति तहि आवियाय ।
ओलक्खिउ तायहि कहिउ ताम ।
णउ अणणु होइ इम जंपियाय ।
णीसेसु कहिउ वित्तु तेण ।
अइपुणणवंति पिउ लद्धु राउ ।
सहु सयणहि णिउ घरु जिणवराहु ।

५

लेकर सेठ पुनः राजाके पास गया और जो कुछ उसने अपनी पुत्रीसे सुना था वह सब राजाको कह सुनाया । तब सेठकी बात सुनकर राजाने कहा—“अच्छा, मैं आज ही अपनी ओरसे तुम्हारे घर पर विवाहके भोजका आयोजन करूँगा । उसी भोजमें उस चोरको पहिचान लेना, और जिसने तुम्हारी पुत्रीको बिना कन्यादानके विवाह लिया है उसे पकड़ लेना ।”

इस प्रकार कहकर राजाने सेठके घर भोजकी तैयारी कराई । स्वयं राजा अपनी सभाके कुछ गिने चुने सभ्योंके साथ वहाँ पहुँचे । सब अभ्यागत मिलजुल कर सेठके घरमें बैठे । सब लोग यहाँ होनेवाले कौतुककी ही चर्चा कर रहे थे ॥ ५ ॥

६

राजाने आज्ञा दी कि सेठकी वह कन्या आँखें ढँककर वहाँ लाई जाय, जिससे कि वह उस चोरका पता लगा सके । सेठ अपनी कन्याको वहाँ ले आया और उससे कहा—“हे पुत्रि, अब तू उस पुरुषकी पहिचान कर जिसने तुझसे विवाह किया है ।” कन्याने कहा—“हे तात, मैं तो अभ्यागतोंके पैर धुलाकर ही उनमेंसे अपने पतिको पहिचान सकूँगी, क्योंकि रात्रिमें ही उनके दर्शन होनेसे मैं उनकी मुखाकृतिसे भलीभाँति परिचित नहीं हूँ ।” तब सेठने अभ्यागतोंके पैर धुलवानेका आयोजन किया । कन्या अपने हाथोंसे प्रत्येक अतिथिके पैर धुलाती जाती थी और वे यथा स्थान बैठते जाते थे । राजाकी भी वारी आई । राजाके पैरोंका कर-स्पर्श होते ही कन्याने अपने पतिको पहिचान लिया और पितासे कह दिया—“हे पिता, यही वह चोर है जिसने मुझसे विवाह किया है, अन्य कोई नहीं ।” कन्याके ऐसा कहने पर राजाने आनन्दित होकर वह सब वृत्तान्त वर्णन करके सुना दिया । उस वृत्तान्तको सुनकर सबके मनमें आनन्द हुआ और वे सब कहने लगे—“यह कन्या बड़ी पुण्यवान् है जिसने स्वयं राजाको अपना पति पाया ।”

इस वृत्तान्तके पश्चात् कन्या तिलकमतीका राजा कनकप्रभके साथ पुनः विधिवत् विवाह

जिणु बंदिवि तहिं उवइट्ट जाम ।	पुणु तिलयमइए संदिट्ठु ताम ।	१०
पुच्छिउ परमेसर पइ णिएवि ।	महु णेहु काइं वड्डइ सुणेवि ।	
ता मुणिणा कहिउ असेसु कज्जु ।	जिह भमिय भवंतर मुत्तु रज्जु ।	
जिह कयइ सुअंध मणोहरो वि ।	एत्थंतरे आयउ देउ को वि ।	
तेण वि पणवेप्पिणु पुणु मुणिदु ।	पुणु तहे तियहे चरणारविदु ।	
पमणिउ सामिणि महं तुअ पसाउ ।	वउ चरिउ तेण हुउ अमरराउ ।	१५
इम जंप्पि भूससु कयहेदिं ।	मउ दिव्वहि पुणु पुणु थुइ करेवि ।	

वत्ता—सा गेहिणि हुअ तहु एरवइहो जिम रइ कामहो पाणपिय ।
अग्गेसरि सयलंतेउरहो विविह भोय भुंजंति थिय ॥ ६ ॥

७

सा सूहव सयलंतेउरहो ।	सा मणहर सयलहो परियणहो ।
सा सुमहुरवाणिय हंसगई ।	सा पीणपओहरि सुद्धसई ।
सा आसाजरिया दुत्थियाहं ।	सा भूरुह दीणहं पंथियाहं ।

किया गया । विवाहके पश्चात् वर-कन्या जिन-मन्दिरमें लाये गये । वहाँ जिन भगवान्की वन्दना करके वे यथास्थान बैठ गये । वहाँ एक मुनिराज भी विराजमान थे । तिलकमतीने उन मुनिराजके दर्शन करके उनसे पूछा—“हे, परम मुनीश्वर, यह बतलाइए कि अपने पतिके प्रथम दर्शन मात्रसे मेरा उनके ऊपर इतना प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ ।” यह सुनकर मुनिराजने समस्त वृत्तान्त कहा जिस प्रकार कि उसने अपने पूर्व भवमें राज्यका उपभोग करके भवान्तरोमें दुःख पाते हुए भ्रमण किया था और जिस प्रकार कि अन्तमें उसका शरीर पुनः सुगन्धयुक्त और मनोहर हुआ ।

जब मुनिराज उस सुगन्धा कन्याके पूर्व भवोंका वृत्तान्त कह रहे थे, तभी वहाँ एक देव आ पहुँचा । उसने मुनिराजको प्रणाम करके उस कन्याके भी चरणकमलोंमें अपना मस्तक नवाया । फिर वह देव बोला—“हे स्वामिनि, मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे उसी सुगन्ध दशमी व्रतका पालन किया था और उसीके प्रभावसे मुझे यह अमरेन्द्र पद प्राप्त हुआ है ।” इतना कहकर और तिलकमतीको भूषण, वस्त्र देकर एवं पुनः पुनः स्तुति करता हुआ वह देव वहाँसे चला गया । इस प्रकार तिलकमती राजा कनकप्रभकी उसी प्रकार प्राणप्रिया गृहिणी हो गई जिस प्रकार रति कामदेवकी प्राणप्रिया हुई । वह राजाके समस्त अन्तःपुरकी प्रधान पटरानी बनकर नाना प्रकारके सुखोंका उपभोग करती हुई रहने लगी ।

७

अब तिलकमती ही समस्त अन्तःपुरकी सौभाग्यवती सुन्दरी थी । वह समस्त सेवकों व परिजनोंके मनको आकर्षित करती थी । उसीकी वाणी सबसे अधिक मधुर और उसीकी गति हंसके समान सुन्दर समझी जाती थी । वही सबसे अधिक रूपवती और शुद्ध सती माने जाने लगी । वह दुखी दरिद्री जनोंकी आशाओं और प्रार्थनाओंको पूरा करती थी व दीन लोगोंको उसी प्रकार आश्रय प्रदान करती थी जैसे वृक्ष पथिकोंको शीतल छाया देकर सन्तुष्ट करता है ।

सा पुण्यवंति बहु आयरीय ।
 सा दुक्खअदुक्खियणह वरीय ।
 सा चउविहु-दाणु-पयासयारि ।
 सा रोय-सोय-णिण्णासयारि ।
 सा पुत्त-पउत्तइं णत्तियाइं ।
 वर सवणहं शेत्तहं तरयमाणु ।
 जे ववसिय दहमि सुअंधयेण ।
 इम रज्जु करेवि असंसु कालु ।
 चउविहु आराहणु भाविजण ।

सा तियपहाण सयलहं धरीय ।
 गुरु लच्छिय णियपियआयरीय ।
 सा जिणवरधम्मज्जोयकारि ।
 सा समयरयाण महाण सरि ।
 देक्खवि दोहित्तइं पोत्तियाइं ।
 जुउ जुच्चणु होतउ बलु पराणु ।
 इह दुक्खु ण देक्खइ एक्कु तेण ।
 जाणेप्पिणु पुणु अवसाण-कालु ।
 सरणासे मुअ जिणु भाइजण ।

५

१०

घत्ता—ईसाणविमाणे सुहहो णिहाणे उप्पणिणय सुरवरु हवेवि ।

मार्गदर्शक — अन्तिम — तियालेणु हणोप्पिणु कम्मु इहोप्पिणु जिणसुपासचरणइं णवेवि ॥ ७ ॥

८

अहो सेणिय जीवहो वउ दुलंभु ।
 सा वयहं पहावे अमरराज ।

वयएण वि पुणु सयलु वि सुलंभु ।
 हुअ मणि-आहरणहि जुत्तकाउ ।

उस पुण्यवतीका सब कोई बड़ा आदर करते थे और सभी उसे स्त्रियोंमें एक प्रधान रत्न रूप मानते थे । वह नाना क्लेशोंसे दुखी जनोंके लिए महान् लक्ष्मी देवीके समान थी और उसके पति भी उसका उसी प्रकार आदर-सम्मान करते थे । वह आहार, औषधि, अभय और शास्त्र इन चारों प्रकारके दानका खूब प्रचार करती तथा जैन धर्मकी प्रभावना बढ़ाती थी । जनतामें यदि कोई रोग या शोक फैल जाता तो वह तुरंत उसके निवारणका उपाय करती । धर्मानुरागी स्त्री-पुरुषोंके लिए तो वह एक महान् सरिताके समान उपकारी थी । उसने खूब दीर्घायु पायी जिससे कि उसे अपने पुत्र और पौत्र और नातियोंको तथा दौहित्र और प्रपौत्रोंको देखनेका सुख मिला । वह अपने स्वजनोंके नेत्रोंकी तारिका (पुतली) के समान रहती हुई यौवनसे निकलकर वृद्धावस्थामें प्रविष्ट हुई । तथापि उसने जो सुगन्ध दशमी व्रतका परिपालन किया था उसके प्रभावसे उसे फिर कोई एक भी दुख देखने मात्रको भी नहीं मिला ।

इस प्रकार उसने चिरकाल तक राज्यके सुखका उपभोग किया । तत्पश्चात् अपनी आयु पूर्ण होती हुई जानकर उसने दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप यह चार प्रकार आराधनाकी भावना प्रारम्भ कर दी और जिनेन्द्र भगवान्का ध्यान करते हुए संन्यास पूर्वक उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया । इस समस्त धर्माचरणके फलस्वरूप भगवान् सुपाश्वर्नाथके चरणोंको वन्दना करते हुए उसने अपने स्त्री लिंगका छेदन कर दिया और अपने दुष्कर्मोंका भी नाश कर डाला जिससे वह समस्त सुखोंके निधान ईशान स्वर्गके विमानमें उत्तम देव हुई ॥ ७ ॥

८

भगवान् महावीर राजा श्रेणिकसे कहते हैं—“हे श्रेणिक, इस जीवके लिए धार्मिक व्रत ही धारण करना बड़ा दुर्लभ है । किन्तु जहाँ एक बार जीवको व्रत धारण करनेका सुअवसर मिल गया, तहाँ फिर उसके लिए सकल पदार्थ सुलभ हो जाते हैं । देखो वह दुर्गन्धा व्रतके प्रभावसे कैसी सुगन्धा हो गई और उसका शरीर मणिमयी आभरणोंसे अलंकृत हो गया । इस

दहमिहि फलेण तहे अवहिणायु ।	किकिणि-कणंतु मणहरु विमाणु ।	
दहमिहि फलेण कोडिच्छरेहि ।	सेविज्जइ सत्तावीसएहि ।	
दहमिहि फलेण छुडु सायराउ ।	देवंग-वत्थ-भूसियउ काउ ।	५
दहमिहि फलेण सेविय सुरेहि ।	विज्जिज्जइ धवलहि चामरेहि ।	
दहमिहि फलेण वरु आयवत्तु ।	अइरावइ मणहरु गुलुगुलंतु ।	
दहमिहि फलेण सयलहं पहाणु ।	पडिखलियइ कहि मि ण तासु माणु ।	
दहमिहि फलेण वरकंतिकाउ ।	णिय-तेओहामिय-गहपहाणु ।	
अणणु वि किं बहुअइं वरिणएण ।	को वि सरिसु ण पुज्जइ भुवणि तेण ।	१०
अणणु वि जं दुलहउ जयहं सारु ।	तं तसु संपज्जइ बहुपयारु ।	

घत्ता—तहिं तिहुअण-सारउ मयण-वियारउ जिणु सुपासु वंदइ अमरु ।
तहिं परमवि होसइ कम्म डहेसइ सिद्धि-वरंगण-तणउ वरु ॥ ८ ॥

६

जा इह दहमि करइ तिय अह णरु ।	सो अचिरेण होइ सुरु मणहरु ।
जो वाचइ सुद्धक्खर भावइं ।	सो जि महंतु पुण्यफलु पावइ ।
जो वक्खाणइ गुरुअणुरायइं ।	सो मुचइ पुव्वक्खिय-पावइं ।
जो णिसुणइ मणि उवसम-भावइं ।	तासु देहु णउ लिप्पइ आवइं ।

सुगन्ध दशमी व्रतके फलसे उसे अवधिज्ञान हुआ और किकिणी-पंक्तियोंकी कलध्वनिसे युक्त मनोहर स्वर्ग विमान भी मिला । इस (सुगन्ध दशमी व्रतके फलसे सत्ताईस कोटीश्वरोंकी सेवाका सुख भी मिलता है) दशमीके फलसे यह शरीर देवांग वस्त्रोंसे विभूषित होता है । दशमीके फलसे देव सेवा करते हैं और धवल चँवर ऊपर ढोले जाते हैं । दशमीके फलसे श्रेष्ठ आतपत्र (छत्र) प्राप्त होता है व मनोहर गुडगुडाते हुए ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होनेका सुख मिलता है । दशमीके फलसे सबके बीच प्रधानता प्राप्त होती है और कहीं भी उसका मानभंग नहीं होता । दशमीके फलसे ही ऐसी उत्तम शरीर-कान्ति मिलती है कि उसके तेजके आगे चन्द्रमा-की कान्ति भी फीकी पड़ जाय । अन्य बहुत विस्तारसे वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता है ? संक्षेपमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि सुगन्ध दशमी व्रतके पालन करनेवालेके समान अन्य किसी मनुष्यका संसारमें आदर-सत्कार नहीं होता । अन्य जो कुल भी इस जगत्के सारभूत पदार्थ हैं वे सभी नाना प्रकारके व्रतधारीको प्राप्त हो जाते हैं ।

ईशान विमानमें भी वह सुगन्धाका जीव देव होकर त्रिभुवनमें सारभूत, कामदेवका निवारण करनेवाले जिन भगवान् सुपार्श्वनाथकी वन्दना करना नहीं भूलता था । अगले भवमें वह देव मनुष्य योनिमें आकर और अपने शेष समस्त घाति अघाति कर्मोंको संयम और तपके द्वारा भस्मसात् करके सिद्धि रूपी वरांगनाका पति अर्थात् मोक्षगामी होगा ॥ ८ ॥

६

जो कोई स्त्री या पुरुष इस सुगन्ध दशमी व्रतका पालन करता है वह शीघ्र ही मनोहर देवके पदको प्राप्त हो जाता है । जो कोई इस सुगन्ध दशमी व्रतकी कथाका भावना सहित शुद्ध पाठ करता है वह भी महान् पुण्यके फलको पाता है । जो खूब धर्मानुराग सहित इस कथाका व्याख्यान करता है उसे अपने पूर्वकृत पाप कर्मोंसे मुक्ति मिलती है । जो इसे शान्त भावसे

जो पुणु सदहेइ णिसुणेपिणु ।	अहिउ पुणु तहो भासइ जिणु पुणु ।	५
जा पुणु जाणइ एह कहाणिय ।	सा तिय होइवि महियलि राणिय ।	
इय सुअदिवखहि कहिय सचित्थर ।	मइ गावित्ति सुणाइय मणहर ।	
णिय कुलणह-उज्जोइय-चंदइ ।	सज्जण-मण-कय-णायणाणंदइ ।	
भवियण-करणाग-मणहर-भासइ ।	जसहर-णायकुमारहो वायइ ।	
बुहयण-सुयणहं विणउ करंतइ ।	अइसुसील-देमइयहि कंतइ ।	१०
एमहि पुणु वि सुपास जिणेसर ।	करि कम्मवत्तउ महु परमेसर ।	

घत्ता—जहिं कोहु ण लोहु सुहि ण विरोहु जिउ जर-मरण-विवज्जिउ ।
 ण हि हरिसु विसाउ पुणु ण पाउ तहिं णिवासु महु दिज्जउ ।

इय सुअंधदहमीकहाए बीओ संधी परिच्छेओ समतो ॥ २ ॥

सुनता है उसके शरीरको कभी कोई आपत्ति नहीं व्यापती । जो कोई इसे सुनकर उसपर श्रद्धा न करता है उसको जिन भगवान् ने विशेष पुण्यकी प्राप्ति का फल कहा है । जो स्त्री इस कथानकको भले प्रकार सीख लेती है उसे इस जगत् में रानी होनेका सुख मिलता है ।

इस कथानकको श्रुतदर्शी शास्त्रकारोंने विस्तारसे वर्णन किया है । मैंने उसीके अनुसार संक्षेपमें इसे मनोहर रीतिसे गाकर सुनाया है । इस मनोहर गीति काव्यके रचयिता हैं अपने कुल रूपी नभको उद्योतित करनेवाले चन्द्र जिन्होंने सज्जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्दित किया है, भव्यजनोंके कण्ठाभरण रूप मनोहर भाषामें यशोधर और नागकुमारके चरित्रोंको बाँचकर सुनानेवाले, विद्वानों और सज्जनोंका विनय करनेवाले तथा अतीव शीलवती देवती नामक भार्याके पति (श्री उदयचन्द्र जी) । वे प्रार्थना करते हैं कि हे सुपाश्वर्जिनेश्वर, मेरे कर्मोंके क्षय करनेमें सहायक होवें और जहाँ न क्रोध है, न लोभ है, जहाँ न मित्र है और न शत्रु है, जहाँ जीव जरा और मरणसे रहित है, जहाँ हर्ष-विषाद तथा पुण्य व पाप कुछ भी नहीं है, वहाँ ही मुझे निवास अर्थात् मोक्ष प्रदान करें ।

इति सुगन्धदशमीकथा द्वितीय संधि ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधितागर जी महाराज

सुगन्धदशमीकथा [संस्कृत]

सुगन्धदशमीकथा

पादाम्भोजान्यहं नत्वा श्रीपदं परमेष्ठिनाम् ।
 शृण्वन्तु साधवो वक्ष्ये सुगन्धदशमी-कथाम् ॥ १ ॥
 गुरुणामुपरोधेन श्रीविद्यानन्दिनामिदम् ।
 सरस्वत्याः प्रसादेन रच्यते श्रुतसागरैः ॥ २ ॥
 अथ प्रणम्य भूपालः श्रेणिकः सन्मतिं प्रभुम् ।
 गोतमं पृच्छति स्मेदं भक्त्यावनत-मस्तकः ॥ ३ ॥
 अकारण-जगद्वन्धो भव्याब्जवनभास्कर ।
 श्रुताम्बुधि-महापोत विमुक्तिपदनायक ॥ ४ ॥
 अहो आखण्डलैश्वर्यवर्य श्रीगोतम प्रभो ।
 प्रज्ञापारमितानेनः केन व्रतमिदं कृतम् ॥ ५ ॥
 कथं वा क्रियते किं वा फलमस्य महामते ।
 भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृपाजलनिधे वद ॥ ६ ॥
 शृणु भो मगधाधीश सुगन्धदशमी-व्रतम् ।
 साधु पृष्टं त्वया धीमन् कथयामि यथायथम् ॥ ७ ॥
 इदं श्रवणमात्रेण अनन्तमवपातकम् ।
 छिनत्ति च कृतं भक्त्या भुक्ति-मुक्तिफलप्रदम् ॥ ८ ॥

हिन्दी अनुवाद

पंच परमेष्ठीके चरण-कमल रूप लक्ष्मीके निवासको नमस्कार करके मैं सुगन्धदशमी कथाको कहता हूँ । साधुजन इसे सुनें । यह कथा श्री विद्यानन्दि गुरुके आदेशसे तथा सरस्वती-के प्रसादसे श्रुतसागर नामक आचार्य द्वारा रची जाती है ॥ १-२ ॥

अथ सन्मति प्रभु अर्थात् भगवान् महावीर स्वामीको प्रणाम करके राजा श्रेणिकने भक्ति-पूर्वक नतमस्तक होकर गोतम गणधरसे पूछा—हे अकारण जगद्वन्धु, भव्यजन रूपी कमलोंके वनको सूर्यके समान प्रफुल्लित करनेवाले, शास्त्र रूपी समुद्रको पार करनेके लिए महापोत, मोक्ष-पदको ले जानेवाले नायक, इन्द्रके समान उत्तम ऐश्वर्यके धारक, प्रज्ञाके पारगामी विद्वान्, पापहीन, श्री गोतम प्रभु ! मेरी यह सुननेकी इच्छा है कि इस सुगन्धदशमी व्रतको किसने पालन किया, यह व्रत कैसे किया जाता है और इस व्रतका फल क्या है ? हे महामति कृपासागर, यह सब मुझे बतलाइए ॥ ३-६ ॥

राजा श्रेणिकके इस प्रश्नको सुनकर गोतम स्वामी बोले—हे विद्वान् मगधनरेश, तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया । अतः मैं तुम्हें सुगन्धदशमी व्रतका समस्त विवरण सुनाता हूँ । तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥ ७ ॥

इस सुगन्धदशमी कथाके सुनने मात्रसे ही अनन्त भवोंके पाप कट जाते हैं और इस व्रतके भक्तिपूर्वक पालन करनेसे संसारके भोग तथा अनुक्रमसे मोक्ष फलकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

प्रशस्तवस्तुसङ्कीर्णं द्वीपे जम्बूद्वीपमाङ्किते ।
 जिनजन्मादिभिः क्षेत्रे पवित्रे भारताभिधे ॥ ६ ॥
 निवेशे सम्पदां देशे काश्यां त्रिभुवनश्रुते ।
 वरे वाराणसीनाम्नि पत्तने तु चिरन्तने ॥ १० ॥
 बभूव भूपतिर्नाम पद्मनाभोऽमितप्रभः ।
 श्रीमतीललनानेत्रनीलवार्जन्मचन्द्रमाः ॥ ११ ॥
 आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिसमाह्वयाः ।
 चतस्रो वेत्ति यो विद्याः सम्यगाप्तसमन्वयाः ॥ १२ ॥
 सन्धिं च विग्रहं यानमासनं संश्रयं तथा ।
 द्वैधीभावं गुणानेष वेत्ति षट्पाटवं स्फुटम् ॥ १३ ॥
 त्रिवर्गं च क्षयस्थानवृद्धिसंज्ञमनुत्तरम् ।
 वाग्मनोदैवसिद्धीनां स जानीते समाश्रयम् ॥ १४ ॥
 चयं चोपचयं मिश्रमितीहगुदयत्रयम् ।
 विभर्ति निर्वृत्तारातिः सिद्धिर्निर्वृत्तम् ॥ १५ ॥
 काम-क्रोध-महामान-लोभ-हर्षमदाह्वयान् ।
 स जिगायारिषड्वर्गानन्तरङ्गसमुद्भवान् ॥ १६ ॥
 प्रभुजा मन्त्रजोत्साहसम्भवाः शक्तयः प्रभोः ।
 तस्य स्फुरन्ति तिस्रोऽपि श्रावकान्वयजन्मनः ॥ १७ ॥
 स्वाम्यमात्य-सुहृत्कोश-देश-दुर्गबलाश्रितम् ।
 राज्यमित्येव सप्ताङ्गमाप्तवान् जिनभाषितम् ॥ १८ ॥

समस्त उत्तम वस्तुओंसे परिपूर्ण जम्बू वृक्षसे अंकित इस जम्बू द्वीपमें भारत नामक क्षेत्र है जो कि तीर्थङ्करोंके जन्म आदि कल्याणकोंसे पवित्र हुआ है । इस भारत क्षेत्रमें काशी नामका प्रदेश है जो सम्पत्तिका निधान और त्रिभुवनमें विख्यात है । इस काशी नामके उत्तम देशमें वाराणसी नामकी प्राचीन नगरी है । इस नगरीमें एक समय अपार प्रतिभावान् पद्मनाभ नामका राजा हुआ जो अपनी श्रीमती नामकी रानीके नेत्ररूपी नील कमलोंको चन्द्रके समान प्रसन्न करनेवाला था ॥ ६-११ ॥

यह राजा (आन्वीक्षिकी (विज्ञान), त्रयी (वेद), वार्ता (अर्थशास्त्र) और दण्डनीति (राजनीति) इन चारों विद्याओंको भले प्रकार समन्वय रूपसे जानता था । वह सन्धि (मेल करना), विग्रह (लड़ाई करना), यान (आक्रमण करना), आसन (घेरा डाल बैठना), संश्रय (अन्य राजाका आश्रय लेना) तथा द्वैधीभाव (फूट डालना) इन राजनीतिके छह गुणोंको भी स्पष्ट रीतिसे जानता था । वह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थोंके स्वरूपको तथा क्षय, स्थान और वृद्धि नामक व्यवस्थाओंको असाधारण रीतिसे जानता था । वह यह भी जानता था कि वचन, मन और दैव रूप सिद्धियोंमें कैसे सामञ्जस्य बैठाया जाय । चय, उपचय और मिश्र अर्थात् चयोपचय इन तीनों अभ्युदयोंको वह अपने शत्रुओंपर विजय और लोक कल्याण द्वारा निरन्तर साधा करता था । उसने काम, क्रोध, मान, लोभ, हर्ष और मद नामक छह अन्तरंग शत्रुओंको जीत लिया था । श्रावक कुलमें उत्पन्न उस राजाके प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति ये तीनों राजशक्तियाँ स्फुरायमान थीं । जिन भगवान्ने जो स्वामी, अमात्य,

सहायं साधनोपायं देशं कोशं बलाबलम् ।
 विपत्तेश्च प्रतीकारं पञ्चाङ्गं मन्त्रमाश्रयत् ॥ १६ ॥
 सामदानं च भेदं च दण्डमुदण्डभण्डनम् ।
 यथायोग्यं यथाकालं वैद्युपाय-चतुष्टयम् ॥ २० ॥
 वाग्दण्डयोः स पारुष्यं त्यक्तवानर्थदूषणम् ।
 पान-स्त्री-मृगया-घृतमिति व्यसनसप्तकम् ॥ २१ ॥
 स एकदा तथा सार्धं मधुक्कीडामना वनम् ।
 यानपश्यत्पुरोद्वारे मुनिं मासोपवासिनम् ॥ २२ ॥
 भोजयर्षिमभुं देवि भणित्वा श्रीमतीमिति ।
 तदभुक्त्यै प्रेषयामास स्वयं च गतवान् वनम् ॥ २३ ॥
 भोगान्तरायकृत्पापः कुत एष समागतः ।
 इति ध्यात्वा नृपाद् भीता तं नीत्वा सागता गृहम् ॥ २४ ॥
 इक्ष्वाकुमिश्रिताहारं ददौ तस्य महामुनेः ।
 स योग्यमिति सञ्चिन्त्य भुक्त्वा यावद्वनं व्रजेत् ॥ २५ ॥
 वेदना महती तावदङ्गेऽभूदत्र चाध्वनिः ।
 निपपात जनैर्नीतः कृच्छ्रतो जिनसद्गनि ॥ २६ ॥
 तत्र तैर्भार्तिकैरुक्तं हा हा धिग्मेदिनीपतेः ।
 यस्य वल्लभया दूनः कदन्नेन महामुनिः ॥ २७ ॥

सुहृत्, कोश, देश, दुर्ग और बल ये राज्यके सात अंग बतलाये हैं उन्हें भी इस राजाने प्राप्त कर लिया था । सहाय, साधनोपाय, देशकाल-विभाग, कोश एवं बलाबल (?) तथा विपत्ति-प्रतीकार, ये जो मन्त्रसिद्धिके पाँच अंग बतलाये हैं उनका वह सदैव आश्रय लिया करता था । उदण्ड पुरुषोंके दमनार्थ जो साम, दान, भेद और दण्ड ये चार उपाय कहे गये हैं उन्हें भी वह राजा खूब जानता था । वाक् पारुष्य, दण्ड पारुष्य, अर्थदूषण, मद्यपान, वेश्यागमन, मृगया और घृतक्कीड़ा इन सात व्यसनोको भी राजाने छोड़ दिया था ॥ ११-२१ ॥

एक दिन राजा पद्मनाभ अपनी श्रीमती रानीको साथ लेकर वसन्त-क्कीड़ाकी इच्छासे वनको जा रहे थे कि उन्हें नगरके द्वारपर ही एक मासोपवासी मुनिराजके दर्शन हुए । तत्काल उन्होंने श्रीमती रानीको आदेश दिया कि हे देवि, तुम लौटकर राजभवनको जाओ और मुनिराजको विधिपूर्वक आहार कराओ । रानीको इस प्रकार आदेश देकर राजा स्वयं वनको चले गये ॥ २२-२३ ॥

वन क्रीडामें इस अकस्मात् उत्पन्न हुए विघ्नसे रानीको बहुत बुरा लगा । वह मनमें विचारने लगी—मेरे भोगोंमें अन्तराय करनेवाला यह पापी कहाँसे आ गया । तथापि राजाके भयसे वह बिना कुछ कहे मुनिराजको साथ लेकर घरको लौट आई । उसने उन महामुनिको इक्ष्वाकु (कड़वी तुम्बी), मिश्रित आहार दिया । मुनिराजने उसे ही योग्य समझकर ग्रहण कर लिया और आहार करके वे वनकी ओर चल पड़े ॥ २४-२५ ॥

किन्तु मार्गमें ही मुनिराजके शरीरमें महान् वेदना उत्पन्न हो उठी । यहाँ तक कि वे शिथिल होकर भूमिपर गिर पड़े । लोग बड़े कष्टसे उन्हें जिन-मन्दिरमें लाये । भक्तजनोंमें

आगतोऽथ वनाद राजा जनकोलाहल-श्रुतेः ।
 विवेद दुरनुष्ठानं महिष्याः स्वस्य दुर्मतेः ॥ २८ ॥
 उदात्य भूषणान्याशु वचोवज्रेण ताडिता ।
 अवध्याऽसि दुराचारे तेनागाराद्विहारिता ॥ २९ ॥
 पूजितान्तःपुरेणापि मानभङ्गेन दुःखिता ।
 सद्योऽपि कुष्ठिनी जाता आर्त्तध्यानेन सा मृता ॥ ३० ॥
 महिषी महिषी जाता पापेन मृतमातृका ।
 पल्लवे कर्दमे मग्ना नग्नांटे पश्यति स्म सा ॥ ३१ ॥
 तमेव वैरभावेन क्रुद्धा शृङ्गे विधुन्वती ।
 मारितुं प्रसभं मग्ना मृताभूदथ गर्दभी ॥ ३२ ॥
 पाश्चात्यपादघातेन स मुनिः पुनराहतः ।
 व्रजन् चर्यामनार्याणां दुर्लभोऽपि च सध्वनि ॥ ३३ ॥
 भूयोऽपि पापिनी मृत्वा बभूव पुरशूकरा ।
 भक्षयन्ती विशं विश्वकद्रुमिश्राप्युपद्रुता ॥ ३४ ॥
 क्षत्तिपासादिता मातृवर्जिता च पुनर्मृता ।
 संवरीभूय चाण्डाल्या दुष्टगर्भे पुनः स्थिता ॥ ३५ ॥

हाहाकार मच गया । वे कहने लगे—धिक्कार है इस पृथिवीपतिको जिसकी बल्लभा रानीने ऐसे महामुनिको कुत्सित अन्नका भोजन कराकर इस प्रकार पीड़ित किया ॥ २६-२७ ॥

इसी बीच लोगोंका कोलाहल सुनकर राजा वनसे लौट आये और उन्होंने अपनी दुर्बुद्धि रानीके कुकृत्यकी कथा सुनी । राजाको रानीपर बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ । उन्होंने तत्काल रानीके सब आभूषण उतरवा लिये, वज्र समान कठोर शब्दोंसे उसकी ताड़ना की और उसे यह कहकर घरसे निकाल दिया कि हे दुराचारिणी, स्त्री होनेके कारण तू अवध्य है, नहीं तो मैं तुझे इस घोर अपराधके लिए प्राणदण्ड देता ॥ २८-२९ ॥

जो रानी समस्त अन्तःपुरमें पूजी जाती थी उसे स्वभावतः अपने इस मान-भंगसे बड़ा दुःख हुआ । वह शीघ्र ही कुछ रोगसे पीड़ित हो उठी और बड़े आर्तध्यानसे उसका मरण हुआ ॥ ३० ॥

जो राजमहिषी थी वह अपने पापके कारण अगले भवमें महिषी अर्थात् भैंस हुई । उत्पन्न होते ही उसकी माताका मरण हो गया । एक दिन वह ज्योंही अपनी प्यास बुझानेके लिए तालाबमें प्रविष्ट हुई त्योंही कीचड़में फँस गई । उसी दशामें उसे एक नग्न मुनिके दर्शन हुए । किन्तु पूर्व वैर-भावके कारण उसे उनपर क्रोध आया और वह उन्हें मारनेकी इच्छासे अपने साँगोंको हिलाने लगी । इसका परिणाम यह हुआ कि वह और भी गहरी कीचड़में मग्न होकर मर गई ॥ ३१-३२ ॥

अपने दुर्भावके फलसे वह रानीका जीव इस बार मरकर गर्दभी हुआ । एक बार अनार्योंको दुर्लभ मुनिराज चर्याको जा रहे थे । उन्हें देखकर उस दुष्ट गर्दभीने रेंकते हुए अपनी पिछली लातोंसे उन्हें चोट पहुँचाई ॥ ३२-३३ ॥

वह पापिनी गर्दभी मरकर अबकी बार ग्राम-शूकरी हुई और विष्टा खाती फिरने लगी ।

तदैव तत्पिता जातमात्र्यां च जननी मृता ।
 योजनैकमहापूतिगन्धा बन्धुभिरुज्जिता ॥ ३६ ॥
 फलान्यौदुम्बरादीनि भक्षयन्ती वने स्थिता ।
 सूरिणा सह शिष्येण दैवयोगाद्विलोकिता ॥ ३७ ॥
 पूतिगन्धोऽयमत्यन्तं कुत एति महामुने ।
 शिष्येण ऋषिराभाणि पुनरेतेन भक्ष्यते ॥ ३८ ॥
 कृतो यया पुरा साधो पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ।
 पापाद् भ्रान्त्वा भवे जाता सेयं चाण्डालबालिका ॥ ३९ ॥
 संसारसागरं शास्त्रसागरेषा तरिष्यति ।
 कथं कथय भो नाथ निग्रन्थेनाथ कथ्यते ॥ ४० ॥
 महापापावृतो जन्तुर्जैनधर्मेण शुद्ध्यति ।
 किमत्र जानतोऽप्येतत्त्वया धीमन् प्रपृच्छ्यते ॥ ४१ ॥
 श्रुत्वा परस्परप्रश्नोत्तरोपन्यासमञ्जसा ।
 सा श्रद्धयोपशम्यास-पञ्चजं तु फलव्रता ॥ ४२ ॥
 किञ्चिच्छुभाशया प्रेत्य पुरीमुज्जयिनीमिता ।
 जातैकक्रोशदुर्गन्धा दुविधवाक्षणाङ्गजा ॥ ४३ ॥

उसके पीछे कुत्ते लगे रहते थे । वह भूख-प्याससे पीड़ित रहती थी । उसकी माता पहले ही मर चुकी थी । इस प्रकार दुःख भोगते हुए उसका मरण हुआ ॥ ३४-३५ ॥

शूकरीकी पर्यायसे निकलकर रानीका जीव साँभरी हुआ और पुनः मरकर एक चाण्डालीके दुष्ट गर्भमें आया । उत्पन्न होते मात्र ही तत्काल उसकी माताकी मृत्यु हो गई और उसका पिता भी उसी समय मर गया । उसके मुखसे एक योजन तक फैलनेवाली महा दुर्गन्ध निकलती थी । इस विपत्तिके कारण उसके बन्धुओंने उसका परित्याग कर दिया । अब वह ऊमर आदि फलोंका भक्षण करती हुई वनमें रहने लगी ॥ ३६-३७ ॥

दैवयोगसे एक दिन अपने शिष्य सहित एक मुनिराज वहाँसे निकले । मुनिराजने उसे देख लिया । शिष्यने उसकी दुर्गन्ध पाकर मुनिसे पूछा—हे महामुनि ! यह अत्यन्त बुरी दुर्गन्ध कहाँसे आ रही है ? तब मुनिराजने बतलाया—हे साधु ! यह जो चाण्डाल बालिका दिखाई दे रही है, उसने अपने एक पूर्वजन्ममें पूज्य मुनिराजका निरादर किया है । उसी पापके फलसे संसारकी नाना नीच योनियोंमें परिभ्रमण करते हुए अब इसने यह चाण्डाल-बालिकाका जन्म पाया है और उसीकी यह दुर्गन्ध फैल रही है । इस बातको सुनकर शिष्यने अपने गुरुसे फिर पूछा—हे शास्त्रसमुद्रके पारगामी नाथ ! मुझे यह भी बतलाइए कि अब यह चाण्डाल-बालिका किस प्रकार इस संसार रूपी सागरको तर सकेगी ? अपने शिष्यके इस प्रश्नको सुनकर वे निग्रन्थ मुनि फिर बोले—

हे साधु ! महाघोर पापसे युक्त जीव भी इस जैनधर्मके द्वारा ही शुद्ध होते हैं । हे विद्वन्, तुम इस बातको जानते हुए भी मुझसे क्यों पूछते हो ? ॥ ३८-४१ ॥

इस प्रकार गुरु और शिष्यके बीच हुए प्रश्नोत्तरोंको उस दुर्गन्धा बालिकाने सुन लिया । उसने अपनी श्रद्धाके बलसे अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव सम्बन्धित उपार्जित कर्मोंका उपशम कर लिया था । इस उपशमके फलसे कुछ शुभ भावना सहित मरण करके उसने उज्जैनी

तत्रापि पितरौ तस्या मृतिमापतुरेनसा ।
 वृद्धिगता समं कष्टैः पीडिता साशनायया ॥ ४४ ॥
 अत्रान्तरे पुरोधाने महामुनि-समागमम् ।
 यशःसेनमहाराजं वनपालो न्यवेदयत् ॥ ४५ ॥
 तं सुदर्शननामानं महामुनिशतावृतम् ।
 नमस्कर्तुं महीमर्त्ता निर्गतो दुर्गतिच्छिदम् ॥ ४६ ॥
 निर्जगामानु तं देवी महादेवीति विश्रुता ।
 वसन्ततिलकाद्यालिवृत्तान्तःपुरसंगता ॥ ४७ ॥
 गजान्निजादथोत्तीर्य वर्यासजनवेष्टितः ।
 त्रिः परीत्य नमस्कृत्य तं नृपः पुरतः स्थितः ॥ ४८ ॥
 साऽपि मेलापकं दृष्ट्वा तृणाद्युत्तार्य मूर्च्छितः ।
 भवान्तरादि जल्पन्तं तं नतातिविदूरतः ॥ ४९ ॥
 श्रावं श्रावं शुभध्याना धर्माधर्मफलश्रुतिम् ।
 जाता जातिस्मरा भूमौ पपात किल मूर्च्छिता ॥ ५० ॥
 राज्ञा शीतोपचारेण सचेताः किल कारिता ।
 पृष्टा च किमिदं पुत्रि यत्त्वमप्यत्र मूर्च्छिता ॥ ५१ ॥

नगरीके एक गरीब ब्राह्मणके घरमें बालिकाका जन्म ग्रहण किया । उसके शेष कर्मोंके पापसे अभी भी उसकी दुर्गन्ध एक कोस तक जाती थी । जन्म होते ही उसके माता-पिताका मरण हो गया और वह भूख-प्यासके घोर कष्टोंसे पीड़ित होने लगी ॥ ४२-४४ ॥

इसी समय एक दिन उस नगरीके महाराज यशःसेनको वनपालने आकर खबर दी कि नगरके उद्यानमें महामुनि संघका आगमन हुआ है । सौ महा मुनियोंके संघ सहित विराजमान दुर्गंतिका नाश करनेवाले सुदर्शन नामक उन मुनिराजको नमस्कार करनेके निमित्त राजा अपने महलसे निकले । उनके पीछे उनकी महादेवी पदकी धारक देवी वसन्ततिलका आदि प्रमुख सखियोंके साथ समस्त अन्तःपुर सहित चल पड़ी ॥ ४५-४७ ॥

जब वे उद्यानके समीप पहुँचे तब राजा अपने हाथीपरसे नीचे उतर पड़े और अपने कुछ चुने हुए मात्र साथियोंको लेकर मुनिराजके समीप पहुँचे । राजाने मुनिराजकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वे नमस्कार करके उनके सन्मुख बैठ गये ॥ ४८ ॥

उस समय वह दुर्गन्धा बालिका घास लकड़ीका गट्टा लिये हुए वहाँसे जा रही थी । उद्यानमें लोगोंका मेला देखकर उसने अपना वह घास आदिका गट्टा सिरसे उतारकर भूमिपर रख दिया और भवान्तरादि रूप उपदेश देते हुए उन मुनिराजको बहुत दूरसे ही प्रणाम किया ॥ ४९ ॥

उसने मुनिराजके मुखसे धर्म और अधर्मके अच्छे और बुरे फलोंका उपदेश सुना । उस उपदेशको लगातार शुभ ध्यान पूर्वक सुनते-सुनते उसे जाति-स्मरण हो गया, जिससे उसने जान लिया कि किस पापके फलसे उसे रानीकी पर्यायसे च्युत होकर दुर्गन्धा होनेके दुःख भोगने पड़े हैं । यह जानकर वह मूर्च्छित हो गई और भूमिपर गिर पड़ी । राजाने शीतोपचार कराकर उसे सचेत किया और उससे पूछा—हे पुत्रि, क्या कारण है जो तू यहाँ मूर्च्छित हो गई ? ॥ ५०-५१ ॥

सा जगौ पूर्ववृत्तान्तं देवाहं राजवल्लभा ।
 श्रीमती साधुसन्तापकारिणी कुष्ठिनी मृता ॥ ५२ ॥
 गर्वरी (?) गर्दभी जाता शूकरी संवरी तथा ।
 पुनर्योजनदुर्गन्धा चाण्डाली विप्रजाधुना ॥ ५३ ॥
 मुनेराकर्ण्य वाक्यानि स्मृत्वा दुःखानि मूर्च्छिता ।
 मम ज्वरयते सेयं साधुगा कटुतुम्बिका ॥ ५४ ॥
 वचः सत्यमिदं साधो परमं नृप नान्यथा ।
 भूयोऽपि कुतकाद्राज्ञा विशेषात्तत्कथा श्रुता ॥ ५५ ॥
 कथं त्वहि परे लोका भविष्यन्ति शुभावहाः ।
 अमुष्या अथ स प्राह सुगन्धदशमीव्रतात् ॥ ५६ ॥
 तत्कथं क्रियते तात भूपताविति जल्पते ।
 विमानस्खलनादेत्य धनजय-वियचरे ॥ ५७ ॥
 नमस्कृत्य समासीने सावधानेऽखिले जने ।
 अवक् (?) प्रति नृपं कामकारिकण्ठीरवो मुनिः ॥ ५८ ॥
 भद्रभाद्रपदे मासे शुक्लेऽस्मिन् पंचमी दिने ।
 उपोष्यते यथाशक्ति क्रियते कुसुमाञ्जलिः ॥ ५९ ॥

राजाके उस प्रकार पूछनेपर दुर्गन्धा अपने पूर्व भवका वृत्तान्त बतलाने लगी । वह बोली—हे देव ! मैं अपने पूर्व जन्ममें राजाकी प्यारी श्रीमती नामकी रानी थी । मैंने दुष्ट भावसे मुनिराजको कुत्सित अन्नका भोजन कराकर सन्ताप पहुँचाया । उसी पापके फलस्वरूप मैं कुष्ठिनी होकर मरी । तत्पश्चात् मैंने क्रमशः गर्वीली भैंस, गदही, शूकरी और साँभरीकी पर्याय धारण की । फिर मैं एक योजन दुर्गन्ध छोड़नेवाली चाण्डाल-पुत्री हुई । वहाँसे निकलकर अब इस भवमें मैं ब्राह्मण कन्या हुई हूँ । मुनिराजके वचनोंको सुनकर मुझे अपने वे सब पूर्व पर्यायोंके दुख स्मरण हो आये । इसी कारण मैं मूर्च्छित हो गई । साधुको दिया गया वह कड़वी तुम्बीका आहार अभी तक मुझे दुःख पहुँचा रहा है ॥ ५२-५४ ॥

दुर्गन्धाकी बात सुनकर राजाने मुनिराजसे पूछा—हे साधु, क्या दुर्गन्धाकी कही हुई बातें सत्य हैं ? मुनिराजने उत्तर दिया—राजन्, जो कुछ इस बालिकाने कहा है वह सब परम सत्य है, उसमें कुछ भी झूठ नहीं है । तब राजाने पुनः कौतुकवश दुर्गन्धाकी कथा विशेष रूपसे विस्तार पूर्वक कहलवाकर सुनी । उस कथाको सुनकर राजाने फिर पूछा—हे मुनिराज, इस कन्याका परलोक कैसे सुधर सकेगा ? मुनिराजने कहा—सुगन्ध दशमी व्रतके द्वारा ही इस बालिकाका परलोक सुधरेगा । राजाने फिर पूछा—हे मुनिराज, सुगन्ध दशमी व्रत किस प्रकार किया जाता है ? राजाने जब यह प्रश्न किया, उसी समय वहाँ आकाश मार्गसे आते हुए धनंजय नामक विद्याधरका विमान स्खलित हुआ । वह विद्याधर अपने विमानसे उतरकर मुनिराजके दर्शनको आया और मुनिराजको नमस्कार करके यथास्थान बैठ गया । समस्त दर्शक जन भी सावधान हो गये । तब कामरूपी हस्तीको सिंहके समान दमन करनेवाले मुनिराज राजाके प्रश्नके उत्तरमें सुगन्धदशमी व्रतका पालन करनेकी विधि बतलाने लगे ॥ ५५-५८ ॥

मुनिराज बोले—उत्तम भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिके दिन उपवास करना

तथा षष्ठ्यां च सप्तम्यामष्टम्यां नवमीदिने ।
 जिनानामग्रतो भूयो दशम्यां जिनवेश्मनि ॥ ६० ॥
 उपवासं समादाय विधिरेष विधीयते ।
 चतुर्विंशति तीर्थेशां स्नपनं प्रप्रणीयते ॥ ६१ ॥
 पूजनं स्तवनं जापं दशशः क्रियते बुधैः ।
 मुखैर्दशभिरामासी घटस्तत्र निधीयते ॥ ६२ ॥
 धूपो दशविधस्तत्र दह्यते मृदुनाग्निना ।
 कृष्णागुर्वादिरर्चयं विशेषेण विधीयते ॥ ६३ ॥
 कुङ्कुमागुरुकर्पूरचन्दनादिविलेपनम् ।
 तत्प्रकारं च विज्ञेयं तद्वदेवाक्षतादिकम् ॥ ६४ ॥
 संलिखेत्सप्तभिर्धान्यैः स्वस्तिकं तत्र दीपकान् ।
 स्थापयेदश चेत्येवं दशाब्दान् परिकल्पयेत् ॥ ६५ ॥
 पूर्णोऽथ दशमे वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ।
 शान्तिकं वामिषेकं वा महान्तं विधिवत्सृजेत् ॥ ६६ ॥
 पुष्पाणां प्रकरं कुर्याज्जिनाग्रे च तदङ्गने ।
 विचित्रं दशभिर्वर्णैर्वितानं च वितानयेत् ॥ ६७ ॥
 ध्वजान् दशपताकांश्च नादिन्यस्तारिकास्तथा ।
 चामराणां युगैर्धूपदहनानि दश क्रमात् ॥ ६८ ॥

चाहिए और भगवान्‌को कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिए । उसी प्रकार जैन मन्दिरमें षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी और फिर दशमीको भी भगवान्‌के आगे कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिए । दशमीको पुनः उपवास धारण करके निम्न विधिसे व्रत पालन करना चाहिए—

उस दिन चौबीसी भगवान्‌का अभिषेक कराकर दश पूजाएँ करना चाहिए । दश स्तुतियाँ पढ़ना चाहिए और दश बार जाप देना चाहिए । दशमुख वाले एक घटकी स्थापना करके उसमें मन्द अग्नि जलाकर दशांगी धूपका होम करना चाहिए । इस विधि काली अगरवत्ती आदि सुगन्धी द्रव्योंका उपयोग विशेष रूपसे करना चाहिए । केशर, अगर, कर्पूर और चन्दन आदिको घिसकर शरीरमें लेप करना चाहिए और अक्षतादि अष्ट द्रव्य तैयार कर पूजन करना चाहिए । जिस प्रकार यह विधान किया जाता है उसकी समस्त विधि शास्त्रसे जान लेना चाहिए । सात प्रकारका धान्य लेकर उससे स्वस्तिक लिखना चाहिए और उसमें दश दीपक रखकर जलाना चाहिए । इस प्रकार यह समस्त विधि दश वर्ष तक करना चाहिए ॥ ५९-६५ ॥

प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला पंचमीसे लेकर दशमी तक उक्त प्रकार व्रत पालन करते हुए जब दश वर्ष पूर्ण हो जाँय तब उस व्रतका उद्यापन करना चाहिए । उस अवसरपर शान्ति विधान या महाभिषेक या इसी प्रकारकी कोई महान् विधि प्रारम्भ करना चाहिए । जिन भगवान्‌की वेदीके आगे मन्दिरके आँगनमें खूब फूलोंकी शोभा करना चाहिए । दश रंगोंका चित्र-विचित्र चँदेवा तानना चाहिए । दश ध्वजा, दश पताका, दश बजनेवाली तारिकाएँ (घण्टिका), दश जोड़ी चमर और दश धूप घट, ये सब दश दश सजाना चाहिए । इस अवसरपर आरातीय

आरातिकानि पुस्तानि सवस्त्राणि सहौषधैः ।
 भवन्ति संघदानानि तथार्याद्यंशुकानि च ॥ ६६ ॥
 शौच-संयम-संज्ञानसाधनानि हि यानि च ।
 यथायोग्यं प्रदेयानि मुनिभ्योऽन्यान्यपि ध्रुवम् ॥ ७० ॥
 स्तोकोऽपि विधिरुद्योत्यो भक्त्या बहुफलप्रदः ।
 फलं न सर्वथा चिन्त्यं स्तोकेन स्तोकमित्यपि ॥ ७१ ॥
 शाकपिण्डप्रदानेन रत्नवृष्टिः प्रजायते ।
 तद् भक्तिवैभवं कालापेक्षया च निदर्श्यते ॥ ७२ ॥
 नरो वा वनिता वापि व्रतमेतत्समाचरेत् ।
 इहैव सुखितामेत्य स्वर्गमिवा शिवीभवेत् ॥ ७३ ॥
 श्रुत्वेति सम्रजो राजा पूतिगन्धा द्विजाङ्गजा ।
 गृह्णन्ति स्म व्रतं प्रायः सर्वेऽपि हितकाक्षया ॥ ७४ ॥
 साहाय्यात्सा नृपादीनां समाराध्योत्तमं व्रतम् ।
 समाधिना मृतार्याणां समीपे जिनभावना ॥ ७५ ॥
 अथारित विश्वविख्यातं पुरातनं कनकं पुरम् ।
 तस्मिन्कनकमालेष्टः कनकप्रभभूमिभृत् ॥ ७६ ॥

अर्थात् आधुनिक पुस्तकों, वस्त्रों और औषधोंका दान संघको देना चाहिए । अर्जिकाओंको भी वस्त्रादिक प्रदान करना चाहिए । मुनियोंको शौचके साधन कमण्डल, संयमके साधन पिच्छिका, ज्ञानके साधन शास्त्र तथा इसी प्रकारके अन्य धर्म व ज्ञानकी साधनामें उपयोगी वस्तुओंका यथायोग्य दान करना चाहिए ॥ ६६-७० ॥

ऊपर कही गई व्रत उद्यापनकी विधि यदि अल्प रूपमें भी भक्ति सहित की जाय तो वह बहुत फलदायक होती है । ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए कि सजावट व दान आदिकी विधि यदि थोड़ी की जायगी तो उसका फल भी थोड़ा होगा । साग मात्रका थोड़ा-सा भोजन सुपात्रको करानेसे भी रत्नोंकी वृष्टि रूप महान् फल प्राप्त होता है । यह सब मुख्यतासे भक्तिका ही प्रभाव है । उस भक्तिके प्रदर्शनका स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार बतलाया जाता है । जो कोई नर अथवा नारी इस व्रतका पालन करता है, वह इस जन्ममें सुख पाता है, मरकर स्वर्गमें देव होता है और फिर अनुक्रमसे सुख भोगता हुआ मोक्षके सुखको भी पा लेता है ॥ ७१-७३ ॥

मुनि द्वारा बतलाई हुई सुगंध दशमी व्रतके पालन करनेकी विधिको सुनकर उस राजाने, उसकी समस्त प्रजाने, तथा उस दुर्गंधा द्विज-कन्याने एवं प्रायः सभीने अपने हितकी वांछासे उस व्रतको ग्रहण किया । राजा व अन्य धार्मिक जनोंकी सहायतासे दुर्गंधाने उस उत्तम व्रतकी भले प्रकार आराधना की । इस प्रकारके धर्माचरण सहित दुर्गंधाने इस बार आर्यिकाओंके समीप जिन भावना पूर्वक समाधि-मरण किया ॥ ७४-७५ ॥

अथ कनकपुर नामका एक विश्वविख्यात प्राचीन नगर है । वहाँ कनकप्रभ नामका राजा अपनी कनकमाला नामक रानी सहित राज्य करता था । इस राजाका जिनदत्त नामक

राज्ञः श्रेष्ठी बभूवास्त्य पुण्यधीर्जिनदत्तवाक् ।
 तत्सनामा प्रियेतस्य तनूजा साभवत्तयोः ॥ ७७ ॥
 अदृष्टापत्यवक्त्रेण श्रेष्ठिना बहुमानिता ।
 रूपलावण्यसदीप्ति भाग्यसौभाग्यराजिता ॥ ७८ ॥
 सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वावयवसुन्दरा ।
 सिताभ्राधिकसौरभ्यसुगन्धितदिगन्तरा ॥ ७९ ॥
 योषितां तिलकीभूता तिलकादिमतिर्नता ।
 नरनारीकराम्भोजकुचकुङ्कुमललालिता ॥ ८० ॥
 अथान्यस्मिन्दिने कन्या पांपशेषेण वीक्षिता ।
 बभूव तत्प्रतापेन भूयोऽपि मृतमातृका ॥ ८१ ॥
 अथास्ति वणिजां नाथो वरे गोवर्धने पुरे ।
 सुधीः ऋषभदत्तारव्यो बन्धुमत्यङ्गजास्य च ॥ ८२ ॥
 रजोदर्श तया युद्ध्वा लेभे तेजोमतीं सुताम् ॥ ८३ ॥
 स्नानैर्विलेपनैर्वस्त्रैर्भूषणैः शयनासनैः ।
 लालयामास तामन्यां दुनोति स्म विटप्रसूः ॥ ८४ ॥
 तद्विलोक्य वणिग्जायावशः संच्छन्धमानसः ।
 अशिक्षयद् द्वयं दास्योः समर्थं तिलकामिति ॥ ८५ ॥
 युवाभ्यां सर्वयत्नेन पालनीयेयमजसा ।
 ऋते मातुरपत्यानां दुष्करा जीवनक्रिया ॥ ८६ ॥

पुण्यवान् सेठ था । इसकी सेठानीका नाम था जिनदत्ता । इन्हींके वह दुर्गंधाका जीव पुत्री रूपसे उत्पन्न हुआ । सेठने अभी तक अपनी सन्तानका मुख नहीं देखा था । अतः उसने इस कन्याके जन्मको ही धन्य माना । कन्या भी रूप, लावण्य, कान्ति एवं भाग्य-सौभाग्यसे परिपूर्ण थी । वह समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न व अपने सभी अंगोंसे सुन्दर थी । उसके शरीरसे निकलनेवाली सुगन्ध कर्पूरसे भी बढ़कर थी और सब दिशाओंको सुगन्धित करती थी । वह समस्त नारियोंमें तिलकके समान श्रेष्ठ थी जिससे उसका सार्थकनाम तिलकमती रखा गया । वह समस्त नर-नारियोंके हस्तकमलों व स्तनपान द्वारा लालित पालित होने लगी ॥ ७६-८० ॥

किन्तु इस कन्याका पूर्वोपार्जित पाप अभी भी शेष था जिसके प्रतापसे उसे मातृवियोग का दुःख भोगना पड़ा । तब उसके पिताने कामके वशीभूत हो गोवर्धनपुरके धीमान् वणिग्वर ऋषभदत्तकी पुत्री बन्धुमतीसे अपना विवाह कर लिया । उसके साथ तामसी वृत्तिसे भोग-विलास करते हुए उसके एक पुत्री हुई जिसका नाम रखा गया तेजमती ॥ ८१-८३ ॥

नीच प्रकृति सेठानी अपनी इस औरस पुत्रीको स्नान, विलेपन, वस्त्र, आभूषण, शयन, आसन आदि द्वारा खूब लाड़-प्यारसे पालने लगी और अपनी उस सौतेली कन्याको दुःख देने लगी । सेठ अपनी नयी सेठानीके वशमें था । तथापि सेठानीका वह व्यवहार देखकर उसके मनमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ । उसने अपनी तिलकमती नामक कन्याको दो दासियोंके सुपुर्द किया और उन्हें आदेश दिया कि तुम सब प्रकार यत्नपूर्वक इस कन्याका पालन-पोषण करो । सब है माताके बिना बाल-बच्चोंकी जीवन क्रिया बड़ी कठिन होती है ॥ ८४-८६ ॥

अथ द्वीपान्तरं राज्ञो निदेशाद्रत्नहेतुना ।
 व्रजन् बन्धुमतीं प्रोचे गिरः सांयात्रिकोत्तमः ॥ ८७ ॥
 विप्रकृष्टः प्रिये पंथा नृपस्तु दुरतिक्रमः ।
 तनूजयोः क्रमात्कार्यो विवाहः संपदानया ॥ ८८ ॥
 गतेऽथ वांश्चजां नाथ सुगन्धां याचितामापि ।
 न दत्ते दर्शयन्ती सा निजां तेजोमतीं सुताम् ॥ ८९ ॥
 कुलीनो गतरुग्विद्वान् वपुष्मान् शीलवान् युवा ।
 पक्षलक्ष्मीपरीवारवरो हि भवतां सुतः ॥ ९० ॥
 जन्मना भक्षिता माता पिता दूरं प्रवासितः ।
 लक्ष्महीना गृहेऽस्माकं सपत्नीयसुता न्विमा ॥ ९१ ॥
 इयं तेजोमती साक्षाद्रती रम्भा तिलोत्तमा ।
 याच्यते न कथं हृद्या मुक्तामालेव निस्तुला ॥ ९२ ॥
 तथैवं जल्यते तैस्तु सैव भूयोऽपि मार्गिता ।
 प्रसह्य न भवेत्प्रीतिरिति दत्ते स्म तां सका ॥ ९३ ॥
 दर्शिता तिलकोद्गोदुः मण्डिता दुहिता निजा ।
 शाम्बरी सहजा स्त्रीणां किं पुनर्न कृदुदभवा ॥ ९४ ॥
 विवाहस्याथ सामग्र्यां कृतायां चारुसम्पदि ।
 समागते शुभे लग्नदिवसे सुप्रतीक्षिते ॥ ९५ ॥

एक दिन सेठजीको राजाका आदेश मिला कि वे किसी दूसरे द्वीपको जाकर अच्छे-अच्छे रत्न खरीदकर लावें । सेठने विदा होते समय बन्धुमती सेठानीसे कहा—हे प्रिये, मैं बहुत दूर विदेशको जा रहा हूँ, क्योंकि राजाकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया जा सकता । किन्तु तुम यथासमय क्रमसे दोनों पुत्रियोंका विवाह कर देना ॥ ८७-८८ ॥

सेठके चले जानेपर सुगन्धाकी याचना करनेवाले वर आने लगे । किन्तु सेठानी उसका विवाह स्वीकार न कर अपनी औरस पुत्री तेजमतीको ही उन्हें दिखलाती थी । वह याचना करनेवाले माता-पिताको कहती—देखिए, आपका पुत्र कुलीन, निरोग, विद्वान्, चंगा, शीलवान्, युवा और कुल-परिवारसे सम्पन्न वर है, जब कि हमारे घरकी इस लड़कीने जन्म लेते ही अपनी माताका भक्षण कर लिया और बड़े होते ही पिताको दूर देश भिजवा दिया । यह कुलक्षणा मेरी सपत्नीकी पुत्री है । इसके विपरीत यह जो तेजमती कुमारी है वह साक्षात् रति, रम्भा व तिलोत्तमाके समान सुन्दरी है और मोतियोंकी मालाके समान अनुपम हृदयहारिणी है; उसे आप क्यों नहीं वरण करते ? ॥ ८९-९२ ॥

किन्तु सेठानीके इस प्रकार तिलकमतीकी निन्दा और तेजमतीकी प्रशंसा करनेपर भी वरोंने तिलकमतीकी ही याचना की । सेठानीने जब यह जान लिया कि जबरदस्ती किसीकी किसोसे प्रीति नहीं कराई जा सकती, तब उसने तिलकमतीका ही कन्यादान करना स्वीकार कर लिया । किन्तु फिर भी सेठानीने छल करना नहीं छोड़ा । उसने विवाहके लिए दिखला तो दी तिलकमतीको, किन्तु मण्डन और शृङ्गार किया अपनी कन्या तेजमतीका ही । ठीक ही है, स्त्रियोंमें कुटिल चातुरी स्वाभाविक होती है, फिर कृत्रिम छलकी तो बात ही क्या है ॥ ९३-९४ ॥

अब विवाहकी सब सामग्री भले प्रकार बहुमूल्य रूपसे होने लगी । जब विवाहका

प्रदोषे मङ्गलस्नान-विलेपन-विभूषणैः
 उपस्कृत्यानयत्प्रेतवनं सा तिलकावतीम् ॥ ६६ ॥
 चतुर्दिक्षु चतुर्दीपमावारकसमन्वितम् ।
 निवेश्य तामिति प्रोच्य विमाता तिलकावतीम् ॥ ६७ ॥
 स्वयोग्यं वरमत्रस्था गवेषय शुभानने ।
 चेदिकासहिता वेश्म दुरात्मा सा निजं गता ॥ ६८ ॥
 तस्मिन्नेव शुभे लग्ने तेनैव सुवरेण च ।
 कन्या तेजोमती व्यूढा जनन्यनुमतेन सा ॥ ६९ ॥
 अत्रान्तरे महीपालः प्रासादात्प्रेक्षते स्म ताम् ।
 चिन्तयामास हृद्येवं किमेषा सुरकन्यका ॥ १०० ॥
 यक्षी वा किन्नरी किं वा योगिनी पूजनोद्यता ।
 किं स्विद्विद्याधरी कापि नारी वा काप्युपस्थिता ॥ १०१ ॥
 कौत्सेयकं करे कृत्वा भूपः कौतूहली गतः ।
 श्मशानं पृच्छति स्मैवं का त्वमत्र व्यवस्थिता ॥ १०२ ॥
 अमीर्मजनको राज्ञा प्रेषितो रत्नहेतवे ।
 विवाहे वञ्चिता मन्ये विमात्रा स्थापिताऽत्र मे ॥ १०३ ॥
 एवं वभाण सा पुत्रि त्वद्गरोऽत्र समेध्यति ।
 तेनात्मानं विधानेन सति त्वं परिणाययेः ॥ १०४ ॥
 पुनर्गता गृहं साहं वरं वीक्षे महामते ।
 नूनं तेजोमतीस्तत्र परिणीता भविष्यति ॥ १०५ ॥

प्रतीक्षित शुभदिन आया तब सन्ध्या समय सेठानीने तिलकमतीको मंगल स्नान कराया और उसे विलेपन-भूषणोंसे सुसज्जित किया । पश्चात् सेठानी उसे श्मशान भूमिमें लिवा ले गई । उसके चारों ओर उसने चार दीपक आवारक सहित प्रज्वलित कर दिये और तिलकमतीसे कहा—हे शुभानने, यहाँ बैठकर तू अपने योग्य वरकी प्रतीक्षा कर । इतना कहकर वह दुष्ट विमाता अपनी दासियों सहित अपने घर वापस आ गई और उसी शुभ लग्नमें उसी वरके साथ अनुमति देकर अपनी कन्या तेजमतीका विवाह कर दिया ॥ ९५-९९ ॥

उसी रात्रि अपने महलकी छतपरसे राजा नगरकी शोभा देख रहा था । श्मशानमें तिलकमतीकी ओर दृष्टि पड़ते ही वह अपने मनमें सोचने लगा—यह हृदयहारिणी कोई सुरकन्या है । अथवा कोई यक्षिणी या किन्नरी या कोई योगिनी किसी पूजामें लगी हुई है, अथवा कोई विद्याधरी या नारी वहाँ जा बैठी है ? कुतूहलवश राजाने अपने हाथमें तलवार ली और वह श्मशान भूमिपर जा पहुँचा । उसने कन्यासे पूछा—हे कन्ये, तू कौन है और किस कार्यके लिए यहाँ बैठी है ? कन्या बोली—मेरे पिताको राजाने रत्न लानेके लिए बाहर भेज दिया है । मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरी सौतेली माताने मुझे विवाहके सम्बन्धमें धोखा देकर यहाँ बिठला दिया है । उसने मुझसे कहा है—हे पुत्रि, तेरा वर यहीं आवेगा । उसीसे तू विधिवत् अपना विवाह कर लेना । हे महामति, अब मैं पुनः घर जाकर अपने वरको देखूंगी । यह तो निश्चित है कि वहाँपर तेजमतीका विवाह हो चुका होगा ॥ १००-१०५ ॥

यद्येवं सुन्दरि त्वं मां वृणीष्व मृगलोचने ।
 धृता पाणौ नृपेणाशु तयोमित्युदिते सति ॥ १०६ ॥
 प्रभाविकसने पूष्णः प्रातरुत्थाय स व्रजन् ।
 दृष्ट्वा हिवत्स्व यासि त्वं तथा चेलाञ्चले धृतः ॥ १०७ ॥
 नक्तं नक्तं समेष्यामि प्रियेऽहं वेश्म ते न्वहम् ।
 गच्छौकः स्वकमित्युक्ते गोपोऽहमिदमब्रवीत् ॥ १०८ ॥
 गते राज्ञि निजं सौधं बन्धुमत्यवदज्जनान् ।
 मङ्गलावसरे पापा न जाने सा ववचिद् गता ॥ १०९ ॥
 तारिके धारिके चम्पुरङ्गि कुरङ्गिके ।
 धर्म्ये कर्म्ये जिते धन्ये तिलका ददशे किमु ॥ ११० ॥
 पृच्छन्ती स्त्रीजनानेवं दर्शयिष्यामि किं मुखम् ।
 भर्तुर्गता गिरन्तीत्यं श्मशानं निवृत्तेर्गृहम् ॥ १११ ॥
 समक्षं सर्वलोकानां दृष्ट्वा तामित्युवाच सा ।
 दुःपुत्रि क्व गता रण्डेऽनुष्ठितं किमिह त्वया ॥ ११२ ॥
 मातर्मतेन तेऽत्रस्था वल्लवेन विवाहिता ।
 पश्यताकृत्यमेतस्यास्तच्छ्रुत्वा पूचकार सा ॥ ११३ ॥
 आनीता सा गृहं धृत्वा तथा रञ्जितलोकया ।
 नूनं निष्पादिता घात्रा स्त्रियः केवलमायया ॥ ११४ ॥

तिलकमतीकी बात सुनकर राजाने उससे पूछा—हे मृगलोचने सुन्दरि, यदि ऐसी बात है, तो तू मुझसे ही अपना विवाह क्यों नहीं कर लेती ? इतना कहकर और उसके 'ओम्'का उच्चारण करनेपर राजाने उसका पाणिग्रहण कर लिया ॥ १०६ ॥

प्रातःकाल ज्योंही सूर्यकी किरण प्रकट हुई त्योंही राजा वहाँसे उठकर प्रस्थान करने लगा । तब तिलकमतीने उसका अँचल पकड़कर उसे रोक लिया और कहा—आप सर्पके समान मुझे दशकर कहाँ जाते हो ? तब राजा बोला—हे प्रिये, मैं प्रतिदिन रात्रिको तुम्हारे घर आया करूँगा । तुम भी अब अपने घर जाओ । इतना कहकर और 'मैं गोप हूँ' ऐसा अपना परिचय देकर राजा वहाँसे अपने महलको चला गया ॥ १०७-१०८ ॥

यहाँ श्मशानमें जब यह घटना हो रही थी तब सेठके घरपर क्या हो रहा था सो सुनिष् । सेठानी बन्धुमतीने श्मशानसे लौटते ही लोगोंमें यह कहना प्रारम्भ किया—अरे, यह पापिनी कन्या इस विवाहके मंगलावसरपर न जाने कहाँ चली गई ? हे तारिके, हे धारिके, हे चम्पुरङ्गि, हे चङ्गि, हे कुरङ्गिके, हे धर्म्ये, हे कर्म्ये, हे जिते, हे धन्ये, क्या तूने तिलकाको देखा है ? इस प्रकार स्त्रीजनोंको पूछती हुई और कहती हुई—'अब पतिके सम्मुख मैं किस प्रकार अपना मुँह दिखलाऊँगी' वह घरसे निकलकर अन्ततः उस छलके स्थान श्मशानमें जा पहुँची । वहाँ तिलकमतीको देखकर सब लोगोंके समक्ष सेठानी कहने लगी—अरी कुपुत्रि, तू यहाँ कहाँ चली आई ? अरी रण्डे, तूने यहाँ क्या किया ? सेठानीके ये वचन सुनकर तिलकमती बोली—हे माता, तुम्हारी ही इच्छासे तो मैं यहाँ आकर बैठी हूँ और एक गोपके साथ मेरा विवाह हुआ है । कन्याकी यह बात सुनकर सेठानीने उसे धुतकारा और कहा—देखो इस लड़कीकी करतूत । फिर सेठानी उसे

तथा गच्छति तत्पत्यं प्रशस्तं कनकप्रभे ।
 तयोः प्रसर्पति स्वैरं प्रशाम्यति मनोभुवि ॥ ११५ ॥
 बन्धुमत्योदितं मुग्धे त्वयासौ शोधनीद्वयम् ।
 पिण्डारोऽगारमायातो याचितव्योऽतिशोभनम् ॥ ११६ ॥
 तथा तिलकमत्यैवं कृते सोऽन्येद्युत्तमम् ।
 नानारत्नमयं हैममानिनायेतयोर्द्वयम् ॥ ११७ ॥
 कञ्चुकं काञ्चनाद्यर्च्यं वस्त्रयुग्मं महाधनम् ।
 षोडशाभरणोपेतं ददौ तस्यै मनोरमम् ॥ ११८ ॥
 सा सती केशहस्तेन तस्य पादाम्बुजद्वयम् ।
 प्रमृज्य क्षालयामास प्रश्रयः स्त्रीषु मण्डनम् ॥ ११९ ॥
 अथ स्त्रीरत्नमाश्लिष्य सुप्त्वा प्रातर्गते नृपे ।
 तत्सर्वं दर्शयामास सा तस्यै दाहवद्भृदि ॥ १२० ॥
 राजनामाङ्कितं दृष्ट्वा तदित्याह दुरात्मिका ।
 चौरस्त्वामोडिदन्मृदे मुञ्च यावच्च वीक्षिता ॥ १२१ ॥
 निरस्त्य मुहुर्दाल्भ्यं तमाकल्पं जरत्पटम् ।
 दत्त्वा सुलूषिताकारां कृत्वा तस्थौ महासतीम् ॥ १२२ ॥
 अथायातो वणिक् सत्यपरमेष्ठी निजं गृहम् ।
 श्रेष्ठी साराणि रत्नानि गृहीत्वा पुण्यवानलम् ॥ १२३ ॥

पकड़कर अपने घर लिवा लाई और इस प्रकार उसने लोक-रंजनका ढोंग रचा । सचमुच ही विधाताने स्त्रियोंको केवल मायाचारके लिए ही बनाया है ॥ १०९-११४ ॥

फिर राजा कनकप्रभ प्रतिदिन तिलकमतीके घर जाने लगा, और उन दोनोंमें परस्पर प्रेमानुराग होने लगा । एक दिन बन्धुमती सेठानीने तिलकमतीसे कहा—अरी मूढ, तू अपने पिंडार पतिसे जब वह तेरे घर आवे तब अच्छी दो शोधनी (बुहारी) तो माँग ? तिलकमतीने वैसा ही किया । तब उसके पतिने दूसरे दिन उन दोनोंके लिए नाना रत्नजटित सुवर्णमय दो उत्तम झाड़नी लाकर दीं । साथ ही उसने उसे सोनेकी जरीसे जड़ी हुई कंचुकी, बहुमूल्य एक जोड़ी वस्त्र तथा सोलह प्रकारके उत्तम आभरण भी दिये । इसपर उस सतीने अपने केश हाथमें लेकर अपने पतिके पैर मलकर धोये । विनय ही तो स्त्रियोंका भूषण है । पतिने अपनी सती स्त्रीका आलिंगन किया और उस रात्रि वे वहीं रहे ॥ ११५-१२० ॥

प्रातःकाल जब पति उसके पाससे चला गया तब तिलकमतीने वे सब वस्त्राभूषण अपनी माताको दिखाये । किन्तु सौतेली माँ होनेके कारण उसे वे हृदयमें दाहके समान लगे । आभूषणोंपर राजाका नाम अंकित देखकर वह दुरात्मा विमाता बोल उठी—अरी मूर्ख, किसी चोरने तेरा पाणिग्रहण किया है । उतार जल्दी इन भूषणों और वस्त्रोंको, जब तक कि कोई अन्य इन्हें देख नहीं पाया । इस प्रकार डोंट फटकार बतलाकर सेठानीने उसके वे सब भूषण-वसन उतरवा कर ले लिये और उस महासतीको फटे पुराने कपड़े पहनाकर व कुरूप बनाकर अपने निवास-स्थानको चली गई ॥ १२१-१२२ ॥

इसी बीच वह परम सत्यवान् और पुण्यवान् सेठ बहुतसे उत्तम रत्नोंको लेकर अपने घर

पश्य कान्तानया चौरः स्वीकृतस्ते तनूजया ।
 राजैव मुषितस्तेन मया मग्नेऽतिभीतया ॥ १२४ ॥
 अयं चूडामणिर्नाथ बाल पश्येयमद्भुता ।
 पत्रपाश्या महाप्येयं कर्णिका कुण्डलद्वयम् ॥ १२५ ॥
 इदं ग्रैवेयकं सारं निर्मलेयं ललन्तिका ।
 प्रालम्बिकोत्तमस्वर्णा सुमुक्तावत्सूत्रिका ॥ १२६ ॥
 तरन्निव वियद्गङ्गाणवाहे बालभास्करः !
 देवच्छन्दे स्थितः सोऽयं तरलः प्रविराजते ॥ १२७ ॥
 कटकाङ्गदकेयूरमूर्मिकाः कङ्कणादिकम् ।
 सप्तकीयं तुलाकोटिद्वयं हंसकसंयुतम् ॥ १२८ ॥
 रणन्तं श्रवणानन्दममन्दं किङ्किणीगणम् ।
 पत्रोर्णं पश्य नाथेदं महाधनमनाहतम् ॥ १२९ ॥
 अन्तरीयमतिश्रेष्ठं संव्यानमतिसुन्दरम् ।
 रत्नोपरचितं कामनिधान निप्रभम्पनम् ॥ १३० ॥
 अस्मत्कुलक्षये कालरात्रिरेषा समुत्थिता ।
 रजोवृष्टिः कुटुम्बस्य मूर्ध्नां तु दुहितुर्मिषात् ॥ १३१ ॥
 निशम्य वनितावाक्यं समीक्ष्य समलङ्कृतीः ।
 स्थिरप्रकृतिरप्येष मनाक् चकितवान्कृती ॥ १३२ ॥
 वणिक् तत्सर्वमादाय नृपाग्रे न्यक्षिपत्सुधीः ।
 तवेदं केनचित्प्रप्तं दस्युना दुहितुर्मम ॥ १३३ ॥

लौट आया । उसके आते ही सेठानी उसे सुनाने लगी—देखो कान्त, तुम्हारी इस पुत्रीकी करतूत । इसने किसी चोरको अपना पति बना लिया है और उसने राजाकी चोरी करके इसे ये आभूषण दिये हैं । मैं तो डरकर मर गई । हे नाथ, यह वह चूडामणि है । इस अद्भुत बालाको देखिए । यह बहुमूल्य पत्रपाश्या है, यह कर्णफूल है और ये दो कुण्डल हैं । यह सुन्दर कण्ठा है और यह है उज्ज्वल ललन्तिका । यह उत्तम सोनेकी बनी, अच्छे मोतियोंसे जड़ी और सुन्दर सूत्रमें गुँथी लम्बी माला है । यह देवच्छन्दपर स्थित तरल तो ऐसा विराज रहा है जैसे आकाश-गंगाके प्रवाहमें बाल सूर्य तैर रहा हो । ये कटक हैं, ये अंगद हैं, ये केयूर हैं, ये ऊर्मिकाएँ हैं, ये कंकणादिक हैं, यह सप्तकी है, यह तुलाकोटिकी जोड़ी है जिस पर हंस बने हुए हैं । ये किङ्किणी हैं जो अपनी झुनझुन ध्वनि द्वारा निरन्तर कानोंको आनन्द देती हैं । और नाथ, इस पत्रोर्णको भी देखिए जो बड़ा बहुमूल्य है और बिलकुल नया है । यह अति श्रेष्ठ अन्तरीय है, यह अत्यन्त सुन्दर संव्यान है और यह कलश-झंपन है जो, हे कान्त, रत्नोंसे जड़ा हुआ है । यह दुहिता क्या है, अपने कुटुम्बके सिरपर धूलकी वर्षा तथा कुलका नाश करनेवाली कालरात्रि ही आ गई है ॥ १२३-१३१ ॥

अपनी पत्नीकी ये सब बातें सुनकर और उन अलंकारोंको देखकर वह धीरे प्रकृति और अनुभवी सेठ भी कुछ चकित हो उठा । चतुर सेठने उन सब वस्तुओंको ले जाकर राजाके सम्मुख रख दिया और कहा—महाराज, आपकी इन सब वस्तुओंको किसी चोरने ले जाकर मेरी पुत्रीको

तद् गृहाण महाराज नृपध्वज न भवाम्यहम् ।
 स्मृत्य स मनागाह वस्तुस्तु यम तस्करम् ॥ १३४ ॥
 आगत्य स सुतामूचे कल्कमूर्ते निजं पतिम् ।
 जानासि, तात जानामि पादयोः क्षालनादहम् ॥ १३५ ॥
 स चाह नृपतेरग्रे तेनोक्तं त्वद्गृहे मया ।
 तच्छोधनार्थमत्तव्यं परिवारजनैरमा ॥ १३६ ॥
 एवमस्तिवति सामग्र्यं विधायाकार्यं भूभुजम् ।
 क्रमेण क्षालयामास तदंघ्रीनक्षिभ्रं पितम् ॥ १३७ ॥
 बहूनां धौतपादेषु नायं नायं न चाप्ययम् ।
 भणन्तीत्यं विभोर्दूरमस्पृशत्पादपंकजम् ॥ १३८ ॥
 पितर्भलिम्लुचः सोऽयं रतेर्मे मन्मथः स्वयम् ।
 स्यादिदं सत्यमित्येवं बाहुजा जहसुर्नृपम् ॥ १३९ ॥
 कार्पेभो मा वृथा हास्यमवश्यं दस्युरस्म्यहम् ।
 कथं देवेदमित्याह नृपस्तत्पूर्ववृत्तकम् ॥ १४० ॥
 तदा लोका जगुर्धन्या कन्येयं भूभुजं वरम् ।
 प्राप भक्त्या पुरा किं वानया व्रतमनुष्ठितम् ॥ १४१ ॥
 भुवतेरनन्तरं श्रेष्ठी राजमान्यो महोत्सवम् ।
 विवाहस्याकरोद् बन्धुमतेश्च मणिवन्मुखम् ॥ १४२ ॥

दिया है । आप इन्हें वापिस लीजिए । मैं राजद्रोही नहीं बनना चाहता । सेठकी बातें सुनकर राजा कुछ मुसकराये और बोले—अच्छा, इन वस्तुओंको तो रहने दो, पर तुम उस चोरको पकड़ो ॥ १३२-१३४ ॥

सेठ राजाके पाससे घर आया और अपनी उस कन्यासे कहने लगा—हे कल्कमूर्ति, क्या तू अपने पतिको जानती है ? पुत्रीने कहा—जानती हूँ, तात, किन्तु केवल उनके पैर पखारनेके द्वारा । सेठने जाकर यह बात राजासे कही । राजाने कहा—इस बातकी खोजबीन करनेके लिए मैं अपने समस्त परिवारके लोगों सहित शीघ्र तुम्हारे गृहमें भोजन करूँगा । ‘अच्छी बात है महाराज’ यह कहकर सेठ अपने घर लौट आया । उसने भोजनकी सब तैयारी की और राजाको निमन्त्रण भेज दिया । अभ्यागतोंके आनेपर तिलकमती अपनी आँखें बाँधकर उनके पैर धुलवाने लगी । उसने अनेकोंके पैर धुलवाये और कहती गई—यह नहीं है, यह नहीं है, यह भी नहीं है । जब राजाकी बारी आई, तब वह उनके चरण-कमलोंका स्पर्श करते ही बोल उठी—हे पिता, यही वह चोर है जो रतिका मन्मथके समान मेरा पति हुआ है । तिलकमतीकी यह बात सुनकर समस्त क्षत्रिय राजाकी ओर देखते हुए हँस पड़े और बोले—क्या यह बात भी सत्य हो सकती है ? अपने क्षत्रिय बन्धुओंको हँसते हुए देखकर राजा बोले—अरे, व्यर्थ हँसी मत करो । सचमुच मैं ही वह चोर हूँ । तब उन्होंने पूछा—हे देव, यह कैसी बात है ? इसके उत्तरमें राजाने अपना समस्त पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १३५-१४० ॥

इस प्रकार जब राजाने तिलकमतीका पति होना स्वीकार कर लिया, तब सब लोग बोल उठे—धन्य है यह कन्या जिसने राजाको अपना वर पाया । इसने पूर्व जन्ममें कैसा भक्तिपूर्वक व्रत पालन किया होगा ? भोजनके उपरान्त उस राजमान्य सेठने विवाहका महोत्सव कराया और बन्धुमति सेठानीका काला मुँह । दुर्जन साधुको दुख पहुँचाता है, किन्तु उससे साधुको विशेष

दुःखयत्यसुहृत्साधुं स चैति पुरुषम्पदम् ।
 तापमातनुते भानुः श्रियमेति सरोरुहम् ॥ १४३ ॥
 अथ पट्टमहादेवीपदमाप्य महासती ।
 अलालयत्पदौ राज्ञीसहस्रशिरसां ततौ ॥ १४४ ॥
 समं पत्यैकदा जैनीं जगाम वसतिं जिनम् ।
 पूजयित्वानमत्साध्वी मुनीन्द्रं श्रुतसागरम् ॥ १४५ ॥
 नृपः ग्राह्य समाकर्ष्य धर्मं कर्मान्तकारिणम् ।
 मुने सम महादेव्या किं पुरा सुकृतं कृतम् ॥ १४६ ॥
 जगौ योगीश्वरः सर्वं पूर्ववृत्तं शुभाशुभम् ।
 प्रभावं तु विशेषेण सुगन्धदशमीभवम् ॥ १४७ ॥
 प्रविश्य तत्सदः कोऽपि देवो देवं जिनं श्रुतम् ।
 गुरुं प्रणम्य तद्देवीपादयोन्यपतद् भृशम् ॥ १४८ ॥
 स्वामिनि त्वत्प्रसङ्गेन सुगन्धदशमीव्रतम् ।
 मया विद्याधरेणोदं सता पूर्वमनुष्ठितम् ॥ १४९ ॥
 तेनाहमभवं स्वर्गे महर्द्धिरमराधिपः ।
 धर्महेतुरभूद्वि ततस्त्वां द्रष्टुमागतः ॥ १५० ॥
 एवमाभाष्य तां दिव्यैरर्चयद्ब्रह्मभूषणैः ।
 जनन्यसि ममेत्यक्त्वा प्रणम्य गतवान् दिवम् ॥ १५१ ॥
 तत्प्रभावं समीक्ष्यैते सर्वे भूयोऽपि तद्व्रतम् ।
 सजातप्रत्ययं चक्रुः शकादिसुखसाधनम् ॥ १५२ ॥

समृद्धि ही प्राप्त होती है । सूर्य ताप देता है, किन्तु उससे कमल शोभा रूपी लक्ष्मीको ही प्राप्त होता है । अब तिलकमती पट्टमहारानीके पदको प्राप्त हो गई और अपने पैरोंको सहस्रों रानियोंके सिरोंकी पंक्तिपर शोभित करने लगी ॥ १४१-१४४ ॥

एक दिन रानी तिलकमती अपने पति महाराज कनकप्रभके साथ जिन-मन्दिरको गई । वहाँ उस साध्वीने जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की और श्रुतसागर मुनीन्द्रको नमस्कार किया । राजाने कर्मक्षयकारी धर्मका उपदेश सुनकर मुनिराजसे पूछा—हे मुनीश्वर, मेरी इस महादेवीने अपने पूर्व जन्ममें कौन-सा सुकृत कमाया था ? राजाके इस प्रश्नके उत्तरमें योगीश्वरने तिलकमतीके पूर्वजन्म सम्बन्धी समस्त शुभ और अशुभ कर्मोंके फलका वृत्तान्त सुनाया । विशेष रूपसे मुनिराजने राजासे सुगन्धदशमी व्रतके प्रभावका वर्णन किया ॥ १४५-१४७ ॥

इसी अवसरपर उस सभामें किसी एक देवने प्रवेश किया । उसने जिनेन्द्र देव, जैन-शास्त्र और जैन गुरुको प्रणाम किया और फिर वह महादेवी तिलकमतीके चरणोंमें आ गिरा । वह बोला—हे स्वामिनि, अपने विद्याधर रूप पूर्वजन्ममें तुम्हारे ही प्रसंगसे मैंने सुगन्धदशमी व्रतका अनुष्ठान किया था । उसी व्रतानुष्ठानके प्रभावसे मैं स्वर्गमें महान् ऋद्धिवान् देवेन्द्र हुआ हूँ । हे देवि, तुम मेरे धर्म-साधनमें कारणीभूत हुई थी, इसीसे तुम्हारे दर्शन करनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ । इस प्रकार कहकर उसने दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे रानीकी अर्चना की और बोला—हे देवि, तुम मेरी जननी हो । इतना कहकर और रानीको प्रणाम करके वह देव आकाशमें चला गया ॥ १४८-१५१ ॥

सुगन्धदशमी व्रतके इस प्रकार माहात्म्यको देखकर वहाँ उपस्थित समस्त लोगोंका और

तिलकादिमतिः साधुं नृपोऽपि कनकप्रभः ।
 प्रणम्य परमानन्दाज्जन्तुर्निजमन्दिरम् ॥ १५३ ॥
 पात्रेषु ददती दानं पूजयन्ती जिनेश्वरम् ।
 पालयन्ती सुदृक् शीलं सोपवासं स्थिता सुखम् ॥ १५४ ॥
 विधाय विधिना साध्वी सुगन्धदशमीव्रतम् ।
 शुभध्यानेन च प्राप्य प्रायोपगमनान्मृतिम् ॥ १५५ ॥
 द्विसागरायुरीशाने बभूव सुरसत्तमः ।
 निन्द्यस्त्रैण्युतो भाविभवनिर्वृतिरद्भुतः ॥ १५६ ॥
 सुपर्व वनिताकम्रकरसंवाहितकमः ।
 पुराभवद्यतः शीलव्रतेषु सहितकमः ॥ १५७ ॥
 शशाङ्ककरसङ्काशैश्वामरैरेष वीजितः ।
 यतः कामोऽङ्गिनां तेन भवदुःखसर्वी जितः ॥ १५८ ॥
 व्योमयानमथारुहा स्म याति स मुदा वने ।
 नमश्चकार येनायं जन्तुजातं सदा वने ॥ १५९ ॥
 वन्दते स्म जिनाधीशपादपद्माननेन सः ।
 आराधितो मुदा येन पुरा विधिरनेन सः ॥ १६० ॥
 कृतिरिति यतिविद्यानन्दिदेवोपदेशा-
 जिनविधुवरभक्तेर्वर्णिनस्तु श्रुताब्धेः ।
 विबुधहृदयमुक्तामालिकेव प्रणीता
 सुकृतधनसमर्घ्या गृह्णतां तां विनीताः ॥ १६१ ॥

इति वर्णिना श्रुतसागरेण विरचिता सुगन्धदशमी कथा समाप्ता ।

भी दृढ़ विश्वास हो गया और वे सभी उस इन्द्रादि सुखोंके साधनभूत व्रतके पालनमें तत्पर हो गये । तिलकमती रानी और कनकप्रभ राजा साधुको प्रणाम करके आनन्द सहित अपने भवनको चले गये ॥ १५२-१५३ ॥

अब तिलकमती रानी पात्रोंको विधिपूर्वक दान देतीं, जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करतीं, सम्यग्दर्शन और शीलका पालन करतीं व उपवास धारण करती हुई सुखपूर्वक रहने लगीं । उन्होंने विधिपूर्वक सुगन्धदशमी व्रत करके प्रायोपगमन धारण किया और शुभ ध्यान पूर्वक समाधि मरण किया । इस धर्म-साधनाके प्रभावसे उनका जीव अपनी निन्द्य स्त्री पर्यायको छोड़कर ईशान स्वर्गमें दो सागर कालकी आयुवाला देव हुआ और अगले भवमें उसे संसारसे मुक्तिरूप अद्भुत फल प्राप्त होगा । पूर्व जन्ममें उसने शील-व्रतोंमें अपनी हित-कामनासे आचरण किया, इसीके फलस्वरूप उसे सुन्दर वनिताओंके कोमल हाथों द्वारा अपने पैर दबानेको मिले । उसने पूर्वमें संसारके दुखोंको देनेवाले कामको जीता था, इसीलिए उसे अब चन्द्रकिरणोंके समान उज्ज्वल चामरों द्वारा पंखा झले जानेका सुख मिला । उसने सदा वनमें समस्त जीव-जन्तुओंको नमस्कार किया था, इसीलिए अब उसे विमानमें बैठकर हर्षपूर्वक वनमें क्रीड़ा निमित्त जानेका सुख मिलने लगा । पहले उसने मोदसे जिन भगवान्की विधिपूर्वक आराधना की थी, इसीलिए अब उसे जिनेन्द्रके पापहारी चरणारविन्दकी वन्दना करनेको मिली ॥ १५४-१६० ॥

इस सुगन्धदशमी कथाकी रचना यति विद्यानन्दि देवके उपदेशसे जिनचन्द्रमें श्रेष्ठ भक्ति रखनेवाले ब्रह्मचारी श्रुतसागरने विद्वानोंके हृदयकी भौक्तिकमालके समान की है । इसे धार्मिक जन सुकृत और धनके समान ग्रहण करें ॥ १६१ ॥

इति वर्णी श्रुतसागर द्वारा विरचित सुगन्धदशमी कथा समाप्त ।

સુગન્ધદશમીકથા
[ગુજરાતી]

[गुजराती]

[१]

पंच परम गुरु पंच परम गुरु प्रणमेषु^१ सरस्वति स्वामी बलि विनय्यु^२ ।
 श्री सकलकीरति गुणसार भुवनकीरति गुरु उपदेस्यु^३ ॥
 करस्यु रास निरभर^४ सुगन्धदशमि कथा रूवडी^५ ।
 ब्रह्म जिनदास भणै सार भविष्यण जन संबोधवा^६ ।
 जिम होइ पुण्य विस्तार जिम होइ पुण्य विस्तार ॥

[२] भास जसोधरनी

जंबुव दीप^७ मझारि सार भरत क्षेत्र वखाणो ।
 कासिय देस छे रूवडो वानारसि नयर सुजाणो ॥१॥
 पद्मनाभि तिनि नयरि राव गुणवंत अपार ।
 जैन धरम करै निरमलौ त्रिभुवन भवतार ॥२॥
 श्रीमति राणी तेह तणी रूप तणौ निधान ।
 धर्म विवेक बहु रूवडा^८ मन माहि बहु मान ॥३॥
 वसंत मास अति रूवडो आव्यो सविशाल ।
 वनसपती अति गहगही फलफूल गुणमाल ॥४॥
 पद्मनाभि राजा रूवडो^९ चाल्यो गुणवंत ।
 क्रीडा करवा निरमलो ते छै जयवंत ॥५॥
 सयल सजनस्यु निरभर्यो परिवार विशाल ।
 गज वर^{१०} रथ बहु पालखी तुरंगम गुणमाल ॥६॥
 साम्ह मुनिवर भेटिया स्वामी गुणवंत ।
 सुदर्शन नाम रूवडा संजम जयवंत ॥७॥
 ऋण ज्ञान करि लंकर्यो चारित्र चुडामनि ।
 दुइ पाखडे^{११} पारणौ करे सुखखानि ॥८॥
 तिनि अवसर राजा हरषियो वंधा गुरु^{१२} चंग ।
 रानिए परते इमि कहि राजा मनि रंग ॥९॥
 तम्हे पाछा वलो सुंदरि मुनिवर गुणवंत ।
 पारणौ कराव्यो निरमलौ भाव धरि जयवंत ॥१०॥

१. स प्रणमिणे, २. स स्तुत, ३. अ उपस्यु, ४. स हूँ निरमलो, ५. स निरमली, ६. अ ब ज तस छोषवा, ७. अ ब जंबूद्वीप, ८. ब पाडा ८. स बिहु नडी ९. अ आव्यो से रूवडो तक का पाठ छूट गया है, १०. ब स गोवर । ११. ब स पखवाडे, १२. स जग गुरु ।

दिगंबर गुरु परम पात्र जो दीजै दान ।
 मनवांछित फल पामियइ बलि उपजै ज्ञान ॥११॥
 ते रानि^१ मिथ्यातनि मान्यो नहि बात^२ ।
 भयथकि पाछि बली मुख कियौ निज कालौ ॥१२॥
 मुनि पडगाह्या निरमला आवी निज गेह ।
 मुक्त रमती^३ विघन कियौ ते बल^४ मुझ देह ॥१३॥
 इम^५ मन माहि चिंतवि कोप कियौ तिनि थोर ।
 सद्गुरु काजै विरुध दान दियौ तिने घोर ॥१४॥
 पाणि पात्र जव्हौ पडियौ दान तव्हौ लियौ मुनिस्वामि ।
 राग द्वेष थका वेगला समता^६ गुणमाल ॥१५॥
 कटुक आहार तौ अति अपार ते चटो मुनि काजे ।
 विह्वल शरीर हवौ गुरु तणो^७ शरीर तब धूजै ॥१६॥
 तिहा थका सद गुरु आविया जिन भुवने उत्तंग ।
 श्रावक श्राविका रूवडी आवि तिहा चंग ॥१७॥
 हाहाकार तब उपनौ^८ भवियण^९ दुख धरै ।
 सार^{१०} करि अति रूवडी भगति बहु करे ॥१८॥
 ओषध^{११} दान दियै निरमलौ वैयावृत्य करे चंग ।
 दूहा—विनय सहित गुरु राखिया आपणे मनि रंग ॥१९॥
 दुष्ट आहार तिहा जिरव्यौ मुनिवर हुआ निरोग ।
 स्वामी वनमाही गया ध्यान धरो आरोग ॥२०॥
 ए कथा हवे इहा रही अवर^{१२} सुणो सुजान ।
 ब्रह्म जिनदास इणि परि धणे जिम जाण्यौ गुण ज्ञान ॥२१॥

[३] भास विनतिनी

विरुध आहार देइ थोर रानि आवि उतावलिण ।
 राजा कन्हे वनमाहि पाप जोडि करी कसमलिण ॥१॥
 तब राजानै मोह तेहना उपरि ठलि^३ गयौण ।
 ततक्षणि लागु पाय राजा कोप धरि रखौण ॥२॥
 सौभाग गयौ तेह थोर दोभाग आवियो अतिघणोण ।
 अपजस उपनौ अतिथोर जस गयौ बहु तेह तणोण ॥३॥
 दुरगंध हवौ शरीर कोढिनि होइते पापिनिण ।
 पछताप करै ते जान मे बुरो कियौ मिथ्यातणिण ॥४॥

१. स रानी घनी, २. स तेह गमे नहि बोल, ३. स मूढमती, ४. व स तिणै बले, ५. स इणि परि,
 ६. स संत, ७. अ 'शरीर हवौ गुरु तणो' छुट गया है, ८. स निपणी, ९. अ भविय, १०. अ नार,
 ११. स ओखद, १२. स हवे अवर कथा, १३. स गली ।

सदगुरु आव्या मुक्क घरि चंग ते पापिनि कोप कय्यौए^१ ।
 छति सामग्री होति मुझ गेह विरुद्ध आहार स्वामिनइ दियोए ॥५॥
 ते पाप लागौ मुक्क थोर तिन पापइ^२ रोगिनिहु रहिए^३ ।
 महत गयौ मुक्क सार कीरति सदगुरु^४ अति घणीए ॥६॥
 इम जाणि कीजै बहु सेव देव गुरु तिनि निरमलाए ।
 जिम मन बांछित फल बहु होइ मति उपजै बलि उजलिए ॥७॥
 राजाइ जाण्यौ सयल वृत्तांत ते उपसर्ग रानिय कियौए ।
 तव राजा मनि कोप अपार राणि उपरि घणो कियोए^५ ॥८॥
 उदास मुकी राणो गुणहीन राय मनि दुःख उपनौए ।
 मे पापी दियो उपदेश ए पाप मुझ निपणौए^६ ॥९॥
 इम कहि सदगुरु कन्हे जाइ प्रायश्चित लियौ अतिघणौए ।
 निंदा गहि कीधी आपनि थोर पाप निगमौ राजा आपणौए ॥१०॥
 राणि आरतध्यान मरेवि भैस हुई ते पापिनिए ।
 दुःख भोगवै तिहा अपार माय विहुनि दया मणिए ॥११॥
 पाणी पीवा गई एक बार सरोवर माहि दुबलिए ।
 कादव माहि खुती जाण दुख दिगंति^७ हावलिए ॥१२॥
 मरण पामी बलि तिहा^८ थोर सुहरि^९ हुई ते पापिनिए ।
 माय पाखै दुःख दिठो थोर बलि मरण पामिय ते^{१०} ॥१३॥
 सांवरि^{११} जोनी गइ बलि तिहा दुःख दीठा थोर ।
 बलि मरन पापिनि दिन फल भोगवै पाप तणोए ॥१४॥
 अंतघरि बलि उपनि धीह दुरगंध पापे जडिए ।
 माय मरण पामी बलि जाणि जाणौ दुःख तणी घडिए ॥१५॥
 जिम जिम मोठी होइ ते बाल तिमि तिम दुरगंध बाधे घणोए ।
 गंध सहि सके नहि कोइ सयल सजन तेह^{१२} तणोए ॥१६॥
 पछे नाखि ते वनह मझार ते एकलि दुःखे भरिए ।
 कुवर^{१३} फल स्वायै जानि षट वरिस लै ते जीवोए^{१४} ॥१७॥
 पछे आव्या मुनिवर भवतार श्रुतसागर मुनि निरमलाए ।
 गुणसागर सरिसो छइ शिष्य तप संजम करै उजलाए ॥१८॥
 ते चंडालि दिठी तिणे ठामे गुणसागर तव बोलियाए ।
 कवन पाप किया अनै थोर तेह कहो गुण तोलियाए^{१५} ॥१९॥

१. ब स कियोए, २. स पापे ते, ३. स हुइए, ४. स गई मझ, ५. अ यह पंक्ति छूट गया है ।
 ६. स लागियोए, ७. स देख्या तिणे, ८. स ते बेलि, ९. स सूसरि, १०. स मुई मिथ्यातणिए, ११. ब साठरि,
 १२. स एह, १३. स उंवर, १४. स सेवियाए, १५. स ते कहो स्वामी गुणनिलए ।

दूहा—सदगुरु स्वामी बोलिया मधुरिय सुललित वानि ।
 सुणो वच्छ तम्हे रूवडा भवांतर कहु दुःखखानि ॥२०॥
 श्रीमति राणी आदि करि कही सयल अवतार ।
 तव दुरगंधा मनउसू^१ बांधा सदगुरु पाय ॥२१॥
 आठ मूलगुण तिनि लिया वार वरत वलि चंग ।
 पाप सयल निवारिया धर्म लिथो^२ उत्तंग ॥२२॥

[४] मास चौपईनी

तिहा थकि मरन पामि वलि जान । उजेनी उपनी दुखखान ॥
 ब्राम्हननै घरि बेटी थोर । वलि दुरगंधा हुई घोर ॥१॥
 बाप मरण पामी^३ तिनि वार । पाम्या दुःख तेनि अपार^४ ॥
 हलु हलु मोठी हुई ते जाणि । माता मुई वली दुखखानि ॥२॥
 काष्ट भार आनै ते घोर । पुण्य विन कष्ट करइ धनघोर ॥
 इनि परि पेट भरै आपनौ । दुःख सहै तिहा अतिघणौ ॥३॥
 तिनि अवसरि मुनिवर भवतार । सुदर्शन आव्या गुणधार ॥
 समकितज्ञानचरितगुणवंत । तप करै स्वामी जयवंत ॥४॥
 अश्वसेन राजा तिहा अतिचंग । वाँदवा^५ आव्या निज मनि रंग ॥
 पूज्या चरण कमल सार । पूछौ धर्म तणौ विचार ॥५॥
 भवियण आव्या तिहा वलि जाणि । साँभलवा गुरु निरमल वानि ॥
 ते लोक दीठा अतिचंग । दुरगंधा हरषी मनरंग^६ ॥६॥
 काष्टभार नाख्यौ तिनि वार । ते आची तिहा सविचार ।
 संघसहित दीठा मुनि^७ राय । जाति स्मरन उपनौ तिनि ठाय ॥७॥
 मुरछा^८ आवि पडी तिनि ठाम । राजा पूछै तव सिर नाम ॥
 कहौ स्वामि त्रिभुवनभवतार । कवन गुणे गुण पडिय नार ॥८॥
 सदगुरु कहे तव मधुरिय वानि । भवांतर कछा सवे जानि ॥
 तव विस्मय पाम्यो ते राय । वलि पूज्या^९ स्वामी मुनिराय ॥९॥
 धरम वरत दियौ एह सार । जिम ए छूटै पाप अपार ॥
 सुगंध दशमि वरत अति चंग । ए वरत करौ उत्तंग ॥१०॥
 तिनि अवसरि विद्याधर सार । जयकुमार तेह नाम विचार ॥
 ते आव्यौ तिनि अवसरि जान । सुनवा सदगुरु सुललित वान ॥११॥
 भाद्रव मास उजालो पाख । दशमी के दिन करौ उपास ॥
 पाछै जिनवर भवन उत्तंग । जाउ भवियण मनि रंग ॥१२॥

१. स उपसम्यु, २. स लिथो, ३. स पाम्यो, ४. स वारोवार, ५. स बाँदन, ६. ब मनमाहि,
 ७. अ ब प्रति, ८. अ ब दुरछा, ९. स पूछे ।

पंच वरण^१ स्वस्तिक मांडियौ । दश कमल करौ अति सविचार ॥
 (तेह उपरि कलस मुकौ एक चंग । जिनवर बिंब थाप्यो मन रंग)^२ ॥१३॥
 अष्ट प्रकारी पूज्या सार । पूज्या जिनवर त्रिभुवन सार^३ ॥
 दश अष्टक दीजै गुणवंत । स्तवन दश पढिजे^४ जयवंत ॥१४॥
 छंद छप्पय^५ जयमाला सार । विनति पढिजे भवतार ॥
 रास भास गीत सविशाल । धवल मंगल गीत गुणमाल ॥१५॥
 अष्टोत्तर सौ जपौ बलि जाप । पुष्पगंध लेइ गुणमाल^६ ॥
 इनि परि महोछव कीजे चंग । राति जागरण मनि रंग ॥१६॥
 पछै निजघरि आवौ गुणवंत । जिनवर स्वामि पूजौ जयवंत ॥
 सुपात्रह दीजै बलि दान । विनय भाव सहित गुण भाण ॥१७॥
 इनि परि दश वरस लगै सार । ए वरत कीजै भवतार ॥
 वरत पुरै उजवनौ चंग । दश दश वाना चडावो मनिरंग ॥१८॥
 पकवान फल फूल अपार । उपकरण आनो ते अपार^७ ॥
 चंद्रोपक आदि अति चंग । विस्तारौ जिनभवने उत्तंग ॥१९॥
 उजवनौ जो सकत नहि होइ । तो व्रत बिमनौ करौ सहु कोइ ॥
 सदगुरु वानी सांभलि चित्त । भवियण आनंदा जयवंत ॥२०॥
 दूहा—वरत लिधौ सदगुरु कन्है श्रावक भवियण चंग ।
 राय विद्याधर रूवडा राणिय सहित अभंग ॥२१॥
 दुरगंधा बलि व्रत लियौ सुगंधदशमि भवतार ।
 नमोस्तु कियौ अतिरूवडौ निपनौ^८ जयजयकार ॥२२॥

[५] भास रासनी

पछै निजघरि आवियाए सयल श्रावक गुणवंत तो ।
 दशमि वरत कियौ रूवडोए जिनभुवने जयवंत तो ॥१॥
 दश वरस लगै रूवडोए पछै उजवनौ सार तो ।
 सयल संघ मिलइ निरमलोए महोछव जय जयकारतो ॥२॥
 पूज्या श्रावकै दियौए ते ब्राह्मणिते सार तो ।
 दान मान पाम्या घणुए धर्मफलै सविचारतो ॥३॥
 दुरगंध फिटि गयौए सरीर हुबौ निरोग तो ।
 संजम श्री आर्जका कन्हैए अनुव्रत लियो गुणजान तो ॥४॥
 पछै आयु थोडौ हवोए कनक राजा जयवंत तो ।
 कनकमाला राणि तेह तणिए रूपसौभाग अपार तो ॥५॥

१. अ दिवस, २. अ छूट गया है । ३. अ सार, ४. स पढिजो, ५. स वस्तु स्तवन, ६. स गुण व्याप, ७. स सविशाल ८. स ते वरत लियौ गुरु ९. अ निपनै ।

धरम करम करै जिनवर ताणौ समकित पालै भवतार तो ।
जिनदास साह तिहा बसिए जिनदत्ता तेह नारि तो ॥६॥

.....^१ ।

तेह बेहु कुखे उपनाए सुगंध कुवरि सविचार तो ॥७॥

रूप सौभाग्ये आगलिए शरीर सुगंध हुवौ चंग तो ।

माय बाप सुख उपनोए महोछव कियौ मनि रंग तो ॥८॥

असुभ करम फलै माता मुइए दुख उपनौ तव घोर तो ।

हा हा सुंदरि रूवडीए धर्मवंती गुण थोर तो ॥९॥

सजन सयल मनि दुख धरेए जिनदत्त विन सविशाल तो ।

जिनदास साह संबोधियोए^२ झणि दुख धरौ गुणमाल तो ॥१०॥

बलि परनि राणि^३ सुंदरिए जिम घर वसइ तम्ह सार तो ।

बेटिय तम्ह तणी उछरेए वंस वाधइ अपार तो ॥११॥

तव साह बोलि मानियोए परनि नारि सविशाल तो ।

रूपिनि नारि नाम छे तेह तणोए सागरसाहनी बाल तो ॥१२॥

तेनिए बेटि जाइ रूवडिए शामा तेह तनो नाम तो ।

रूपिणि मोह करे अति घणोए तेह उपरि बहु मान तो ॥१३॥

सावकि पुत्री देखि करीए द्वेष करै अति घोर तो ।

वर्तु^४ करावै अति घणुए कोप करै घन घोर तो ॥१४॥

बेटिए तणौ दुःख दियोए^५ साह कहै तव बात तो ।

सुगंध कुवरि दुरबलि^६ हुइए मलिण दिसइ तेह गात्र तो ॥१५॥

रूपिनि तव कोप चढोए बोली करकस बानि तो ।

बांदिए अनावौ तम्ह एहनीए जिम होइ सुख खानि तो ॥१६॥

तव साह बांदि ल्यावोए आनि निज घर सार तो ।

ते बांदि तिने वस करिए रूपिनि कठिन अधीर^७ तो ॥१७॥

तव साह जुवौ रख्योए बेटि सयरिसौ जानिजो ।

रंधन करइ बीजि रूवडिए जिमे बापे गुणवंत तो ॥१८॥

तव सुख पामियोए बाप पुत्रि गुणवंत तो ।

देखी न सकै ते पापिनिए कपट करै बलि चंग^८ तो ॥१९॥

वेलु घालि धान माहे घनिए मीठु घालि बलि थोर तो ।

साह जिमवा बैसै निरमलोए दुख उपजै तव घोर तो ॥२०॥

१. यह पंक्ति तीनों प्रतियोंमें नहीं है । स प्रतियोंमें ११ वें पद्यको तीन पंक्तियोंका मानकर श्लोकोंका अनुक्रम ठीक कर लिया है ।

२. तव बोधियोए, ३. ब स नारि, ४. अ ब वतु, ५. स देखियोए, ६. स दूबलि, ७. स काढी अपार, ८. स बेटि, ९. स बलिवंत ।

कपट जाण्यो तव नारि तणौए साह भाग्यौ^१ मन माहि तो ।
 त्रियाचरित्र कले नहिण ज्ञान दृष्टि इम चाहि तो ॥२१॥
 इम जाणि साह बोलियोए मधुरिय सुललित वानि तो ।
 ए बेटि छह तम्ह^२ तणौए तम्ह खोलि घालि जानि तो ॥२२॥

दूहा—इम कहि साह निरमलौ धर्मध्यान करै सार ।
 समकित पालै रूबडौ व्रत सहित भवतार ॥२३॥
 साह बोलाव्यौ निरमलौ राजाई गुणवत^३ ।
 रत्न कारनि ते मोकल्यौ दिपांतरै जयवंत ॥२४॥
 तव साह धरि आवियो सिख दिई तव सार ।
 निज नारीते रूबडी सुखे रहिजो सविचार ॥२५॥
 दुहि^४ कन्या छै रूबडी परनावोजो तम्हे चंग ।
 घर वर रूडो देखि करि^५ सजन सहित उत्तंग ॥२६॥
 इम कहि साह निसरथो रत्नदीप भणि सार ।
 नमोकार मनमाहि धरि सनी सनी तेनि वार ॥२७॥
 ए कथा हवे इहा रही अवर^६ सुनो सुजान ।
 ब्रह्म जिनदास भणे रूबडौ जिम जाणौ गुणज्ञान ॥२८॥

[६] भास सुणो सुंदरिनी

तिने अवसरि साह आवियोए-सुणो सुंदरि-चांगदत्त तेह नाम ।
 चांगवती नारी तेह तणौए-सुणो सुंदरि-रूपसौभागनो ठाम ॥१॥
 तेह बेहु कुखे उपनि^७ए-सुणो सुंदरि-गुणपाल गुणवंत ।
 रूप सौभागै आगलौए-सुणो सुंदरि-सुललित छै जयवंत ॥२॥
 तेहनै मागवा कारणौए-सुणो सुंदरि-कलिर्ग^८ गाम थका जानि ।
 आव्या सरस सुहावनाए-सुणो सुंदरि-रत्नपुर सुख खानि ॥३॥
 सुगंधा तणौ रूप देखियोए-सुन सुंदरि-रीझौ^९ ते अपार ।
 मागनौ करै अति रूबडोए-सुन सुंदरि-विनय सहित सविचार ॥४॥
 अवगुण बोली अति घणाए-सुन सुंदरि-रूपिनि अतिहि सविशाल ।
 बडी बेटीकौ अति घणोए-सुन सुंदरि-वस्त्राणौ^{१०} निज बाल ॥५॥
 चांगदत्त साह बोलियोए-सुन सुंदरि-ते कन्या तम्ह देउ ।
 अवगुण सयल मे पतगरया-सुन सुंदरि-इम जाण्यो तम्हे मेउ^{११} ॥६॥
 तव विवाह तिणे मेल्योए-सुन सुंदरि-सुगंध कुवरिनौ^{१२} रंग ।
 लगन धन्यो तव रूबडोए-सुन सुंदरि-महोछव होइ तिहा रंग ॥७॥

१. स चितवे २. स मुझ, ३. स अति जयवंत, ४. अ तुहि, ५. स देखी रूबडि, ६. स अवर कथा,
 ७. स उपनोए, ८. स कलक, ९. स रीझ्या, १०. स वस्त्राग्या, ११. स भाव, १२. स सुगंधिनौ तव ।

लग्न दिवस आव्यो रूवडाए-सुन सुंदरि-रूपिनि बोली तव वानि ।

सुगंधकुवरि तम्हे सुणोए-सुन सुंदरि-जिम होइ सुख स्वानि ॥८॥

विवाह करू हवे तम्ह तणोए-सुन सुंदरि-आव्यो तम्ह अम्ह साथ ।

मार्गदर्शक :- अइम कहि लेई निरमलि सुन सुंदरि-साहिय जमणे हाथ ॥९॥

मसान माहि लेइ करिए-सुन-सुंदरि-मुकिए ते सुणो बाल ।

चहु गमा दिप बलै घणाए-सुन सुंदरि-सुगंधा बेटि गुणमाल ॥१०॥

चहु गमा च्यारि ध्वजा रोपियोए-सुन सुंदरि-लहलहै अतिहि अपार ।

इहा आवे कुवर रूवडाए-सुन सुंदरि-ते परणीजो सविचार ॥११॥

इम कहि पाछि बलिए-सुन सुंदरि-आविए निज घरि चंग ।

कोलाहल करइ अति घणोए-सुन सुंदरि-जन जन आगलि रंग ॥१२॥

जो जो सजन सुहावणाए-सुन सुंदरि-जो जो बाल गोपाल ।

विवाह मेलव्यो मे रूवडाए-सुन सुंदरि-कुवरि नहि सविचार ॥१३॥

विवाही ते आवियाए-सुन सुंदरि-किहा गइ सुगंधि कुवार ।

हा हा घरि हुवौ घणोए-सुन सुंदरि-जोवै घर-घर बाल ॥१४॥

मे कहियौ होतो आग लिप-सुन सुंदरि-ए बेटी नहि संत ।

विवाह दिन नासी गइए-सुन सुंदरि-तम्हे न जाणौ जयवंत ॥१५॥

तम्हारि पोतै पुण्य घणाए-सुन सुंदरि-भाग्यवंत एह वर ।

पासे न पडिया एह तणाए-सुन सुंदरि-इम जाण्यौ पुण्यधार ॥१६॥

हवे गला किम जाइ-सुन सुंदरि-तम्हे सजन गुणवंत ।

मुझ बेटि गुण आगलिए-सुन सुंदरि-ते दियु जयवंत ॥१७॥

तव तिणे बोले मानियोए-सुन सुंदरि-परणि स्यामा सविचार ।

ते गया निज स्थानकेए-सुन सुंदरि-धर्म करइ भवतार ॥१८॥

ए कथा हवे इहा रहिए-सुणो सुंदरि-अवर सुणो गुणवंत ।

तम्ह जिनदास भणे रूवडाए-सुन सुंदरि-जिम सुख होई महंत ॥१९॥

दूहा—सुगंध कुवरि रूवडी मसान माहि बेटी जाण ।

एकलडी गुणे आगली रूप सियल गुणखान ॥२०॥

ते नयरकौ राजियो कनकप्रभ तेह नाम ।

मध्यराति ते उठियो गोक्ष बैठो गुण जानै ॥२१॥

दिपमाला दिठि रूवडी मसान माहि सविसाल ।

कुवरि दीठि बलि निरमलि विस्मय पाम्यौ गुणमाल ॥२२॥

कौतुक जोवा कारणेइ एकलडाए जयवंत ।

खडग हाती धरि करी आव्यो तेह गुणवंत ॥२३॥

१. स घरिय जिम नइ हाथ, २. स लहकंती, ३. स जन आगलि रडे मनि रंग, ४. स दीठो वर, ५. स सविशाल, ६. स विहाई, ७. स मानो, ८. स कहइ, ९. स शील, १०. स गोष्टी करइ सुजान, ११. स आव्या तिहा जयवंत ।

[७] भास हेलकी

उभौ रखौ तिहा सार बोल्यौ वानि सुहावनी-हेलि ।
 कहौ सुंदरि तम्हे कोण एकलडी गुण आगली-हेलि ॥१॥
 की सगगतणी देवि की अपसरा^१ सोहजलो-हेलि ।
 काइ नागिनि गुणवंत की विद्याधरि निरमली-हेलि ॥२॥
 केह तणि कुवरि सुजान मसान माहि काइ एकली-हेलि ।
 गौद्र दिसे^२ ए ठाम कवन पापइ तू मोकली-हेलि ॥३॥
 ते तव बोलि सार मधुरिय वानि सोहावनी-हेलि ।
 जिनदत्त साह मुभ्तणौ बाप जिनमति माता मुभ्त तणी-हेलि ॥४॥
 मुभ्त जनम्या पुठे चंग माय मुई मुझ रूवडी-हेलि ।
 मुझ तणौ पिता जान अवर नारी कीधी पापे जडी-हेलि ॥५॥
 मुझ पिता गुणवंत राजाइ मोकल्यो दिपांतर-हेलि ।
 मुझ तणी सावकि माय तिणिइ इहा धरी-हेलि ॥६॥
 इहा वर आवजे चंग ते परणौ तम्हे रूवडो-हेलि ।
 ते परणीजे चंग सुललित कुवरि रूपे जड्यो-हेलि ॥७॥
 तव जाण्यो ते भाव राजा कहै सुणौ सुंदरि-हेलि ।
 हूँ आव्यो^३ ते वर मुझ परणो तम्हे सुंदरी-हेलि ॥८॥
 इम कहि तिणि वार बैठो तिहा गुण आगलो-हेलि ।
 हरषवदन गुणवंत परनि करी मोह^४ सोहजलो-हेलि ॥९॥
 पारनि करि तिहा सार पछि निसरयो घरी भणी-हेलि ।
 पालव धरियो जाण कुवरि तिहा बोलियो^५-हेलि ॥१०॥
 मुभ्त परनिनइ आज झनि जाऊ तम्हे रूवडी-हेलि ।
 हु तुम बिन केथि^६ जाउ मझ मन तम्ह गुणे जड्यो-हेलि ॥११॥
 राजा कहै सुणो देवि रयणि तम्हे घरि आविसु-हेलि ।
 तव लीधी तिणे भाष दिसै निज काम करु-हेलि ॥१२॥
 कुवरि कहि सुजाण दिसै कैसु काम करु^७-हेलि ।
 तव बोले ते राव बात हूँ गोवाल तम्हे मणि घरो^८ ॥१३॥
 इम कहि गुणवंत आव्यो^९ निज घरि निरमलि-हेलि ।
 कही नही ते बात केह आगलै ते सोहजलौ-हेलि ॥१४॥
 दिनकर उग्यो सार वलि रूपिनि कलकल करै-हेलि ।
 सहज^{१०} सुणौ तम्हे बात बेटि जोवा जाउ रूवडी^{१०}-हेलि ॥१५॥
 आव्यो^{१०} तम्ह अम्ह साथ वनमाहि जोवा जाउ रूवडी-हेलि ।
 एणि बेटि अम्ह थोर संताव्या दुःख जड्यो-हेलि ॥१६॥

१. ब स अपसरा रूप, २. स दिठाइ, ३. स आव्यो तम्ह, ४. स महोछव, ५. स बोली सुजाण,
 ६. स कंत किहा, ७. स दिसै निज घरि जाइसु, ८. अ ब में यह चरण छूट गया है, ९. ब स सजन,
 १०. स जोउ मनि भाव धरी ।

सजन जाण्यौ तेह भाव रूपिनि दृष्टि छइ आपनि^१-हेलि ।
 मौन करि रखा सार नावै सरसा आपनि-हेलि ॥१७॥
 ते एकली वन माहि जोवा जाई^२ परपंच करि-हेलि ।
 आनि सुगंध कुवरि बडबड करइ निज करि-हेलि ॥१८॥
 मे जोड्यो एको^३ विवाह तु कहा गइअ चांगली-हेलि ।
 तव बोली ते वानि सरल चित्त^४ अति निरमलो-हेलि ॥१९॥
 दूहा—तम्हे मोकलि हू निरमली^५ रहिजो वनमाहि चंग ।
 गोवाल एक आवियो तिणे^६ परणी हुं चाहि^७ ॥२०॥
 तव रूपिनि कहि कसमली झूठी तू गवार ।
 आपनि सातइ जाइ करि गोवाल परणौ अविचार^८ ॥२१॥
 इम कहिते साची हुई लोक न जाणे भेद ।
 जिम कुशाख सुनि करि मन आने बहु खेद ॥२२॥
 वलि पूछै कुवरी कन्हे कहि आवसे तम्हे वार ।
 राति आवसै रूवडौ सुणौ मा सिघार ॥२३॥
 इम कहि अति रूवडौ निज घर रहि गुणवंत ।
 सुगंधकुवति रूवडौ पुण्य माल जववंत ॥२४॥

[८] भास गुणराज भास की

रातिए आयौए^१ राय सुगंधकुवरि रूवडोए ।
 पान फुलए बहु भोग विशाल ते राजा मोहे जड्योए ॥१॥
 पाछलि रयनि चंग राजा निज घर गयोए ।
 रुपिणिए पुछि भाव कहो बेटि ते आवियोए ॥२॥
 तेह कन्हे मागइजो आज हार गुंजतणौ रूवडौए ।
 गवततणाए आभरणए विशाल गोवाल वर रंगे जड्योए ॥३॥
 सयल चाणाए माग्याए तिण जाणी राय आनि दिया निरमलिए ।
 मोतिय हार विशाल रत्नजडित आनि कंचुकिए ॥४॥
 पट^{१०} कुल तनु आनियौ चुरवलि नवरंग घाटडिए ।
 सोलाए आभरण आण्या अतिचंग हिरा मानिक मोति जड्याए ॥५॥
 निज राणि तणाए आणि आविया सार नाम अंकित अति रूवडौए^{११} ।
 अतिहरा रूवडा अपारए मन मानिक मोति जड्याए ॥६॥
 प्रभात हवो सार राजा राजभवनि गयोए ।
 उठियो सुगंधकुवारि सामायिक रूवडो कियोए ॥७॥
 पछैए भूषण सार रूपिनि आगल दाखन्याए ।
 दिसइए अतिही सुरंग देखि दुःख व्यापियोए ॥८॥

१. स दुष्ट छे पापिनि, २. स गई, ३. स ईको, ४. स बात, ५. स मुकी हू एकली, ६. स जाणि,
 ७. अ ब सविचार, ८. ब स ब्रह्म, ९. ब आवियो, १०. स आग्या, ११. स नाम कीरति रूवडि।

राय राणि तणाए चंग तम्हे कारण कोण दियाए ।
 चोरेए परणी जाण इम कहिउ दालियाए ॥९॥
 तिणे अवसरि आवियो साह नारि दिय दुख भरए ।
 पुछेए कारण बात साह मनि विस्मय करिए ॥१०॥
 ते दाखव्या भूषण सार राय तणा अति रूवडाए ।
 परणिए धीह तिणे दिया रते ते लब्धाए ॥११॥
 मे कुल घर जोइ सार वर आण्यौ अति निरमलौए ।
 उलंघिए^१ मुझ तणु बोल चोर^२ वन्यौ इणे कसमलिए ॥१२॥
 देव न हिए इह तणौए चंग कुलक्षनि बेटि तम्ह तणिए ।
 सांभलिए तेह तनि वानि साह चिंता करि घणिए ॥१३॥
 विस्मयए पामियो सोर एह बात कहु किम घटइए ।
 तब दाखवाए भूषण सार राय तणौ^३ नाम दिठौए ॥१४॥
 भाषा हनौए तब साह मन माहि छिहि^४ घणौए ।
 ते आभरण अति सुविशाल ते कलिया रायतणौए ॥१५॥
 चालियौए राजमंदिर राय भेटौ तिन गुणवंतोए ।
 रत्न आण्याए स्वामि अति चंग दिपांतर थकाए जयवंतए ॥१६॥
 रत्न दिठाए राजाए तिणे जगा ज्योति^५ अति रूवडाए ।
 पुर लोकैए दिठा बलि चंग राय बोल्यौ तब भाव जड्यौए ॥१७॥
 कवउण वस्त छै एमाहि सार ते कहो तम्हे निरमलाए ।
 जिनदत्तए कहै सुणो स्वामि मुझ वयण अति सोहजलाए ॥१८॥
 हु गयौ होतो ए देशाउर सार रत्न आनवा स्वामि तम्ह तणाए ।
 रत्नदिष छै अति सुविशाल तिहा दिन लागा अति घणाए ॥१९॥
 दृहा—तिणि अवसरि बेटि मुझ तनि परनी वनह मझार ।
 मध्यम रयन रूवडी वर आवियो सविचार ॥२०॥
 जाति कुल नवि जानिविइ नवि दिठो तेह रूप ।
 तिणै आभरणए तम्ह तणा आण्या जाणसु^६ भूष ॥२१॥

[६] भास चौपईनी

सुगंध कुवरी दीधी चंग । आण्या आभरण अतिहि सुरंग ॥
 ए आभरण तम्हे तणा सार । तम्हणे लेउ स्वामि सविचार ॥१॥
 तब राजा कहे सुणो तम्हे साह । अवर अम्ह तणौ बहु काज^७ ॥
 ते वस्त तम्ह आनो आज । तो सरे तम्ह तनो बहु काज^८ ॥२॥

१. स बहु रतनजडवाए, २. स उलट्या, ३. स गोवाल वर, ४. स तणा, ५. स दिठाए,
 ६. स बिहे, ७. स जगमगता, ८. ब णिसुणौ, ९. स अवर वस्तु जोऊ गुण सार, १०. अ ब में यह चरण
 छूट गया है ।

नहि वर चोर अनो बलिवंत । मो छोड तम्हणै गुणवंत ॥
 कुवरी पूछो तम्हे आपनी । चोर ओलखाओ गुणधनी ॥३॥
 राय वयण सुण्या सविशाल । साह आण्यौ निज घरि सविचार ॥
 कुवरी बोलिवि तिणि आपनी । बात पूछै चोर तणी ॥४॥
 कैसो वर सै तम्ह तणो चंग । ते मुझ आगलि कहो मन रंग ॥
 तव कुवरी बोली गुणवंत । पाय धोविय ओलखु जयवंत ॥५॥
 साह कहौ सुणौ महाराज । चरन कमल ओलखि पुत्रि आज ॥
 तव राजा कहै सुणौ साह । मुझ तणी बुद्धि करौ सविचार ॥६॥
 जमवा तेरौ सयल परिवार । घर बोलाव्यौ गुणधार ॥
 चरण कमल ओलखउ^१ तेह तणा । मान दिन^२ दिऊ अति घणा ॥७॥
 साहै बोल माण्यौ गुणवंत । अनेक कुवरनहु तन्या^३ जयवंत ॥
 निज घर बोलाव्या देइ मान । आव्या कुवर सयल सुजान ॥८॥
 पडदौ बाँधि तिहा अति चंग । एक एक कुवर बेठ्या उत्तंग ॥
 चरण कमल काढि कर जोइ । सुगंध कुवरि कहि ए नवि होइ ॥९॥
 कमल सरखारतो फल^४ पाय । पद्म चिह्न ते बलि तेह काय ॥
 ए माहि नहि मुझ तणो कंत । इम जाण्यौ सजन जयवंत ॥१०॥
 तव भूपै देखाडौ निज पाय । बख करि ढाकि बलि काय ॥
 हाथे लेइ जोया सविचार । ओलख्या हरिणी तिणे वार ॥११॥
 एह वर मुझ तणौ गुणवंत । मे लाधौ स्वामी गुणवंत ॥
 तव राजा हसै सुजान । प्रगट हवौ जिम दिनकर भान ॥१२॥
 सजन आनंदा तिहा जयवंत । जिनदास साह हुवो जयवंत ॥
 बिवाह महोछव कियौ तिहा चंग । राजा^५ परणौ तिहा उत्तंग ॥१३॥
 परनि कुवरि आव्यौ सविचार । हरष वदन हुवौ गुणधार ॥
 पटरानी थापी निज चंग । धर्म फलै तिहा उत्तंग ॥१४॥
 तव राजा कोप्यो अति थोर । रूपिणि उपरि सुनो घनघोर ॥
 इणि ए कपट कीयौ गुणहीन । हवे दंड दियू करू दीन ॥१५॥
 तव सुगंध कुवरि सविचार । बोलि सुललित सुणौ गुणमाल ॥
 ए मुझ माता सुणौ तम्हे धीर । एहनि^६ दंड भुनि देउ गंभीर ॥१६॥
 तव राजा रीझो मन माहि । क्षमा तणी गुण निर्मल चाहि ॥
 धन धन ए तणौ मत चंग । राजा सौख्य भोगवइ उत्तंग ॥१७॥
 धन धन ए नारि अवतार । एह कन्हे समकित होसै सार ॥
 परसंसा करइ तेह तणी । सजन श्रावक भवियण अति घणी ॥१८॥

१. स दिठे, २. स देखाडो, ३. स दान, ४. स निवत्या, ५. स सरिखा छे कोमल, ६. स राय,
 ७. स एहने ।

जस विस्तन्यौ हुबौ आनन्द । बाध्यौ धर्म तणौ तिहा कंद ॥
 पटरानी थापी निज सार । प्रीती बाधी^१ तिहा अपार ॥१९॥
 धर्म करी जिनवरतणौ चंग । राज सौख्य भोगवै उत्तंग ॥
 जिनवर भुवन कराव्या सार । बिंब भराव्या भवतार ॥२०॥
 (.....^२)
 प्रतिष्ठा महोछव धलि सविसाल । सिद्धक्षेत्र यात्रा^३ गुणमाल ॥२१॥
 दानपूजा^४ निरंतर करै । सामाइक नित मन माहि धरै ॥
 महामंत्र गुणै नवकार । वरत नेम पालै भवतार ॥२२॥
 इनि परि राज भोगवे सविशाल । पर उपगार करै गुणमाल ॥
 एक वार जिन भवन उत्तंग । गयौ राज आपने मनि रंग ॥२३॥
 सुगंध राणि सहित सुजान । बलि श्रावक आव्या गुणमाल ॥
 पूजा जिनवर त्रिभुवन तार । बांछा सदगुरु धर्मह काज ॥२४॥
 तिणि अवसरि आव्यौ एक देव । सरग थकौ भाव सहित सहेव^५ ॥
 पूजा जिनवर सदगुरु पाय । सफल कीधी जिम निज काय ॥२५॥
 सुगंधा राणि^६ दिठि गुण जयवन्त । हरष वदन हुबौ जयवन्त ॥
 धन धन राणी तम्ह अवतार । तम्ह परसादे देव हुबौ सार ॥२६॥
 पहिले भवि निरमलियौ^७ उत्तंग । सुगंध दशमि व्रत लियौ उत्तंग ॥
 हुं विद्याधर होतो राय । तम्ह सरिसौ व्रत कियौ भवतार^८ ॥२७॥
 ते भणि साधर्मि मुक्त सार । तुस हो वरि बहिनि विचार ॥
 इम कही पूजी ते बाल । वस्त्राभरण करी गुणमाल ॥२८॥
 महोछव कियौ बलि तिहा जानि । बोल्या सुललित मधुरिय वानि ॥
 धन धन जिनशासन अति चंग । इम कहि आपने मनि रंग ॥२९॥
 पछै गयौ आपने निज ठाम । जिनवर चरण कमल सिर नाम ॥
 राजा आव्यौ निज घरि सार । जिनवर धर्म करै भवतार ॥३०॥
 काल घणौ भोगव्यौ राज सार । करता बहु पर उपकार ॥
 पछै मरन साधौ गुणवन्त । महामंत्र गुणै जयवन्त ॥३१॥
 ईशान सर्गि^९ लाधो अवतार । ते देव हुबौ अवधार^{१०} ॥
 नारी लिंग परिहरियो जानि । इंद्र पद लाधौ सुगंधी सुजान ॥३२॥
 अवधिज्ञान उपज्यो तिहा सार । व्रत फलै जाणौ सविशाल ॥
 जिनशासन उपरी मोह चंग । समकित धर्म पालौ उत्तंग ॥३३॥
 विमान बैसि करि अति गुणवन्त । जिनवर यात्रा करै उत्तंग ॥
 पंच कल्यानिक करै चंग । जिनवर धर्म करै उत्तंग ॥३४॥

१. झ साधी, २. यह पंक्ति तीनों प्रतियोंमें नहीं है, ३. स यात्रा, ४. स देव, ५. स सुणो हेव,
 ६. स कुवरि, ७. स निर्नामक, ८. स धिरभाव, ९. स सरग, १०. ब गुणधार ।

सुपाश्वर्ष जिनवर भवतार । समोसरण स्वामिको सविचार ॥
 ते देव तिहा जाइ आनंद । पूजे चरन कमल गुणकंद ॥३५॥
 केवल^१ वानि सुणे गुणवंत । तत्त्व पदारथ बलि जयवंत ॥
 जिनशासन उपरि दृढ चित्त । समकित वरत पालै सुललित ॥३६॥
 दूहा—स्वर्ग तण सुख भोगवी दृढ सागर अति चंग ।
 देवि सहित सुहावणौ धर्म फलै उत्तंग ॥३७॥
 तिहा थको चवि करि रूबडो उत्तम कुल अवतार ।
 संजम लेसै निरमलो दिगंबर गुरु^२ धार ॥३८॥
 ध्यान बले कर्म क्षय करी केवल ज्ञान विशाल ।
 अनेक जीव भवियण संबोध्या^३ गुणमाल ॥३९॥
 पलै मुगति रमनी वरइ सिद्ध हुआ गुणमाल ।
 आठ कर्म रहित नमू^४ आठ गुण जयवंत ॥४०॥
 ते स्वामी हु ध्याइसु मनि धरइ अविचल भाव ।
 अविचल ठाम हु मागसु उपमा रहित पसाउ ॥४१॥
 श्रीसकलकीरति प्रणमिणइ मुनि भुवनकीरति भवतार ।
 रास कियौ मे निरमलौ सुगंधदशमि सविचार ॥४२॥
 पढै गुणै जे सांभलै^५ मनि धरइ अति भाव ।
 ब्रह्म जिनदास भणे रूबडौ^६ ते पामै सुख ठाम ॥४३॥

॥ इति ॥

१. स जिन, २. स गुण, ३. स संबोधि करी भवियण, ४. श्री में चरणका इतना अंश छूट गया है,
 ५. स साम्हलै, ६. स निरमलो ।

सुगन्धदशमीकथा [मराठी]

सुगन्धदशमीकथा

[मराठी]

शार्दूल०

श्रीमन्मंगल देवमूर्ति जिन हा सिंहासनी बैसला ।
छत्रे तीन विशालकाय शशि हा सेवा करू पातला ।
पाहा दक्षिनवामभाग चमरे गंगावने ढालिला ।
सूर्याचे नभि तेज कोटि लपले ऐसा विभू देखिला ॥१॥

भुजंग०

मी बोलिलो प्रार्थुनि^१ शारदेसी । माते जरी तू वरदान देसी ॥
वाणी रसाला वदवीस काही । जे ऐकता साकर गोड नाही ॥२॥
आधीच या जैन कथेसि गोडी । चाखोनि पाहा मग ध्या निवाडी ॥
घेता बहू रोग तुटोनि जाती । होईल पुण्याश्रव थोर कीर्ती ॥३॥
जंबू महाद्वीप विशाल पाहे । त्यामाजि हे भारत क्षेत्र आहे ॥
काशी बरा देश विशिष्ट जेथे । वाराणसी नग्न पवित्र तेथे ॥४॥
तेथे वसे भूपति पद्मनाभी । पुण्याश्रयी पूर्ण विशालनाभी ॥
त्या श्रीमती नाम कुभाव राणी । पुण्याविना केवल पापखाणी ॥५॥

वसंत०

आला वसंत फुलले तरु मोगन्याचे । जाई जुई बकुल चंपक पाडलीचे^२ ॥
पुष्पे फले लवति पादप अंबराई । छाया सुशीतल वनी जनि सौख्यदायी ॥६॥

उपेन्द्र०

आरूढ होउनि रथावरि हो कसा । राजा निघाला रवि भास हो जसा ॥
पुढे बरे बोलति भाट वाणी । मार्गी जना वारिति दंडपाणी ॥७॥
सूर्यासवे जाइ सुदीप्ति जैसी । राणी नृपासंनिध होय तैसी ॥
मार्गी जवे देखिले मुनीला । मासोपवासी दृढ हेत ज्याला ॥८॥
त्रिज्ञानधारी सुपवित्रदेही । सुदर्शन रूपात जनात पांही ॥
राजा तदा टाकुनि वाहनाला । भावे मुनीला प्रणिपात केला ॥९॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविमलानन्द जी महाराज

राणीस सांगे सदनासि जाई । मुनीश्वरा भोजनदान देई ॥
 रानी मनी कूड^१ धरोनि राहे । मिथ्यातिनी पाप विचारिताहे ॥१०॥
 जाईल राजा वर काननासी । मी काय जाऊ सदनासि कैसी ।
 आनंद माझा घडि एक गेला । पापी मुनी काम्हुनि आजि आला ॥११॥
 बोलेच ना ते सदनासि आली । मुनीस ते भोजन काय घाली ॥
 कडू दुध्या रांधुनि पाक केला । कुभाव चित्ती मुनि जेववीला ॥१२॥
 गेला मुनी घेउनि आहरासी । जैनाल्ह^२ ध्यान धरी सुखेसी ॥
 त्या आहरे विव्हल देह जाले । हा हा करी लोक समस्त आले ॥१३॥
 तो श्राविका श्रावक दुःख भारी । हे विघ्न कैस्यापरि कोण वारी ॥
 ऐसी कसी पापिणि कोण आहे । मुनीस हा आहर दीधलाहे ॥१४॥
 केले तदा औषध शुद्ध पाही । गेला स्वभावे मग रोग काही ॥
 जाला मुनी देह निरोग जेव्हा । सुखी^३ मुनी जाय वनासि तेव्हा ॥१५॥
 हे तो कथा या स्थलि राहियेली । नृपा घरी सांगण काय जाली ॥
 तो भाव लोकी श्रुत त्यासि केला । भूपासही कोप^४ चढोनि आला ॥१६॥
 माझ्या घरी काय पदार्थ नाही । हे बाइको पापिन काय पाही ॥
 जलो इचे तोंड दिसोच ना की । कुसंगती पाप घडे जना की ॥१७॥
 त्यानंतरे भूपति एक दीसी । गेला पहा सदगुरुवंदनेसी ॥
 निंदूनिया आपुलिया भवासी । करोनि प्रायश्चित्त ये घरासी ॥१८॥
 राजा तिला पाहुनि कोप आणी । शृंगार हारादिक घे हिरोनी ॥
 सौभाग्य गेले मग दीन जाली । हे कर्कसा बोलति लोक बोली ॥१९॥
 दुर्गंध तो आमय व्यक्त^५ जाला । देहावरी कोड चढोनि आला ॥
 तो वास साहू न सकेचि कोन्ही । जलो जलो बोलति लोक वाणी ॥२०॥

शालिनी

राणी तेव्हा दुःख आणी मनासी । हा हा देवा पाप^६ जाले जिवासी ॥
 कैसी बुद्धी आठवे पापिणीसी । कैसी गोष्टी सांगणे हे जनासी ॥२१॥
 राणी तेथे आर्तध्याने मरोनी । म्हैसी जाली पापिणी दुःखखाणी ॥
 माता गेली जन्मता कालगेही । चारापाणी ते मिलेनाचि काही^७ ॥२२॥
 जाली देही दुर्बली चालवेना । काही केल्या दुःख तीचे सरेना ॥
 पानी ध्याव्या ते तटाकी निघाली^८ । तेथे कैसी कर्दमी मग्न जाली ॥२३॥
 गेली प्राणे सूसरी काय जाली । माता नाही ते पडे पाप जाली ॥
 तेथोनीया साँवरी पापयोनी । तेथेही ते दुःख भोगी निदानी ॥२४॥

१. ग क्रोध, २. ग. सुखे, ३. ग क्रोध, ४. क ग व्याप्त, ५. ग दुःख, ६. क ग पाही, ७. ग रिघाली ।

पार्श्वदर्शक - आचार्य श्री विद्यासागर जी फारान
उपेन्द्र०

अनुक्रमे जन्म भरोनि गेला । चांडाल गेही मग जन्म जाला ॥
दुर्गंध आंगी बहु दुःख दाटी । कोन्ही तिला बैसविनाचि पाटी ॥२५॥
माता मरे दुःख विशाल दीसे । सर्वत्रही देखुनि लोक हासे ॥
ते एकली टाकियली वनांत । रडे पडे दुःख धरी मनांत ॥२६॥
ते उंबराची फल खात राहे । गेले ऋतू वत्सल कर्मले हे ॥
तेथे वना एक मुनींद्र आला । नामे श्रुताब्धी शुभ भाव ज्याला ॥२७॥
असे गुणाब्धी वर शिष्य त्याचा । तो बोलिला सद्गुरुसी सुवाचा ॥
संदेह हा दूर करावयासी । आता पुसावे बरवे गुरुसी ॥२८॥
अहो अहो श्रीगुरुराज देवा । हे कोण चांडालिणि पापठेवा ॥
वदे गुरू आइक बालका रे । इच्या भवाची कथनी कथा रे ॥२९॥
हे श्रीमती पूर्विल राजकांता । मुनीस दे आहर दुष्टचिंता ।
तुंबीफलाचे कडु दान केले । त्याचे असे पाप फलासि आले ॥३०॥
गेली कथा पूर्विल व्यक्त केली । चांडालिणीसी श्रुत सर्व जाली ॥
हा हा वदे निंदुनि पाप बाला । तेह्ना स्वभावे गुरू वंदियेला ॥३१॥
कुभाव गेला सुभ भाव झाला । पुनःपुन्हा वंदियेले गुरूला ॥
घेवोनिया मूलगुणासि आठा । वारा व्रते पालिति पुण्यपाठा ॥३२॥
तेथोनिया ते मरणासि पावे । पुढे कथा सांगण ऐक भावे ॥
शृंगारिला मालव देश शोभा । तेथे पुरी उज्जनि रत्नगाभा ॥३३॥
ते ब्राह्मणाचे घरि हो कुमारी । होताचि बापावरि होय मारी ।
काहीक वाढे मग माय मेली । उच्छिष्ट खाता मग वृद्धि जाली ॥३४॥
आणीतसे काष्ट विशेष भारा । पुण्याविना केवि सुखासि थारा ॥
ऐसी भरी ते उदरासि बाला । तेथे मुनी तो तव येक आला ॥३५॥
सुदर्शना काम विकार नाही । सम्यक्त्वधारी व्रत पूर्ण पाही ॥
राजा पहा तेथिल अश्वसेन । वंदावया चालियला सुजाण ॥३६॥
घेऊनिया अष्टक द्रव्य पूजा । त्या गाविचा लोकहि जाय वोजा ॥
गुरूसि केला प्रणिपात तेही । सम्यक्त्व भावाविण हेत नाही ॥३७॥
सुमार्ग तो ऐकुनि लोक धाला । बहूत धर्मावरि हेत जाला ॥
सांगे सुधर्मा गुरू तो म्हणावा । या वेगला तो कुगुरू गणावा ॥३८॥
मोली सिरी घेउनि दुष्टगंधा । आली अकस्मात करीत धंदा ॥
पुढे बरे देखियले मुनीसी । ते आठवे पूर्विलिया भवासी ॥३९॥

शालिनी

मूर्छा आली ते पडे भूमिकेला । राजा पाहे लोक विस्मीत जाला ॥
काहो स्वामी पातली ईसिमूर्छा । ऐसे सांगा आमुची भव्य पृच्छा ॥४०॥

स्थोद्धता

वदे मुनी केवल दिव्य वाणी । भवांतराची क्रमली कहानी ॥
 ऐकोनिया विस्मित भूप जाला । म्हणे विभू सांग उपाय याला ॥४१॥
 करील हे एक बऱ्या व्रतासी । तो सर्व हा जाईल पापरासी ॥
 इन्हे सुगंधा दशमी करावी । जाईल पापासि महा स्वभावी ॥४२॥
 पुढे मुनी सांगतसे नृपाला । तो स्थानकी तो स्वर्ग एक आला ॥
 जयादि हो नाम कुमार रासी । तो बैसला वंदुनिया गुरूसी ॥४३॥
 मासामधी भाद्रपदासि मानी । ते शुक्लपक्षी दशमी पुराणी ॥
 करोनिया पाँचहि रंग गाढा । कोठे दहा त्यात विचित्र काढा ॥४४॥
 त्या मध्यभागी कलसासि ठेवा । त्याहीवरी चौविस जैन देवा ॥
 वसु प्रकारे मग भक्ति पूजा । ऐसे करा साधन आत्म काजा ॥४५॥

मालिनी

दशविधजिनपूजा या परी ते करावी । दृढतर जिनमत्ती अंतरी आठवावी ॥
 दशविध जयमाला पाठ भावे पढावा । त्यजुनि सकल धंदा हेतु तेथे जडावा ॥४६॥

सवैया

जय जय मोहनरूपधरा शिवमार्गकरा भवदुःखहरा ।
 जय जय केवलबोधभरा रविकोटितिरस्कृतकांतितरा ॥
 जय जय हे हरिविष्टरभूषण मन्मथदूषण मुक्तिवरा ।
 जय जय कामकुतूहलवारण पापविदारण पुण्यपरा ॥४७॥

हुत०

जिनकथा करिता क्रमल्या निशा । निरसिला तम उज्जलिल्या दिशा ॥
 उगवला रवि तो दुसऱ्या दिशी । पुनरपी करि पूजन सौरसी ॥४८॥

उपेंद्र०

ऐसे दहा वर्ष करा व्रतासी । उद्यापनाला करणे विधीसी ॥
 दहाच चंद्रोपक तारकाही । लाडू करावे शत एक पाही ॥४९॥
 उपास आधी सुकरोनि वोजा । पंचामृताची अभिषेक पूजा ॥
 उद्यापनाची जरि शक्ति नाही । करी दुणे हे व्रत पूर्ण पाही ॥५०॥
 समस्तही हा विधि ऐकुनीया । भावे करीती व्रत घेउनीया ॥
 देती तिला श्रावक द्रव्यपूजा । ते आचरी ब्राम्हणि धर्म काजा ॥५१॥
 भावे असे हे व्रत पूर्ण केले । तिला व्रताचे फल इष्ट जाले ॥
 दुर्गंध जावोनि सुगंध आला । हे तो सुगंधा जन बोलिलेला ॥५२॥
 ऐसा करी जो वरव्या व्रतासी । तो निश्चये पावल जो सुखासी ॥
 आयुष्य थोडे मग काल केला । तिचा पुढे सांगण जन्म जाला ॥५३॥

१. क ग मुनीसी, २. ग मधे, ३. क वसु ४. क ते घरावी, ५. क ग उज्जलिल्या, ६. ग पूर्ण,
 ७. क ग ऐसे ।

भुजंग०

असे आर्यखंडात सुभारताते । पुरी कंचनी ते असे शुद्ध त्याते ॥
सदा तेथिचालोक भोगीसुखासी । बहू धर्मकार्यी असे लोभ त्यासी ॥५४॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविद्यिताम्य जी कलहंसा

कनक नाम नृपती बलवंत । कनकमाल बधू जयवंत ॥
जैनधर्म रुचि फार जयाला । धर्महेत धरिता दिन गेला ॥५५॥

उपजाति

तेथे वसे तो जिनदास वाणी । जिनादिदत्ता बधु त्यासि मानी ॥
तिच्या कुशी पूर्विल ब्राम्हणी ते । जाली कुमारी बहु पावनी ते ॥५६॥
सुगंध देहावरि तीस दीसे । लोकासि आश्चर्य विशेष भासे ॥
लोकी सुगंधा म्हुनि' नाम केले । सर्वासि ते वर्त कलोनि गेले ॥५७॥
तो मायबापा बहु लोभ दाटे । आनंद संपूर्ण मनात वाटे ॥
काहीक पापास्तव माय मेली । पूर्वील दुःखावलि व्यक्त' जाली ॥५८॥
हा हा करी तो मग बाप जीवा । म्हणे कसा पूर्विल पाप ठेवा ॥
विवाह दूजा करि लोक बोले । संतोष मानी स्थिर चित्त केले ॥५९॥
ते कर्कसा रूपिनि नाम नारी । क्रोधानना केवल पापधारी ॥
सकाल उठोनिच खाय दाना । ऐसी महा पापिनि पूर्ण जाणा ॥६०॥
तिच्या कुसी एकचि होय कन्या । ते नाम श्यामा निज रूप धन्या ॥
माता करी स्नेह विशेष तीचा । सुगंधकन्येवरि द्वेष साचा ॥६१॥

शालिनी

श्यामा माभी काय बाहीर गेली । खाऊ जेऊ तीजला शीघ्र घाली ॥
श्यामा बाला आनुनी तेल रोला । घाली जेऊ तीजला तूपगोला ॥६२॥

भुजंग०

सुगंधा बहू रोड जाली सरीरी । नसे अन्न पाणी करे दुःख भारी ॥
पित्याने असा पाहिला भाव पाही । म्हणे वेगळे राहिजे सर्वथा ही ॥६३॥
जुदाराहिला वाणिया तो शहाणा । तरी द्वेष तीचा कदापि चुकेना ॥
सुगंधा करी अन्न पाकासि भावे । पिता देखुनी अंतरी तो सुखावे ॥६४॥
असे देखुनी अंतरी लोभ आणी । म्हणे बाल माभी कसी हो शहाणी ॥
दिसे पूतली रेखिली सोनियाची । गुरू देव वंदी करी भक्ति त्याची ॥६५॥
दुकानूनि आनी नवीसी नव्हाली । सुगंधा बलाऊनि ओटीत' घाली ॥
तदा रूपिणी कस्मली काय बोले । म्हणे गे पित्यालागिही वश्य केले ॥६६॥
तदा एक दीसी पहा त्या नृपाने । बोलाऊनि सांगीतले काय त्याने ॥
तुवा जाइजे शीघ्र दीपांतराला । खरीदी करा रत्न आणी घराला ॥६७॥

नृपालागि वंदूनि आला घरासी । वदे गुह्य गोष्टी पहा रूपिणीसी ॥
 म्हणे मे प्रिये कन्यका दोनि जोडी । तुझी आणि माझी असी गोष्टी सोडी ॥६८॥
 वरू पाहने सोडणे आलसाला । दहा वर्ष गेली अती काल झाला ॥
 मला जाहने दीपदीपांतरासी । कलेना किती लागती वर्षरासी ॥६९॥
 असे बोलुनी वंदुनी त्याचि भूषा । पहा चालिला तो कसा रत्नदीपा ॥
 नमोकार मंत्रावरी भाव भारी । म्हणे मंत्र हा सर्व पापा निवारी ॥७०॥

स्वागता

चांगदत्त बरवा शुभ बाणी । त्यासि चंपकवती वधु मानी ॥
 तीस एक गुणपाल कुमार । श्यामसुंदर जिसे जितमार ॥७१॥
 तो कलंकनगराहुनि आला । देखता मग सुगंधिनि बाला ॥
 रीझला म्हणत देवि कुमारी । रूपिणी तव मनात विचारी ॥७२॥
 दाखवी चतुर ते मग श्यामा । चांगदत्त म्हणतो नये कामा ॥
 कोप फार चढला मग तीला । म्हणत यास कसा भ्रम जाला ॥७३॥
 मानली मग सुगंध कुमारी । हेचि सुंदर गुणाधिक नारी ॥
 लग्न निश्चय बरा मग केला । चांगदत्त नगराप्रति गेला ॥७४॥
 सोयरी मिलविली मग आला । तोष फार नव्हती मिरविली ॥
 दो घरी त्वरित मंडप घाली । रूपिणी तव मनात विराली ॥७५॥

भुजंग०

कसी रूपिणी तीसि घेवोनि हाती । निघाली कसी पापिणी मध्यरात्री ॥
 स्मशानासि नेऊनिया तीसि ठेवी । चहू दिग्विभागी दिवे चारि लावी ॥७६॥
 तसी चौ दिसी ते धरी हो निशाने । असे नोवरा या स्थली तूसि जाने ॥
 म्हणोनी असी ते घरालागि आली । कपालासि ठोकी करी लोकचाली ॥७७॥

उपेंद्र०

रडे पडे विह्वल वाक्य बोले । पाहावया लोक समस्त आले ॥
 सेजारिनी त्या मिलल्या समस्ता । त्या बोलती आपरिती प्रशस्ता ॥७८॥
 कोन्ही म्हणे घेउनि भूत गेला । झोटींग कोन्ही म्हणताति बोला ॥
 कोन्ही कुलीचा कुलदेव बोले । कोन्ही म्हणे हे विपरीत जाले ॥७९॥

मालिनी

अगड अगड बाई काय मे म्यां करावे । अहह कटकटा मे कोन रानी फिरावे ॥
 अहह कसि सुगंधा कोन रानी पहावी । बहुत अवगुणाची काय कैसी धरावी ॥८०॥

उपेंद्र०

आला इव्हाई मग काय बोले । म्हणे अहा काय विपर्यं झाले ।
 बाला सुगंधा बहु रूपशाली । तिच्या रुपाची पहाता नव्हाली ॥८१॥

भुजंग०

वदे रूपिणी ते विव्हायासि बोली । सुगंधा पहा देश सोडोनि गेली ॥
 असे हे कुमारी मला एक जोडी । कुमारासि देतो तुज्या प्रीति जोडी ॥८२॥
 बरे बोल बोलोनिया बोल तेन्हे । तसे लाविले लग्न सन्मान दाने ।
 विव्हाई सुखे लीलायासि गेला । पुढे आह्वा हे कथा हो रसाला ॥८३॥
 सुगंधा कसी राहियेली स्मशानी । दिसे देवकन्या तसी रूपखानी ॥
 पहा त्याच हो गाविचा भूप भोला । अकस्मात माडीवरी काय आला ॥८४॥
 दिशा पाहता हो कसी दृष्ट गेली । स्मशानी सुगंधा बरी देखियेली ॥
 निघाला तवे शस्त्र घेवोनि हाती । पुढे ठाकला बोलला प्रीति भाती ॥८५॥
 अगे काय तू व्यंतरीकी पिशाची । खगाधीपकन्या वदे गोष्टि साची ॥
 वदे कोन तू सांग वृत्तांत तूझा । तुला देखता मोहला प्रान माझा ॥८६॥

रथोद्धता

मज पिता जिनदत्त कृपाला । जिनमती जननी गुणमाला ॥
 जन्मताचि जननी मृत जाली । म्हनुनि माय दुजी मग आली ॥८७॥

कलहंसा

कनक नाम नृपती जनकाला । करि म्हणे दिपदिपांतर त्याला ॥
 मानुनी नृपतिशासन भाली । स्वगृहासि मग ये गुणशाली ॥८८॥

स्वागता

रूपिणी मज सपत्नि सुमाता । बाप सर्व सिकवी तिस जाता ॥
 कन्यका उपवरा^१ सुवरासी । देइजे घट मुहूर्त सुमासी ॥८९॥
 आज लग्न दिवसी वर आला । रूपिणी करि कुवृत्ति कुचाला ॥
 आनुनी बसविले मज येथे । या स्थलीच वरि तू सुवराते ॥९०॥
 कठिन बोलुनिया मज गेली । सर्व गोष्टि तुज म्या श्रुत केली ॥
 नृपति घालि म्हणे मज माला । या स्थलासि वर मी तुज आला ॥९१॥

भुजंग०

विधीनेच हो लाविले लग्न जेथे । करी अन्यथा त्यासि पै कोण तेथे ॥
 सुगंधा मनी हर्षली तोष दाटे । गला माल घाली महा हर्ष वाटे ॥९२॥
 सुगंधा म्हणे नोवरा तूचि माजा । खरे सांग तू कोनता ठाव तूझा ॥
 नृपाले तदा कौतुके गोष्टि केली । म्हणे राहतो याच गावात गौली ॥९३॥
 गुरे पालितो वीकितो ताकपाणी । इला दोर घेवोनि मी भार आणी ॥
 असे बोलुनी भूपती तो निघाला । धरी पल्लवी तो सुगंधा तयाला ॥९४॥

१. ग वरी, २. क ग मज दुजी, ३. क नृपधरा ।

पुन्हा भेटि होईल केव्हा वदावे । मला टाकुनी एकले काय जावे ।
 कसी आपुली वस्तुटाकोनि जाने । बरे हे नव्हे सर्वथा दीनवाणे ॥९५॥
 वदे भूप येईन तुझ्या ठिकाणी । निशा मध्यभागी खरा बोल मानी ॥
 खरे गे खरे सत्य हे भाष घेई । प्रिये ऊठ तू शीघ्र गृहासि जाई ॥९६॥
 नृपाले घरालागि^१ गंतव्य केले । कलेनाचि कोन्हासि ते गुप्त जाले ॥
 सुगंधा कुमारी त्वरे ये घरासी । वदे रूपिणी पातली पापरासी ॥९७॥
 सुगंधा वदे सर्वही गोष्टि केली । बरे ऐकिले रूपिणी हासियेली ।
 म्हणे गे कसी गौलिया माल घाली । कसी भाग्यमंदा करी आपचाली ॥९८॥
 निशा मध्य भागी तिच्या मंदिरासी । पहा भूप ये नित्य तो आदरेसी ॥
 अलंकार दील्या^२ बहू द्रव्य रासी । सुगंधा वदे गोष्टि ते माउलीसी ॥९९॥
 असे वर्तले पितृ गावासि आला । अलंकार देखोनिया व्यग्र जाला ॥
 दिसे सर्व वस्तू नृपाची निशानी । म्हणे कोन तो चोर चोरोनि आणी ॥१००॥
 मनामाजि भ्याला नृपालागि सांगे । म्हणे चोरटा तुझिया गावि जागे ॥
 कसा माल घालोनिया कन्यकेसी । प्रती वासरे येत माझ्या घरासी ॥१०१॥
 अलंकार राजा तुझा सर्व घेई । वदोनि असा लागला शीघ्र पाई ॥
 कलेनाचि तो कोन ठाई निवासी । कसा तो वरू लाधला कन्यकेसी ॥१०२॥
 वदे भूप तो चोर दावूनि देई । बहू वित्त गेले न लागे सुठाई^३ ॥
 कसा कोन येतो तुझ्या मंदिरासी । सुगंधा कसी रातली काय त्यासी ॥१०३॥
 अलंकार माझ्या घरातील गेला । कसा चोर आला कसा काय नेला ॥
 दिसे ना तु आणीक तो आणि दावी । न आणीस तेव्हा तुला सीख लावी ॥१०४॥
 अहो साहजी सांगतो बोल माना । समस्ता जना भोजनालागि आना ॥
 वरी भोजने सारिल्या आदरेसी । बहू आदरे बैसवावे जनासी ॥१०५॥

उपेंद्र०

अंतःपटा बांधुनि येके ठाई । चौरंग मांडा बरव्या उपायी ।
 जो पाय धूता वरू ओलखील । तो नोवरा होय कुमारिकेला ॥१०६॥
 सांगीतली रीत तसीच केली । बापे सुगंधा बहु वीनवीली ॥
 श्रेष्ठी घरी लोक समस्त आला । भूपालही हासत चालियेला ॥१०७॥

भुजंग०

बहू पाय धूता न ये ओलखीसी । म्हणे हे नव्हे हे नव्हे पीतियासी ॥
 बहु साजिरे पाय माझ्या वराचे । अति कोमले काय सांगू गुणाचे ॥१०८॥
 अहो पद्म पायी जयाचे झलाली । दिसे चक्र अंकुश रेखा विशाली ॥
 असे ऐकुनी भूप सन्मुख आला । सुगंधा म्हणे तो वरू ओलखील ॥१०९॥

मालिनी

खदखद नृप हासे तोष सर्वा जनाला । मग नृपवरु बोले मी वरु कन्यकेला ॥
 म्हणत सकल नारी काय हो भाग्यलीला । स्वजन जन मिलाला तोष सर्वत्र जाला ॥११०॥
 त्वरित मग सुगंधा आनिली पुण्यशाली । मलवट पट रेखा रेखियेली कपाली ॥
 लखलखित कुकाचे लाविले बोट दीसे । धवधवित विलासे काय लक्ष्मीच भासे ॥१११॥

शिखरिणी

विरोधा पोल्हारे अनवट झणत्कार चरणी ।
 कस्या वाक्या ही त्या चपल गुजऱ्या सूर्यकिरणी ॥
 पदी धागूऱ्याचा रुणझुणित बाजे स्वर बरा ।
 अनंगाचा कैचा त्रिभुवनि जयी घोष दुसरा ॥११२॥

शार्दूल०

मार्गदर्शक अथवा शिखरिणी आणि शार्दूल अथवा शिखरिणी

पाठाऊ बहुलाल जोरकसिचा त्यामाजि बुट्टा किती ।
 मध्ये सारस हंस थोर रचना मोराचिये पंगती ॥
 ल्याली ते कटिसूत्रही कटितटी बाला बहू शाहनो ।
 हाती कंकण घातले घडलिया रत्नाचिया जोडणी ॥११३॥
 कंठी दुल्हड दाटली मणि महा तैसी सरी लाखिली ।
 घाली मोहनमाल ते गरसुली चित्रांग चापेकेली ॥
 भांगी मुक्तिक पद्धती सहित ते सिंदूर रेखा भली ।
 तैसी मूढ सुराखडी लखलखी वेणी पहा लांबली ॥११४॥
 कर्णी तानवडे सुरतन जडली ते चंद्रसूर्यापरी ।
 भाली चंद्रक सीस फुल्ल झलकी जाली फुलाची बरी ॥
 नेत्री अंजन घातले झलकती पंचांगुली मुद्रिका ।
 ल्याली दाटित कंचुकी मग दिसे जैसी शरचंद्रिका ॥११५॥
 बाजूबंद विशेष बांधुनि असा शृंगार पां दीधला ।
 अंगी चंदन चर्चिला दशदिशा सौगंध तो व्यापला ॥
 दंताची बरवी सुपंक्ति रचना डार्लिव बीजापरी ।
 वक्त्री तांबुल चर्चिला धवधवी आरक्त होटावरी ॥११६॥

रथोद्धता

लून लाविले शुभ वेला । सर्व एक मिलला जनमेला ॥
 वधुवरे मग वरे मिरविली । जेवणावल सुखे करविली ॥११७॥
 एक दिवस धरी नृप कोपा । रूपिणीसि म्हनतो दृढ़ पापा ॥
 आनिली धरुनि दंड करावा । पापिणी कपट टाकि कुभावा ॥११८॥

पातली तव सुगंधकुमारी । बोलली नृपवराप्रति भारी ॥
 माभ्रिया जननिला जरि दंडा । लोक बोलति तरी मज लंडा ॥११९॥
 हा विचार नव्हे बुझ राया । म्हणुनि जाउनि धरी दृढ पाया ॥
 सोडिनाच मग ते क्षण राहे । होळियांत भरले जल वाहे ॥१२०॥
 ऐक ऐक म्हणे नृप सारा । व्यर्थ भाव दिसते जन थारा ॥
 राख राख विभु माहेर माझे । दान फार घडले जरि तूझे ॥१२१॥
 म्हणुनि काकुलती जव आली । भूप अंतरि दया तव जाली ॥
 सोडिली मग कृपाल नृपाले । सज्जनासि सुख अंतरि जाले ॥१२२॥
 पट्टराणि पद ते मग पावे । राज्यवैभव सुखात सुखावे ॥
 करविले मग जिनालय तीने । त्यात बिंब धरिले सुविधीने ॥१२३॥
 नित्य पूजन करी जिनदेवा । मूलमंत्र जप सुकृत ठेवा ॥
 कोन्हि येक सुदिनी सुख वेला । जिनगृही मिलला जन मेला ॥१२४॥
 जिनगृही वर सुगंध कुमारी । सावचित्त वसली सुख भारी ॥
 देव एक तव त्या स्थली आला । देवदेव जिन तो नमियेला ॥१२५॥
 देखिली तव सुगंधकुमारी । हासिला खदखदा तव भारी ॥
 धन्य धन्य अवतार सुगंधा । बोलिला मग भवांतर धंदा ॥१२६॥
 तूभ्रिया व्रतबले फल जाले । म्हणुनि देवपद हे मज आले ॥
 स्वर्ग भवांतर जई मज वोजा । व्रत विधी धरिला शुभ काजा ॥१२७॥
 या स्थली उपजलीस सुगंधा । राज्यवैभव महा सुखकंदा ॥
 धर्महेतु बहिनी मज तूची । साच गोष्टि बुझ पूर्व भवाची ॥१२८॥
 बहुत फार वदू तुज कायी । वीसरू मज नको सखे बाई ॥
 नित्य नित्य जिनदेव पुजावा । काल हा जगि असाचि खपावा ॥१२९॥
 वस्त्रभूषण दिल्ले मग तीला । स्वस्थलासहि सुखे सुर गेला ॥
 सर्वलोक वदती यश तीचे । दानपुण्य करि ती यश साचे ॥१३०॥

भुजंग०

सुगंधा पुन्हा त्या व्रतालागि साधी । पुरे सर्व आयुष्य पावे समाधी ॥
 धरी अंतकाली णमोकार मंत्रा । पुढे प्राण गेले सुखे ते स्वतंत्रा ॥१३१॥
 वधूलिंग छेदुनि ईशान स्वर्गी । महा इन्द्र जाला पहा पुण्यमार्गी ॥
 विमानी बसूनी करी तो प्रयाणा । विभू श्रीसुपार्श्वीसि वंदू सुजाना ॥१३२॥

उपेंद्र०

वंदूनिया ते समवसुतीसी । गेला पुन्हा आपुलिया स्थलासी ॥
 सम्यक्त संपूर्ण मनांत भावी । म्हणे कवी तेचि कथा वदावी ॥१३३॥

रथोद्धता

दोन सागर गमी स्थिति ऐसी । जन्म पाउनि पुढे शुभवंशी ॥
 घेउनी मग दिगंबर दीक्षा । सिद्धदेव हृदयी शुभ शिक्षा ॥१३४॥

उपेद्र०

पाऊनिया केवलबोधदीवा । संबोधिले भव्यजनासि जीवा ॥
 त्यानंतरे साधुनि सिद्धवासा । सुखे वसे मोक्षपदी सुवासा ॥१३५॥
 देवेन्द्रकीर्ति गुरु पुण्यरासी । जैनादि हो सागर शिष्य त्यासी ॥
 ऐसी कथा हे परिपूर्ण सांगे । श्रोत्यासि द्या चित्त म्हणोनि मागे ॥१३६॥

॥ इति ॥

पार्श्वदर्शक - आचार्य श्री तुविधिरागजी महाराज

सुगन्धदशमीकथा

[हिन्दी पद्य]

पं० खुशालचन्द्र कृत

सुगन्धदशमीकथा

[हिन्दी]

चौपई—पंच परम गुरु वंदन करूँ । ताकरि मम अघ-बंधन हरूँ ।
 सार सुगंध - दर्शें व्रत-कथा । भाषहुँ भाषा शिवपद यथा ॥१॥
 अरु गुरु सारद के परसादि । कहस्युँ भेद सार पूजादि ।
 जिन भवि इह व्रत कीन्हो सही । तिन स्वर्गादिक पदवी लही ॥२॥
 सन्मति जिन गोतम मुनिराय । तिनके क्रमि नमि श्रेणिकराय ।
 करत भयो इम थुति सुखकार । विनि कारण जगबंधु करार ॥३॥
 भव्य - कमल प्रतिबोधन सूर्य । मुक्ति-पंथ निरवाहन धुर्य ।
 श्रुत - वारिधिकों पोत समान । इन्द्रादिक तुम सेवक जान ॥४॥
 बुद्धिमान गोतम मुनिराय । मैं विनती करहुँ मन लाय ।
 व्रत सुगन्ध दशमी इह सार । किन्ह कीनो किनि विधि विस्तार ॥५॥
 अरु याको फल कैसो होय । मोकों उपदेशो मुनि सोय ।
 यह सुनि गोतम गणधर राय । बोले मधुर वचन सुखदाय ॥६॥
 मगध देशके तुम भूपार । सुणि व्रतकी सुकथा सुखकार ।
 इहै प्रश्न तुम उत्तम करयो । मैं भाषूँ जो जिन उच्चरयो ॥७॥
 सुणत मात्र व्रतको विस्तार । पाप अनन्त हरै ततकार ।
 जे कर्ता क्रम तैं शिव जाय । और कहा कहिए अधिकाय ॥८॥

दोहा—जंबू द्वीप विषै इहाँ भारत क्षेत्र सुजान ।
 तहाँ देश काशी लसै पुर वाणारसि मान ॥९॥

चौपई—पद्मनाभ जाको भूपार । कीन्हो वसु मदको परिहार ।
 सप्त विसन तजि गुण उपजाय । ऐसे राज करै सुखदाय ॥१०॥
 श्रीमतीय जाकै वर नारि । निज पति कूँ अति ही सुखकारि ।
 एक समय वन - क्रीड़ा हेत । वन जावै व्योभूति समेत ॥११॥
 पुर नजीकसे ही जव गये । निज मनमाहीं आनद लये ।
 तब ही एक मुनीश्वर सार । मासुवास करिकै भवतार ॥१२॥
 अशन काजि आते मुनि जोय । राणी सों भाखै नृप सोय ।
 तुम जावो द्यो भोजन सार । कीजो मुनिकी भक्ति अपार ॥१३॥
 इम सुणि राणी मन इम धरयो । भोगा में मुनि अन्तर करयो ।
 दुःखकारी पापी मुनि आय । मेरो सुख इन दियो गमाय ॥१४॥

मन ही में दूखी अति घणी । आज्ञा मानि चली पतितणी ।
जाय कियो भोजन ततकार । आगै और सुणों भूपार ॥१५॥
मुनि भूपतिके ही घर गयो । राणी अशन महानिंद दयौ ।
कडी तूंबडीको जु अहार । दियो मुनीश्वर कूँ दुःखकार ॥१६॥
भोजन करि चाले मुनिराय । मारग माँहिँ गहल अति आय ।
पर्यो भूमिपर तब मुनिराज । कियो श्रावकाँ देखि इलाज ॥१७॥
तैठे एक जिनालय सार । तहाँ लई गये करि उपचार ।
फेरि सकल ऐसे वच चयो । राणी खोटे भोजन दयो ॥१८॥
तातैं मुणी महा दुःख पाय । सून्य हो गये हैं अधिकाय ।
धिक-धिक है ताकाँ अति घणो । दुष्ट स्वभाव अधिक जा तणो ॥१९॥
तब ही वन सों आयो राय । सुनी बात राजा दुःख पाय ।
राणी सों खोटे वच कहे । वस्त्राभरण खोसि कर लये ॥२०॥
काढ़ि दर्ई घर बाहरि जबै । दुःखी भई अति ही सो तबै ।
कुष्टातुर है आरत कियो । प्राण छोरि महिषी तन लियो ॥२१॥
याकी मात भैसि मर गई । तब यह अति दुर्बलता लई ।
एक समय कर्दम मधि जाय । मग्न भई नाना दुःख पाय ॥२२॥
तहाँ थकी देख्यो मुनि कोय । सींग हलाये क्रोधित होय ।
तब ही पंक्त विषैं गड़ि गई । प्राण छोड़ि स्वरणी उपजई ॥२३॥
भई पंगुरी पिछले पाय । तब ही एक मुनीश्वर आय ।
पूरब वैर सु मन में ठयो । तहाँ कलुष परिणाम जु भयो ॥२४॥

दोहा—कियो क्रोध मनमें घणूँ दर्ई दुलाती जाय ।
प्राण छोरि निज पाप तैं लई शूकरी काय ॥२५॥
श्वानादिकके दुःख तैं भूखी प्यासी होय ।
मरि चंडालीके सुता उपजी निंदित सोय ॥२६॥

चौपई—गर्भ आवताँ विनस्यो तात । उपजताँ तन त्यागो मात ॥
पालै सुजन मरै फुनि सोय । अरु आवत तनमें बदवोय ॥२७॥
इक जोजन लौ आवे वास । ताहि थकी आवै नहिँ स्वास ॥
पंच अभख फल खावो करै । ऐसी विधि वनमें सो फिरै ॥२८॥
तहाँ एक मुनि सिख जुत देख । राग द्वेष तजि शुद्ध विशेष ॥
ता वनमें आये गुण भरे । लघु मुनि गुरु सों परशन करे ॥२९॥
वास निंद्य आवै अधिकाय । स्वामी कारण मोहि बताय ॥
मुनि भाषैं सुणि मन वच काय । जो प्राणी ऋषिकाँ दुखदाय ॥३०॥
सो नाना दुख पावै सही । मुनि-निन्दा सम अध कोइ नही ॥
कन्या इनि पूरब भव माहिँ । मुनी दुखायो थो अधिकाहिँ ॥३१॥

ता करि तिरजगमें दुख पाय । भई बधिक कैं कन्या आय ॥
सो इह देखि फिरत है बाल । सुणि संसय भाग्यो तत्काल ॥३२॥

दोहा—फुनि गुरुसे इम शिष कहै अब किम इनि अघ जाय ।

मुनि बोले जिन धर्मको धारे पाप पलाय ॥३३॥

चौपई—गुरु शिष वचन सुता इन सुण्यो । उपशम भाव सुखाकर मुण्यो ।
पंच अभख फल त्यागे जबै । अशन मिलन लाग्यो शुभ तबै ॥३४॥
शुद्ध भाव सों छोरे प्राण । नगर उज्जैनी श्रेणिक जाण ॥
तहाँ दरिद्रो द्विज इक रहै । पाप उदय करि बहु दुख लहै ॥३५॥
ता द्विज कै यह पुत्री भई । पिता मात जम कै बसि थई ॥
तब यह दुःखवती अति होय । पाप समान न बैरी कोय ॥३६॥
कष्ट कष्ट करि वृद्ध जु भई । एक समै सा वनमें गई ॥
तहाँ सुदर्शन थे मुनिराय । अस्ससेन राजा तिहि जाय ॥३७॥
धर्म सुण्यो भूपति सुखकार । इह फुनि गई तहाँ तिहि वार ॥
अधिक लोक कन्या कूँ जोय । पाप थकी ऐसो पद होय ॥३८॥

दोहा—जास समै इह कन्यका घास-पुंज सिर धारि ।

खड़ी मुनी-वच सुणत थी फुनि निज भार उतारि ॥३९॥

चौपई—मुनि-मुख तैं सुणि कन्या भाय । पूरव भव सुमरण जब थाय ।
यादि करी पिछली वेदना । मूर्छी खाय परी दुख घना ॥४०॥
तब राजा उपचार कराय । चेत करी फुनि पूछि बुलाय ॥
पुत्री तूँ ऐसी क्यूँ भई । सुणि कन्या तब यूँ बरणई ॥४१॥
पूरव भव विरतंत बताय । मैं जु दुखायो थो मुनिराय ॥
कडी तूँ बिडी को जु अहार । दियो मुनी कूँ अति दुखकार ॥४२॥
सो अघ अबलों तणि मुझ दहै । इम सुणि नृप मुनिवर सों कहै ॥
इह किनि विधि सुख पावै अबै । तब मुनिराज बखान्यूँ सबै ॥४३॥
जब सुगंध दशमी व्रत धरै । तब कन्या अघ-संचय हरै ॥
कैसी विधि याकी मुनिराय । तब ऋषि भादव मास बताय ॥४४॥
शुक्ल पक्ष दशमी दिन सार । दश पूजा करि वसु परकार ॥
दश स्तुति पढ़िये मन लाय । दशमुखको घट सार बनाय ॥४५॥
तामैं पावक उत्तम धरै । धूप दशांग खेय अघ हरै ॥
सप्त धान्य को साथ्यो सार । करि तापरि दश दीपक धार ॥४६॥
ऐसे पूज करै मन लाय । सुखकारी जिनराज बताय ॥
तातैं इह विधि पूजा करै । सो भवि जीव भवोदधि तरै ॥४७॥

दोहा—जिनकी पूज समान फल हुवो न हैसी कोय ।

स्वर्गादिक पदको करै फुनि देहै सिव लोय ॥४८॥

चौपई—दश संवत्सर लों जो करै । ताही कै जिन गुण अवतरै ॥
 करै बहुरि उद्यापन राय । सुणहु सुविधि तुम मन वच काय ॥४९॥
 महशांतिक अभिषेक करेय । जिन आगे बहु पुहुप धरेय ॥
 इह उपकरण धरै जिन थान । ताको भेद सुणहु चित आन ॥५०॥
 दश वरणोंको चंदबो लाय । सो जिन-बिंब उपरि तनवाय ॥
 और पताका दश ध्वज सार । बाजै घण्टा नाद अपार ॥५१॥
 मुक्तमाल की शोभा करै । चामर युगल अनूपम धरै ॥
 और सुणहु आगे मन लाय । प्रभुकी भक्ति किये सुख थाय ॥५२॥
 धूप दहन दश आरति आन । सिंहपीठ आदिक पहिचान ॥
 इत्यादिक उपकरण मँगाय । भक्ति भाव जुत भव्य चढ़ाय ॥५३॥
 दान अहार आदि चउ देय । ता करि भवि अधिको फल लेय ॥
 आर्याको अंबर दीजिए । कुंडी श्रुतनिजरे कीजिए ॥५४॥
 यथायोग्य मुनिको दे दान । इत्यादिक उद्यापन जान ॥
 जो न इती है शक्ति लगार । थोरो ही कीजे हित धार ॥५५॥
 जो न सर्वथा घरमें होय । तो दूनो कीजे व्रत सोय ॥
 पणि व्रत तो करिये मन लाय । जो सुर मोक्ष सुथानक दाय ॥५६॥

दोहा—शाक-पिंडके दान तैं रत्न-वृष्टि है राय ।
 इहाँ द्रव्य लागो कहा भावनि को अधिकाय ॥५७॥
 ता तैं भक्ति उपाय कै स्वातम हित मन लाय ।
 व्रत कीजे जिनवर कबो इम सुणि कर तब राय ॥५८॥

चौपई—द्विज-कन्याको भूप बुलाय । व्रत सुगंध दशमी बतलाय ॥
 राय-सहाय थकी व्रत करयो । पूरब पाप-बंध तब हरयो ॥५९॥
 उद्यापन करि मन वच काय । और सुणहु आगे मन लाय ॥
 एक कनकपुर जाणों सार । नाम कनकप्रभ तसु भूपार ॥६०॥
 नारि कनकमाला अभिराम । राज-सेठ इक जिनदत्त नाम ।
 ताकै जिनदत्ता वर नार । तिहिं ताकै लीन्हू अवतार ॥६१॥
 तिलकमती नामा गुणभरी । रूप सुगंध महा सुन्दरी ।
 कलुइक पाप उदय फुनि आय । प्राण तजे ताकी तब माय ॥६२॥
 जननी बिन दुख पावै बाल । और सुणों श्रेणिक भूपाल ।
 जिनदत्त जोवनमय थो जबै । अपनो व्याह विचारयो तवै ॥६३॥
 इक गोधनपुर नगर सुजान । वृषभदत्त बाणिज तिहि थान ।
 ताकै एक सुता शुभ भई । बंधुमती तसु संज्ञा दई ॥६४॥
 तासों कीन्हों सेठ विवाह । बाजा बाजै अधिक उछाह ।
 परणि सु घर लायो सुखसार । आगे और सुणो विस्तार ॥६५॥

दोहा—भोग शर्म करती भई कन्या इक लखि माय ।
नाम धरयो तब मोह तैं तेजोमती सुभाय ॥६६॥

छन्द—प्यारी माता कूँ लागै । नहि तिलकमती सँ रागै ॥
नाना विध करि दुख दायै । ताके मनसा न विभावै ॥६७॥
तब तात सुतासु निहारी । कन्या इह दुखित विचारी ॥
दासी आदिक जे नारी । तिनसों इम सेठ उचारी ॥६८॥
याकी सेवा सुखकारी । कीज्यो तुम भक्ति विथारी ॥
ऐसे सुणि ते सुख पावै । तब नीकी भाँति खिलवै ॥६९॥

चौपई—एक समय कंचन प्रभ राय । दीपांतर जिनदत्त पठाय ॥
नारीसों तब भाखै जाय । हमकूँ राजा दीपि खिवाय ॥७०॥
तातैं एक सुनो तुम बात । इह दो पदमाज्यो दूरमत ॥
अष्ट गुणा जुत जो वर होय । इनकों करि दीज्यो अबलोय ॥७१॥
इम कहि दीपि चलयो तत्काल । और सुणों श्रेणिक भूपाल ॥
आवै करन सगाई कोय । तिलकमती जाचै तब सोय ॥७२॥
बंधुमती भाखै तब आय । यामें औगुण हैं अधिकाय ॥
मम पुत्री गुणवंती घणी । रूप आदि शुभ लक्षण भरी ॥७३॥
तातैं मो कन्या शुभ जान । वर नक्षत्र व्याहौ तुम आन ॥
इनकी मानै नाहीं बात । तिलकमती जाचै शुभगात ॥७४॥
कही फेरि यूँही मम सही । मनमें कपटाई धरि लई ॥
व्याह समै कन्या मम सार । करदेस्युँ व्याहित तिहि वार ॥७५॥
करी सगाई आनन्द होय । व्याह समै आये तब सोय ॥
बंधुमती फेर्याँकी वार । तिलकमती बहु भाँति सिंगार ॥७६॥
घड़ी दोय रजनी जब गई । तिलकमती कूँ निज संगि लई ॥
तबहिं मसाण भूमि मधि जाय । पुत्री कूँ तिहिं ठाणि बिठाय ॥७७॥
तहाँ दीप जोये शुभ चार । पूरे तेल उद्योत अपार ॥
चौगिरदा दीपक चउ धरे । मध्य तिलकमति थिरता करे ॥७८॥
तिलकमती सँ भाखी तहाँ । तो भरता आवेगो इहाँ ॥
ताहि विवाहि आवजे बाल । इम कहिकरि चाली ततकाल ॥७९॥
आधी रात गये तब राय । महल थके लखि वितरक लाय ।
देवसुता जखिनी वा कोय । ना जानै वा किलरि होय ॥८०॥
कै इह नरी यहाँ क्यूँ आय । ऐसी विधि चितवन करि राय ॥
हस्त खड्ग लै चाल्यो तहाँ । तिलकमती तिष्ठ थी जहाँ ॥८१॥

दोहा—जाय पूछियो रायजी तूँ कुण है इनि थानि ।
तिलकमती सुणिकै तबै ऐसी भाँति बखानि ॥८२॥

भूपति मेरे, तात कूँ रतन सु दीपि पठाय ।
मोकूँ मम माता इहाँ थापि गई अब आय ॥८३॥

चौपई—भाखि गई इनि थानक कोय । आवेगो तो भरता सोय ॥
यातैं तुम आये अब धीर । मैं नारी तुम नाथ गहीर ॥८४॥
सुणि राजा तब व्याह सु करयो । रैनि रखो तैठे सुख धरयो ॥
राजा प्रात समै अवलोय । निज मन्दिर कूँ जावनि होय ॥८५॥
तिलकमती ऐसे तब कही । अब तौ तुम मेरे पति सही ॥
सर्प जेम डसि जाओ कहाँ । सुणि इम भापै भूपति तहाँ ॥८६॥
निशिकी निशि आस्युँ तुझ पासि । तूँ तो महा शर्मकी रासि ॥
तिलकमती पूछै सिर नाय । कहा नाम तुम मोहि बताय ॥८७॥
राजा गोप कब्यो निज नाम । इम सुणि तिय पायो सुख धाम ॥
यूँ कहि अपने थानक गयो । तब तेही परभात सु भयो ॥८८॥
बंधुमती कहि कपट विचार । तिलकमती है अति दुखकार ॥
व्याह समै उठिगी किनि थान । जन जन सों पूछै दुख मान ॥८९॥

दोहा—देखो ऐसी पापिनी गई कहाँ दुख दाय ।
हूँदत हूँदत कन्यका लखी मसाणां जाय ॥९०॥
जाय कहै दुखदा सुता इनि थानकि किमि आय ।
भूत प्रेत लाग्यो कहा ऐसी विधि बतराय ॥९१॥

चौपई—तिलकमती भापै उमगाय । तैं भाप्यो सो कीन्हो माय ॥
बंधुमती कहि तुंग पुकार । देखो एह असत्य उचार ॥९२॥
जाणैं कहाँ कबै इह आय । व्याह समै दुःखदाय अघाय ॥
तेजोमती विवाहित करी । साहाकी समया नहिं ठरी ॥९३॥
खिजि भाषी उठि चल घर अबै । ले आई अपने थल तबै ॥
तिलकमती सँ पूछै मात । तैं कैसो वर पायो रात ॥९४॥
सुता कब्यो बरियो हम गोप । रैनि परणि परभात अलोप ॥
बंधुमती भाखी ततकाल । री तैं वर पायो गोपाल ॥९५॥

दोहा—घर इक गेह समीप थो सो दीन्ह दुःख पाय ।
दिन प्रति रजनीके विषै आवै तहाँ सु राय ॥९६॥
दीप निमित्त नहिं तेल दे तबहि अंधेरे माहि ।
राजा तैठे ही रहै सुख पावै अधिकाहि ॥९७॥

चौपई—केते इक दिन ऐसे गये । बंधुमती तब यूँ वच दये ॥
तूँ भाल्या तैं कहि इम जाय । दोय बुहारी तो दे लाय ॥९८॥
तिलकमती आरे करि लई । राति भये निज पति पै गई ॥
करि क्रीडा सुख वचन उचार । नाथ सुणूँ अर दास तिसार ॥९९॥

जुगल बुहारी मेरी मात । जाचीं है तुम पै हरषात ॥
 यातैं ला दीज्यो तुम देव । अंगी कीन्हू भूप स्वमेव ॥१००॥
 लगा जेय बैठ्यो अब राय । कर्णकार तब सार बुलाय ॥
 तिन तैं कही बुहारी दोय । अब हीं कर्यो देर मत होय ॥१०१॥
 इम सुणि तबहीं कंचनकार । लागि गये घडने अधिकार ॥
 स्वर्णसीक सबके मनमोहि । रत्न जडित मूख्यो अति सोहि ॥१०२॥
 पोडस भूषण और मँगाय । डाचा में धरि चाल्यो राय ॥
 एक वेष उत्तम करि लयो । रजनी समय नारि ढिग गयो ॥१०३॥
 रत्न जडितकी कौर जु सार । सोभै सारीके अधिकार ॥
 भूषण वेष दये नृप जाय । दोय बुहारी लखत सुहाय ॥१०४॥
 नारि चरण नृपके तब धोय । सिर केशनि तैं पूछिव होय ॥
 क्रीड़ा करि बहुते सुख पाय । प्रात भये नृप तौ घरि जाय ॥१०५॥
 तिलकमती अति हर्षित होय । जाय दई सु बुहारी दोय ॥
 और दिखाये भूषण वेष । माता देख्यो सार जु भेष ॥१०६॥
 मनमें दुखित वचन इम कब्यो । तेरो भरता तस्कर भयो ॥
 राजाके भूषण अरु वेष । लाय दये तो कूँ जु अशेष ॥१०७॥
 हम सब कूँ दुःख दायी सोय । इम कहि खोसि लये दुखि होय ॥
 इह दिलगीर भई अधिकाय । साँझ समै राजा जब आय ॥१०८॥
 राय तबै संबोधी जोय । मन चिंता राखौ मति कोय ॥
 और घणे ही दैहू लाय । इम सुणि तिलकमती सुख पाय ॥१०९॥
 दीप थकी जिनदत्त जु आय । बंधुमती पति सों बतराय ॥
 तिलकमतीके अवगुण घणां । कहा कहूँ पति अब वा तणा ॥११०॥
 ब्याह समै उठिगी किन थान । परण्यो चोर तहाँ सुख ठान ।
 सो तस्कर भूपति कै जाय । भूषण वेष चोरि कर लाय ॥१११॥
 याकूँ इह दीने तब आय । खोसि रखे मो ढिगमें लाय ॥
 यह कहि वे सब भूषण सार । लाय धरे आगे भरतार ॥११२॥
 सेठ देखि कंपित मन माहिं । तबहीं राज सुथानकि जाहिं ॥
 धरे जाय राजाके पाय । सब बिरतंत कब्यो सुणि राय ॥११३॥
 कब्यो वेष भूषण तो आय । परि वह चोर आनिचो लाय ॥
 इहि विधि सेठ सुणी नृप बात । चाल्यो निज घरि कंपित गात ॥११४॥
 साह सुतासूँ इह वच कियो । तैं हमकूँ यह कुण दुख दियो ॥
 पति कूँ जाणे है अकि नाहि । कब्यो दीप बिनु जाण्यूँ कांहि ॥११५॥
 कबहूँ दीपक हेति सनेह । मोकूँ मम माता नहिं देह ॥
 सेठ कहै किस ही विधि जान । तिलकमती तब बहुरि बखान ॥११६॥
 इक विधि करि मैं जानूँ तात । सो इह सुणो हमारी बात ।

जब पति आये मो दिग यहाँ । तब उन पद धोवत थी तहाँ ॥११७॥
 धोवत चरण पिछानूँ सही । और उपाय इहाँ अब नहीं ॥
 सेठ कही भूपति सों जाय । कन्या तौ इस भाँति बताय ॥११८॥
 ऐसे सुणि तब बोल्यो भूप । इह तौ विधि तुम जाणि अनूप ॥
 तस्कर ठीक करणके काज । तुम घर आवेंगे हम आज ॥११९॥
 सेठ तबै प्रसन्न अति भयो । जाय तयारी करतो थयो ॥
 राजा सब परिवार मिलाय । तबहीं सेठ तणैं घर जाय ॥१२०॥
 प्रजा जु सकल इकट्ठी भई । तिलकमती बुलवाय सु लई ॥
 नेत्र मूदि पद धोवत जाय । यह भी नहीं नहीं पति आय ॥१२१॥
 जब नृपके चरणांबुज धोय । कहती भई यही पति होय ॥
 राजा हँसि इम कहतो भयो । इनि हमको तस्कर कर दयो ॥१२२॥
 तिलकमती फुनि ऐसे कही । नृप हो वा अनि होऊ सही ॥
 लोक हँसन लागे जिहिं बार । भूप मने कीन्हें ततकार ॥१२३॥
 वृथा हास्य लोका मति करो । मैं ही पति निश्चय मन धरो ॥
 लोक कहै कैसे इह बणी । आदि अंतलों भूपति भणी ॥१२४॥
 तबही लोक सकल इम कह्यो । कन्या धन्य भूप पति लख्यो ॥
 पूरव इन व्रत कीन्ह्यो सार । ताको फल इह फल्यो अपार ॥१२५॥
 भोजन नन्तर करि उत्साह । सेठ कियो सब देखत ब्याह ॥
 ताकूँ पटराणी नृप करी । भूपति मनमें साता धरी ॥१२६॥
 एक समैं पति-युत सो नारि । गई सु जिनके गेह मँझारि ॥
 बीतराग मुख देख्यो सार । पुण्य उपायो सुख दातार ॥१२७॥
 सभा विषैं श्रुतसागर मुनी । बैठे ज्ञाननिधी बहु गुनी ।
 तिनको प्रणमि परम सुख पाय । पूछै मुनिवर सों इम राय ॥१२८॥
 पूरव भव मेरी पटनार । कहा सुव्रत कीन्ह्यो विधि धार ॥
 जाकर रूपवती इह भई । अधिक संपदा शुभ करि लई ॥१२९॥
 योगी पूरव सब विरतंत । मुनि निंदादिक सर्व कहंत ॥
 अरु सुगंध दशमी व्रत सार । सो इनि कीन्ह्यो सुख दातार ॥१३०॥
 ताको फल इह जाणूँ सही । ऐसे मुनि श्रुतसागर कही ॥
 तब ही आयो एक विमान । जिन श्रुत गुरु बंदे तजि मान ॥१३१॥
 मुनि कूँ नमस्कार करि सार । फेर तहाँ नृप-देवि निहार ॥
 तिलकमतीके पावाँ परयो । अरु ऐसे सुवचन उच्चरयो ॥१३२॥

दोहा—स्वामिनि तो परसाद तैं मैं पायो फल सार ।

व्रत सुगन्ध दशमी कियो पूरव बिद्या धार ॥१३३॥

ता व्रतके परभाव तैं देव भयो मैं जाय ।

तुम मेरी साधर्मिणी जुग क्रम देखनि आय ॥१३४॥

इमि कहि वस्त्राभरण तैं पूज करी मन लाय
अरु सुर पुन ऐसे कही तुम मेरी वर माय ॥१३५॥

चौपाई—थुति कर सुर निज थानकि गयो । लोकां इह निश्चय लखि लियो ॥
धन्य सुगंधदशमि व्रतसार । ताको फल है अनन्त अपार ॥१३६॥
तब सबही जन यह व्रत धरयो । अपनूं कर्म महाफल हरयो ॥
तिलकमती कंचनप्रभ राय । मुनिकूं नमि अपने धरि जाय ॥१३७॥
देती पात्रनिको शुभदान । करती जिनकी पूज अमान ॥
पाले दर्शन शील सुभाय । अरु उपवास करै मन लाय ॥१३८॥
पतिव्रत गुणकी पालनहार । पुनि सुगंधदशमीव्रत धार ॥
अन्त समाधि थकी तजि प्रान । जाय लयो ईशान सुथान ॥१३९॥
सागर दोय जहाँ तिथि लई । शुभ तैं भयो सुरोत्तम सही ॥
नारीलिंग निद्य छेदियो । चय शिव पासी जिनवर्णयो ॥१४०॥
जहाँ देव सेवा बहु करे । निरमल चरम तहाँ शिर ढरें ॥
और विभव अधिकौ जिहि जान । पूरव पुन्य भये तित आन ॥१४१॥
इह लखि सुगंध दशें व्रतसार । कीजे हो ! भवि शर्म विचार ॥
जे भवि नरनारी व्रत करै । ते संसार समुद्रसौ तरै ॥१४२॥

दोहा—श्रुतसागर ब्रह्मचारि को ले पूरव अनुसार ।

भाषा सार बनावके सुखित खुस्याल अपार ॥१४३॥

परिशिष्ट १

मत्स्यगन्धा-गन्धवतीकथा

(महाभारत १,५७,४७-४६;५४-६८ तथा १,९६ से संकलित)

तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद् वराप्सराः ।
मीनभावमनुप्राप्ता बभूव यमुनाचरी ॥ १ ॥
श्येनपादपरिभ्रष्टं तद्वीर्यमथ वासवम् ।
जग्राह तरसोपेत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी ॥ २ ॥
मासे दशमे प्राप्ते तदा भरतसत्तम ।
उज्जह्नु रुद्ररात्तस्याः स्त्री-पुमांसं च मानुषम् ॥ ३ ॥
या कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्य-सगन्धिनी ।
राजा दत्ताथ दाशाय इयं तव भवत्विति ।
रूपसत्त्वसमायुक्ता सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ४ ॥
सा तु सत्यवती नाम मत्स्यघात्यभिसंश्रयात् ।
आसीन्मत्स्यगन्धैव कंचित्कालं शुचिस्मिता ॥ ५ ॥
शुश्रूषार्थं पितुर्नावं तां तु वाहयतीं जले ।
तीर्थयात्रां परिक्रामन्नपश्यद्वै पराशरः ॥ ६ ॥
अतीवरूपसंपन्नां सिद्धानामपि काङ्क्षिताम् !
दृष्ट्वैव च स तां धीमांश्चकमे चारुदर्शनाम् ।
विद्वांस्तां वासवीं कन्यां कार्यन्वान्मुनिपुंगवः ॥ ७ ॥
साब्रवीत्पश्य भगवन्पारावारे ऋषीन् स्थितान् ।
आवयोर्दृश्यतोरेभिः कथं नु स्यात्समागमः ॥ ८ ॥
एवं तयोक्तो भगवान्नीहारमसृजत्प्रभुः ।
येन देशः स सर्वस्तु तमोभूत इवाभवत् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा सृष्टं तु नीहारं ततस्तं परमर्षिणा ।
विस्मिता चाब्रवीत्कन्या व्रीडिता च मनस्विनी ॥ १० ॥
विद्धि मां भगवन्कन्यां सदा पितुवशानुगाम् ।
त्वत्संयोगाच्च दुष्येत कन्याभावो ममानघ ॥ ११ ॥

कन्यात्वे दृष्टिते चापि कथं शक्ये द्विशोत्सवः ।

गन्तुं गृहं गृहे चाहं घीमन्न स्थातुमुत्सहे ।

एतत्संचिन्त्य भगवान् विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ १२ ॥

एवमुक्तवतीं तां तु प्रीतिमानृषिसत्तमः ।

उवाच मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ १३ ॥

वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि ।

वृथा हि न प्रसादो मे भूतपूर्वः शुचिस्मिते ॥ १४ ॥

एनमुक्ता वरं वद्रे गात्रसौगन्ध्यमुत्तमम् ।

स चास्यै भगवान्प्रादान्मनसः काङ्क्षितं प्रभुः ॥ १५ ॥

ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभावगुणभूषिता ।

जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुतकर्मणा ॥ १६ ॥

तेन गन्धवतीत्येव नामास्याः प्रथितं भुवि ।

तस्यास्तु योजनाद्गन्धमाजिघ्रन्ति नरा भुवि ॥ १७ ॥

ततो योजनगन्धेति तस्या नाम परिश्रुतम् ।

पराशरोऽपि भगवाञ्जगाम स्वं निवेशनम् ॥ १८ ॥

×

×

×

×

स (शन्तनुः) कदाचिद्वनं यातो यमुनामभितो नदीम् ।

महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद् गन्धमुत्तमम् ॥ १९ ॥

तस्य प्रभवमन्विच्छन्विचचार समन्ततः ।

स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम् ।

समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शन्तनुः ॥ २० ॥

स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा ।

स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराज्ञो महीपतिम् ॥ २१ ॥

यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ ।

सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः ॥ २२ ॥

अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपतिः ।

त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव ॥ २३ ॥

नाकामायत तं दातुं वरं दाशाय शन्तनुः ।

शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत ॥ २४ ॥

स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः ।

प्रत्ययाद् हास्तिनपुरं शोकोपहतचेतनः ॥ २५ ॥

ततस्तत्कारणं ज्ञात्वा कृत्स्नं चैवमशेषतः ।

देवव्रतो महाबुद्धिः प्रययावनुचिन्तयन् ।

अभिगम्य दाशराजानं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम् ॥२६॥

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे ।

योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति ॥२७॥

इत्युक्तः पुनरेवाथ तं दाशः प्रत्यभाषत ।

राजमध्ये प्रतिज्ञातमनुरूपं तवैव तत् ॥२८॥

नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन ।

तवापत्यं भवेद्यत्तु तत्र नः संशयो महान् ॥२९॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः ।

प्रत्यजानात्तदा राजन् पितुः प्रियचिकीर्षया ॥३०॥

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम ।

अद्यप्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति ॥३१॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संप्रहृष्टतनूरुहः ।

ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ॥३२॥

ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो देवाः सर्षिगणास्तथा ।

अभ्यवर्षन्त कुसुमैर्भोष्मोज्यमिति चान्नुवन् ॥३३॥

ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम् ।

अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति ॥३४॥

एवमुक्त्वा तु भोष्मस्तां रथमारोप्य भामिनीम् ।

आगम्य हास्तिनपुरं शंतनोः संन्यवेदयत् ॥३५॥

ततो विवाहे निवृत्ते स राजा शंतनुर्नृपः ।

तां कन्यां रूपसंपन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ॥३६॥

परिशिष्ट २

नागश्री-सुकुमालिका-द्रौपदी कथानक

(नायाधम्मकहाओ—अध्ययन १६ से संकलित)

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था । तीसे णं चंपाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभागे नामं उज्जाणे होत्था । तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति । तं जहा—सोमे सोमदत्ते सोमभूई रिउव्वेय-जउव्वेय-सामव्वेय-अथव्वणवेय सुपरिनिट्ठिया । तेसि माहणाणं तओ भारियाओ होत्था । तं जहा—नागसिरी भूयसिरी जक्खसिरी तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ विउले माणुस्सए कामभोए भुंजमाणा विहरंति । तए णं तेसि माहणाणं अन्नया कयाइ एगयओ समुवागयाणं इमेयारूवे मिहोकहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था—एवं खलु देवाणुप्पिया अम्हं इमे विउले धणे सावएजे अलाहि असत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं । तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेउं परिभुंजेमाणाणं विहरित्तए । अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति । अन्नमन्नस्स गिहेसु विपुलं असणं उवक्खडावेति परिभुंजेमाणा विहरंति ।

तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया कयाइ भोयणवारए जाए यावि होत्था । तए णं सा नागसिरी माहणी विपुलं असणं उवक्खडावेइ एगं महं सालइयं तित्तलाउयं बहुसंभारसंजुत्तं नेहावगाढं उवक्खडावेइ एगं बिंदुयं करयलंसि आसाएइ । तं खारं कडुयं अखज्जं विसभूयं जाणित्ता एवं वयासी—धिरत्थु णं मम नागसिरीए अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए जाए णं मए सालइए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उवक्खडिए सुवहुदव्वक्खए नेहक्खए य कए । तं जइ णं ममं जाउयाओ जाणिस्संति तो णं मम खिसिस्संति । तं जावताव ममं जाउयाओ ण जाणंति ताव मम सेयं एयं सालइयं तित्तलाउयं बहुसंभारनेहकयं एगंते गोवित्तए अन्नं सालइयं महुरलाउयं नेहावगाढं उवक्खडित्तए । एवं संपेहेइ तं सालइयं गोवेइ अन्नं सालइयं उवक्खडेइ तेसि माहणाणं ण्हायाणं सुहासणवरगयाणं तं विपुलं असणं परिवेसेइ । तए णं ते माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था । तए णं ताओ माहणीओ ण्हायाओ विभूसियाओ तं विपुलं असणं आहारेंति जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नामं थेरा बहुपरिवारा जेणेव चंपा नयरी जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति अहापडिरूवं विहरंति । परिसा निग्गया धम्मो कहिओ परिसा पडिगया । तए णं तेसि धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नामं अणगारे उराले तेयलेस्से मासंमासेणं खममाणे विहरइ । तए णं से धम्मरुई अणगारे मासखमण-पारगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ बीयाए पोरिसीए उग्गाहेइ धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ चंपाए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमकुलाइं अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे । तए णं सा नागसिरी माहणी धम्मरुई एज्जमाणं पासइ तस्स सालइयस्स तित्त-

कडुयस्स बहुनेहावगाढस्स एडणट्टयाए हट्टतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेइ जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुनेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निसिरइ । तए णं से धम्मरुइ अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्ठु नागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ चंपाए नयरीए मज्झमज्झेणं पडिनिक्खमइ जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छइ धम्मघोसस्स अदूरसामंते अन्नपाणं पडिलेहेइ करयलंसि पडिदंसेइ । तए णं धम्मघोसा थेरा तस्स सालइयस्स नेहावगाढस्स गंधेणं अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ एगं विंदुयं गहाय करयलंसि आसादिति तित्तं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइ अणगारं एवं वयासी—जइ णं तुमं देवाणुप्पिया एयं सालइयं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया इमं आहारेसि । तं गच्छह इमं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिल्ले परिट्टवेहि अन्नं फासुयं एसणिज्जं असणं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि ।

तए णं से धम्मरुइ अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिल्लं पडिलेहेइ ताओ सालइयाओ एगं विंदुयं गहाय थंडिल्लंसि निसिरइ । तए णं तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहुनेहावगाढस्स गंधेणं बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूया जा जहा य णं पिपीलिगा आहारेइ सा णं तहा अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ । तए णं तस्स धम्मासंइस्स अणगारस्स इमेथारूवे अज्झस्थिए—जइ ताव इमस्स सालइयस्स एगम्मि विंदुयम्मि पक्खित्तंमि अणेगाइ पिपीलिगासहस्साइ ववरोविज्जंति तं जइ णं अहं एयं सालइयं थंडिल्लंसि सव्वं निसिरामि तो णं बहूणं णाणाणं बहूकरणं भविस्ससि । तं सेयं खलु मम एयं सालइयं सयमेव आहरित्तए । मम चेव एएणं सरीरणं निज्जाउ त्ति कट्ठु एवं संपेहेइ तं सालइयं तित्तकडुयं विलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणएणं सव्वं सरीरकोट्टगंसि पक्खिवइ । तए णं तस्स धम्मरुइयस्स तं सालइयं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला दुरहियासा । तए णं से धम्मरुइ अणगारे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसकारपरक्कमे आधारणिज्जमिति कट्ठु आयारभंडगं एगंते ठावेइ थंडिल्लं पडिलेहेइ दलभसंधारगं संथारेइ दुरूहइ पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं एवं वयासी—नमोत्थु णं अरहंतानं नमोत्थु णं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं । पुत्थिं पि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंते सव्वे पापाइवाए सव्वे परिग्गहे जावज्जीवाए पच्चक्खाए । इयाणिं पि णं पच्चक्खामि त्ति कट्ठु आलोइय पडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए । तए णं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति समणे निग्गंधे निग्गंधीओ य सहावेति एवं वयासी एवं खलु अज्जो मम अंतेवासी धम्मरुइ नामं अणगारे कालमासे कालं किच्चा उड्डं सव्वट्टसिद्धे महाविमाणे उववन्ने । तं धिरत्थु णं अज्जो नागसिरीए माहणीए अधन्नाए अपुण्णाए जाए णं तहारूवे साहू जीवियाओ ववरोविए । तए णं ते समणा निग्गंधा चंपाए सिंघाडग पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खंति—धिरत्थु णं देवाणुप्पिया नागसिरीए जाए णं तहारूवे साहू जीवियाओ ववरोविए ।

तए णं तेसि समणाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ—धिरत्थु नागसिरीए माहणीए । तए णं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति नागसिरिं माहणिं एवं वयासी—हं भो नागसिरी अपत्थियु-पत्थिए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउदसे धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुण्णाए निंबोलियाए

जाए णं तहारूवे साहू ववरोविए उच्चावयाहिं अक्कोसणाहिं अक्कोसंति उद्धंसंति निवभल्लंति निच्छोडेंति तज्जेति तालेंति सयाओ गिहाओ निच्छुभंति ।

तए णं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नयरीए सिंघाडग-
तिय-चउक्क-चचचर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणेणं हीलज्जमाणी खिसिज्जमाणी निंदिज्ज-
माणी गरहिज्जमाणी तिज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी धुक्कारिज्जमाणी कत्थइ
ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी दंडीखंडनिवसणा खंडमल्लय-खंडधडग-हत्थगया फुट्टहडाहड
सीसा मच्छियचडगरेणं अन्निज्जमाणमग्गा गिहंगिहेणं देहंवलियाए वित्ति कप्पेमाणा विहरइ ।
तए णं तीसे नागसिरीए तव्वभवंसि चेव सोलस रोयायंका पाउवभूया । तं जहा-सासे
कासे जोणिसूले जरे दाहे कुच्छिसूले भगंदरे अरिसए अजीरए दिट्ठिसूले मुट्ठसूले अकारिए
अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कण्डुए कोढे य ।

तए णं सा नागसिरी सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्टुहट्टवसट्टा
कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए नेरइएसु उववन्ना । तओ अणंतरं उवट्टित्ता मच्छेसु
उववन्ना । तत्थ णं सत्थवज्जा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए
उववन्ना । तओणंतरं उवट्टित्ता दोच्चं पि मच्छेसु उववज्जइ । दोच्चं पि अहे सत्तमाए
पुढवीए तओहिं तो तच्चं पि मच्छेसु दोच्चं पि छट्ठीए पुढवीए तओ उरगेसु तओ जाई
इमाई खहयरविहाणाई अदुत्तरं च णं खर-वायर-पुढविकाइयत्ताए तेसु अणेगसय-
सहस्सखुत्तो ।

सा णं तओणंतरं उवट्टित्ता इहेव जंबुहीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए सागर-
दत्तस्स सत्थवाहस्स भदाए भारियाए कुच्छिसि दारियत्ताए पच्चायाया । अम्मापियरो
नामधेज्जं करेति सूमालिय त्ति । सा उम्मुक्कवालभावा रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य
उक्किट्ठा होत्था ।

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइ सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स अदूरसामंतेणं
वीईवयइ सूमालियं दारियं पासइ दारियाए रूवे य जायविम्हए जेणेव सागरदत्तस्स गिहे
तेणेव उवागए सागरदत्तं एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया तव धूयं सूमालियं
मम पुत्तस्स सागरस्स भारियत्ताए वरेमि । तए णं से सागरदत्ते जिणदत्तं एवं वयासी-
एवं खलु देवाणुप्पिया सूमालिया दारिया एगजाया इट्ठा । तं नो खलु अहं इच्छामि
खणमवि विप्पओगं । तं जइ सागरए दारए मम घरजामाउए भवइ तो णं दलयामि । तए
णं जिणदत्ते अन्नया कयाइ सोहणंसि तिहिकरणे अग्गिहोमं करावेइ सागरं दारयं सूमालियाए
दारियाए पाणिं गेण्हावेइ ।

तए णं सागरए सूमालियाए सद्धिं तलमंसि निवज्जइ एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ
जहानामए असिपत्ते । तए णं से सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ
वासघरस्स दारं विहाडेइ मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउवभूए तामेव दिसिं
पडिगए । सागरदत्ते दासचेडीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते मिसिमिसेमाणे
जिणदत्तस्स गिहे उवागच्छइ जिणदत्तं एवं वयासी-किं नं देवाणुप्पिया एवं जुत्तं वा पत्तं वा
कुलाणुरूवं वा ? जिणदत्ते सागरं दारयं एवं वयासी-दुट्ठु णं पुत्ता तुमे कयं सागरदत्तस्स
गिहाओ इहं हव्वमागच्छंतेणं । तं गच्छह णं तुमं पुत्ता एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे ।
तए णं से सागरए एवं वयासी-अवियाइ अहं ताओ गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं
वा जलप्पवायं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा विहाणसं वा गिद्धपडं

वा पव्वज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छेज्जा नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छेज्जा सागरदत्ते कुट्टंतरियाए सागरस्स एयमट्ठं निसामेइ लज्जिए विलीए जिणदत्तस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ सए गिहे उवागच्छइ सुकुमालियं दारियं सदावेइ अंके निवेसेइ एवं वयासी— किं नं तव पुत्ता सागरणं दारणं ? अहं णं तुमं तस्स दाहामि जस्स णं तुमं इट्ठा मणाम भविस्ससि ।

तए णं से सागरदत्ते अन्नया उप्पि आगासतलगंसि सुहनिसणं रायमगं आलो- एमाणे एगं महं दमगपुरिसं पासइ दंडि-खंड-निवसणं खंडमल्लग-खंडवडगहत्थगयं मच्छिया- सहस्सेहिं अन्नज्जमाणमगं । तए णं से कोडुंवि-पुरिसे सदावेइ । ते तं दमगपुरिसं असणेण उवप्पलोभंति तस्स अलंकारियकम्मं करेति विपुलं असणं भोयावेति सागरदत्तस्स समीवे उवणेति । सागरदत्ते सूमालियं दारियं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता तं दमग- पुरिसं एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया मम धूया इट्ठा । एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलयामि भदियाए भदओ भवेज्जासि । दमगपुरिस एयमट्ठं पडिसुणेइ सूमालियाए सद्धि वासधरं अणुपविसइ तलिमंसि निवज्जइ । सूमालियाए एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ जामेव दिसि पाउब्भूए तामेव दिसि पडिगए ।

तए णं सा भदा कल्लं पाउण्णभाए दासचेडिं सदावेइ सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ । से तहेव संभंते उवागच्छइ सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ एवं वयासी-अहो णं तुमं पुत्ता पुरापोराणां कम्माणं पच्चणुब्भवमाणी विहरसि । तं मा णं तुमं पुत्ता ओहयमणसंकप्पा झियाहि । तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं परिभाएमाणी विहराहि । तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ महाणसंसि विपुलं असणं दलमाणी विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ अणुपविट्ठे । सूमालिया पडिलाभेत्ता एवं वयासी—तुम्हे णं अज्जाओ बहुनायाओ । उवलट्ठे णं जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता भवेज्जामि । अज्जाओ तहेव भणंति तहेव साविया जाया तहेव चिन्ता तहेव सागरदत्तस्स आपुच्छइ गोवालियाणं अंतियं पव्वइया अज्जा जाया ।

तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्टी परिवसइ नरवइदिन्नपयारा अम्मापिइनिययनिप्पि- वासा वेसविहारकयनिकेया नाणाविह-अविणयप्पहाणा । तीसे ललियाए गोट्टीए अन्नया कयाइ पंच गोट्टिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धि सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणु- ब्भवमाणा विहरंति । तत्थ णं एगे गोट्टिल्लगपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरेइ एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ एगे पुण्फपूरगं रएइ एगे पाए रएइ एगे चामरुक्खेवं करेइ । सूमालिया अज्जा पासइ । इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो णं इमा इत्थिया पुरापोराणं कम्माणं पच्चणुब्भ- वमाणी विहरइ । तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियम-वंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइ उरालाइ सुखाइ पच्चणुब्भवमाणी विहरिज्जामि त्ति कट्ठु नियाणं करेइ ।

तए णं सा सूमालिया अज्जा सरीरवाउसा जाया । अणोहट्ठिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं हत्थे धोवेइ सीसं धोवेइ मुहं धोवेइ कुसीला संसत्ता वहुणि वासाणि सामण- परियागं पाउणइ कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे देवगणियत्ताए उववन्ना । आउक्खएणं चइत्ता इहेव जंबुहोवे भारहे वासे पंचालेसु जणवणसु कंप्पिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रत्तो चुलणीए देवीए कुच्छिसि दारियत्ताए पच्चायाया । अम्मापियरो इमं एयारूवं नामधेज्जं करेति दोवई त्ति ।

तए णं सा दोवई देवी रायवरकन्ना उम्मुक्कवालभावा उक्किट्टसरीरा जाया । दुवए राया दोवईए रूवे जोवणे य लावणे य जाय-विम्हए दोवई एवं वयासी—अज्जयाए सयंवरं विरयामि । जं णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ ।

तए णं से दुवए राया कोहुंछिण्डुरिसे एवं वयासी—राख्छइ अं तुमं देवाणुप्पिया कंप्पिल्लपुरे नयरे वहिया गंगाए महानईए अदूरसामंते एगं महं सयंवरमंडवं करेह खिण्णामेव वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह । तए णं से वासुदेवपामोक्खाणं रायसहस्साणं आगमणं जाणेत्ता अग्घं च पज्जं च महाय सव्विड्ढीए सक्कारेइ सम्माणेइ । ते जेणेव सया सया आवासा तेणेव उवागच्छंति । तए णं तं दोवई अंतेउरियाओ सव्वालंकारविभूसियं करेंति । अंतेउराओ पडिनिक्खमइ चाउगबटं आसरहं दुरुहइ । धट्टज्जुणे कुमारे दोवईए कन्नाए सारत्थं करेइ सयंवरामंडवे उवागच्छइ । दोवई एगं महं सिरिदामगंडं पाडलमल्लियचंपयगंधद्वणिं सुयंतं परमसुहफासं दरिसिणिज्जं गेण्हइ । बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झमज्जेणं समइच्छमाणी पुव्वकयनियानेणं चोइज्जमाणी जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ । तेणं दसद्ववण्णेणं कुसुमदामेणं आवेढिय-परिवेढिए करेइ । एवं वयासी—एए णं मए पंच पंडवा वरिया । तए णं ताइं वासुदेव-पामोक्खाइं बहूणि रायसहस्साणि महया सहेणं उग्घोसेमाणाइं एवं वयंति—सुवरियं खलु भो दोवईए रायवरकन्नाए त्ति कट्टु सयंवर-मंडवाओ पडिनिक्खमंति ।

परिशिष्ट ३

विद्वज्जुगुप्सायां श्रावकसुताउदाहरणम् ।

हरिभद्र—श्रावकप्रज्ञप्ति टीका (गा० ६३) (लगभग सन् ७५० ई०)

विद्वज्जुगुप्सायां श्रावकसुता-उदाहरणे—एगो सेट्ठो पव्वंते वल्लइ । तस्स धूयाविवाहे कइ वि साहुणा आगया । सा पिउणा भणिया—पुत्तिण पडिलाभेहि साहुणो । सा मंडिय-पसाहिया पडिलाभेइ । साहुण जल्लगंधो तीए आघातो । सा चित्तेइ—अहो अणवज्जो भट्टारगेहिं धम्मो देसिओ । जइ पुण फासुएण पाणीएण ण्हाएज्जा, को दोसो होज्जा ? सा तस्स ट्ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंता कालं काउणं रायगिहे गणियापाढ समुप्पन्ना । गवभगया चेव अरइं जणेइ । गवभसाउणेहि य ण सहइ । जाया समाणी उज्झिया ? सा गंधेण तं वनं वासेइ । सेणिओ तेण पदेसेण निग्गच्छइ सामिणो वंदितं । सो खंधावारो तीए गंधं ण सहइ । रत्ता पुच्छियं किं एयं । तेहिं कहियं दारियाए गंधो । गंतूणं दिट्ठा । भणइ एस एव पढमपुच्छ त्ति गओ । वंदित्ता पुच्छइ । तओ भगवया तीए उट्ठाण-परियावणिया कहिया । तओ राया भणइ—कहिं एसा पच्चणुभविस्सइ सुहं वा दुक्खं वा । सामी भणइ—एएण कालेण वेइयं । इयाणि सा तव चेव भज्जा भविस्सइ अगमहिंसी । अट्ठ संवच्छराणि जाव तुवमं रममाणस्स पट्ठीए सा जं लीलं काहिइ तं जाणिज्जमु । वंदित्ता गओ । सा य अवगयगंधा आहीरेण गहिया संवडिहया जोव्वणत्था जाया । कोमुइचारं मायाए समं आगया । अभओ सेणिओ य पच्छन्ना कोमुइचारं पेच्छंति । तीए दारियाए अंगफासेण सेणिओ अज्झोववन्नो नाममुहिया तीए बंधइ । अभयस्स कहियं नाममुहा हरिया मग्गाहि । तेण मणुस्सा दारेहिं वट्ठेहिं ठविया । एक्केकं माणुस्सं पलोएऊण णीणिज्जइ । सा दारिया दिट्ठा । चोरि त्ति गहिया परिणोया य । अन्नया वस्सोकेण रमंति । राएणं राणियाउ पोत्तेण वाहिति । इयरी पोत्तं दाउं विलग्गा । रत्ता सरियं मुक्का य पव्वइया ।

परिशिष्ट ४

लक्ष्मीमती-कथानक

(जिनसेन-हरिवंशपुराण ६०, २५-४०) (सन् ७८३ ई०)

अत्रैव भरतक्षेत्रे विषये मगधाभिधे ।
 ब्राह्मणी सोमदेवस्य लक्ष्मीग्रामेऽग्रजन्मनः ॥१॥
 आसील्लक्ष्मीमती नाम्ना लक्ष्मीरिव सुलक्षणा ।
 रूपाभिमानतो मूढा पूज्यान्न प्रतिमन्यते ॥२॥
 धृतप्रसाधना वक्त्रं कदाचिच्चित्तहारिणी ।
 नेत्रहारिणि चन्द्राभे पश्यन्ती मणिदर्पणे ॥३॥
 समाधिगुप्तामानं तपसातिकृशीकृतम् ।
 साधुं भिक्षागतं दृष्ट्वा निनिन्द विचिकित्सिता ॥४॥
 मुनेर्निन्दातिपापेन सप्ताहाभ्यन्तरे च सा ।
 किलन्नोदुम्बरकुष्ठेन प्रविश्याग्निमगान्मृतिम् ॥५॥
 सहार्ता सा खरी भूत्वा मृत्वा लवणभारतः ।
 शूकरी मानदोषेण जाता राजगृहे पुरे ॥६॥
 बराकी मारिता मृत्वा गोष्ठेऽजायत कुक्कुरी ।
 गोष्ठागतेन सा दग्धा परुषेण दवाग्निना ॥७॥
 त्रिपदाख्यस्य मण्डूक्यां मण्डूकग्रामवासिनः ।
 मत्स्यबन्धस्य जाता सा दुहिता पूतिगन्धिका ॥८॥
 मात्रा त्यक्ता स्वपापेन पितामह्या प्रवर्धिता ।
 निष्कुटे वटवृक्षस्य जालेनाच्छादयन्मुनिम् ॥९॥
 बोधितावधिनेत्रेण प्रभाते करुणावता ।
 धर्मं समाधिगुप्तेन प्रोक्तपूर्वभवाग्रहीत ॥१०॥
 पुरं सोपारकं याता तत्रार्याः समुपास्य सा ।
 ययौ राजगृहं ताभिः कुर्वाणाचाम्लवर्धनम् ॥११॥
 अत्र सिद्धशिलां वन्द्यां वन्दित्वा च स्थिता सती ।
 कृत्वा नीलगुहायां सा सती सल्लेखनां मृता ॥१२॥
 अच्युतेन्द्रमहादेवो नाम्ना गगनवल्लभा ।
 वल्लभाभवदुत्कृष्टस्त्रीस्थितिस्तत्र देव्यसौ ॥१३॥
 ततोऽवतीर्य भीष्मस्य श्रीमत्यां त्वं सुताऽभवः ।
 नगरे कुण्डिनाभिख्ये रुक्मिणी रुक्मिणः स्वसा ॥१४॥
 कृत्वा चात्र भवे भव्ये प्रव्रज्यां विबुधोत्तमः ।
 च्युत्वा तपश्च कृत्वात्र नैर्मन्यं मोक्षयसे ध्रुवम् ॥१५॥

सुगंधदशमी कथा

चित्र-परिचय

जिनसागर कृत सुगंधदशमी कथा की सचित्र प्रति नागपुर के सेनगण भाण्डार की है। इसका आकार $10\frac{1}{2} \times 6$ इंच है। कागज पुष्ट व देशी पीले से रंग का है। प्रत्येक पृष्ठ पर मराठी पद्य है और चित्र। ग्रंथ के कुल ४६ पृष्ठों में से केवल एक पृष्ठ १६ वां ऐसा है जिस पर चित्र नहीं है। अन्य सभी पृष्ठों पर एक या दो चित्र हैं, जिनकी कुल संख्या ६७ है। समस्त पृष्ठों का अनुमानतः चतुर्थांश लेखन और तीन चतुर्थांश चित्रों से परिपूर्ण है।

ग्रंथ में उसके रचनाकाल अथवा लेखनकाल का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु जिनसागर की अन्य जो रचनायें उपलब्ध हैं उनमें शक संवत् १६४६ से १६६६ तक के उल्लेख पाये गये हैं। कर्ता ने अपने गुरु देवेन्द्रकीर्ति का भी उल्लेख किया है जो निश्चयतः कारंजा के मूलसंघ बालात्कार गण की भट्टारक गद्दी पर शक संवत् १६२१ से १६५१ तक विराजमान थे। चूँकि जिनसागर ने अपनी यह रचना उन्हें ही समर्पित की थी और उस समर्पण का चित्रण भी ग्रंथ के अन्त में पाया जाता है, अतः सिद्ध है कि यह रचना शक १६५१ से पूर्व समाप्त हो चुकी थी। आश्चर्य नहीं जो प्रस्तुत हस्त-लिखित प्रति स्वयं उसके कर्ता जिनसागर के हाथ की ही हो, और चित्र भी उन्हीं के बनाये हुए हों।

चित्रों की शैली भी शक संवत् की १७हवीं शती की है। चित्रों के रंग चटकीले हैं। पुरुषों और स्त्रियों की आकृतियों के अंकन में सावधानी बरती गई है। यद्यपि रेखांकन स्थूल है, तथापि भावों के प्रदर्शन में चित्रकार को पर्याप्त सफलता मिली है। पुरुषों की पगड़ियां छज्जेदार और लम्बे चोगे पैरों के टहनों तक लटकते हुए हैं। ये ईसवी की १८ वीं शती के प्रारंभ की चित्र-शैली के लक्षण हैं। अन्य सभी बातों में भी चित्र उक्त काल की दक्षिण भारतीय मराठा शैली के हैं।

उक्त संपूर्ण पुस्तक उसके लेख व चित्रों सहित यहाँ छाया चित्रों में भी प्रस्तुत की जा रही है। हमारी इच्छा थी कि ये सभी चित्र उसके मौलिक रंगीन रूप में ही छापे जायें। किन्तु रंगीन ब्लाकों के निर्माण व छपाई के अत्यधिक खर्च को देखते हुए यह निश्चय किया गया कि केवल चार चित्र रंगीन रखे जायें जो चित्रों में रंगों के प्रयोग को सूचित करने के लिये पर्याप्त होंगे। इसी कारण प्रस्तुत चित्र-परिचय में रंगों की सूचना पर विशेष ध्यान दिया गया है। चित्रों की अन्य विशेषताएँ उनके साक्षात् दर्शन से अवगत हो ही जावेंगी।

पृ० १ चित्र-१

श्री जिनेन्द्र देव

लाल पृष्ठभूमि के ऊपर श्वेत और पीलेरंग के चित्र, बीच में पद्मासन में तीर्थंकर, और उनके ऊपर तीन छत्र, जिनसे काले फुंदने लटकते दिखाये गये हैं। जिन भगवान् के दाहिनी और बायी ओर दो पार्श्वचर सेवक हैं, जो लम्बे पीले रंग के अंगरखे पहने हैं। उनके सिर पर पगड़ी और कमर में काला पटका बंधा है। एक के अंगरखे पर काली बुंदकियां और दूसरे पर काली धारियां हैं। मूल के अनुसार वे चामरग्राही मुद्रा में हैं। आकार $4\frac{1}{2} \times 5$ इंच।

पार्श्वचर - आचार्य श्री तुलसीदासजी की मूर्ति

पृ० २ चित्र २

शारदा देवी

नीली पृष्ठभूमि पर लाल रंग की साड़ी पहने हंस वाहन पर चतुर्भुजी भगवती शारदा का चित्र है। वे दो हाथों में वीणा लिये हैं, तीसरा हाथ वीणा के तारों पर है, और चौथा ऊपर को उठा है। उनके पीछे चामरग्राहिणी मुद्रा में अनुचरी है, जिसके बायें हाथ में आरती है। सामने लाल रंग का चोगा पहने एक पुरुष उनकी आराधना कर रहा है। आकार 4×5 इंच।

पृ० २ चित्र ३

गुरु द्वारा भक्तों को सुगंध दशमी कथा का उपदेश

एक मंडप के नीचे धर्म गुरु ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। उनके श्वेत शरीर पर हरे रंग का वस्त्र और पीछे पीले रंग का बड़ा तकिया है। वे धर्मोपदेश मुद्रा में हैं। सामने दो भक्त अंजलि मुद्रा में घुटने मोड़कर बैठे हुए उपदेश सुन रहे हैं। एक लाल तथा दूसरा हरा अंगरखा पहने हैं। एक का वर्ण श्वेत तथा दूसरे का काला है। मंडप के ऊपर गहरे बैंगनी रंग में आकाश का चित्रण है। धर्मगुरु का आसन भी इसी रंग का है। आकार 4×5 इंच।

पृ० ३ चित्र ४

वाराणसी के राजा पद्मनाभ और उनकी पत्नी श्रीमती

षट्कोण भवन में मंडप के नीचे राजारानी गद्देदार आसनों पर बैठे हैं। चित्र की पृष्ठभूमि बाहर गहरे नीले और भीतर हलके हरे रंग की है। आसन का रंग बैंगनी है। राजा का अंगरखा हलके बैंगनी रंग का तथा रानी की साड़ी लाल रंग की है। रानी की चामरग्राहिणी पीले रंग के वस्त्र पहने हैं। मंडप के ऊपर कलश है, जिस पर सुनहली बुंदकियां हैं। चित्र के निचले भाग में तीन परिचारिकायें जल भरने के लिये घट लेकर आयी हैं। दाहिनी ओर की पृष्ठभूमि बैंगनी और बाईं ओर की नीली है। दासियों के घाघरे और चोलियों व ओढ़नी में लाल, गहरे हरे और पीले रंगों का प्रयोग हुआ है। आकार 5×5 इंच।

पृ० ४ चित्र ५

राजा-रानी का वन विहार

चित्र की पृष्ठ भूमि नीले रंग की है। ऊपर के भाग में वनवृक्षों का दृश्य है। नीचे दो घोड़ों और दो पहियों से युक्त रथ है। रथ के ऊपर शिखर है। उसके आगे के ईषा भाग (धुरों) पर सारथी बैठा है। सामने एक अंग्रेसर सेवक है। नीचे के भाग में तुरही फूंकता हुआ एक पुरुष लाल धारीदार अंगरखा पहने हुये चल रहा है। चित्र में दाहिनी ओर एक सिंह और एक पुरुष दिखाया गया है। यह वन विहार के दृश्य से संगत है। चित्र में रथ का चौकोर विन्यास उत्तम है, जिसके भीतर के उपस्थ भाग में राजा और रानी अंकित किये गये हैं। आकार ८×५ इंच।

पृ० ५ चित्र ६

राजा-रानी को सुदर्शन मुनि का दर्शन

पृष्ठभूमि का रंग नीला है। मासोपवासी मुनि का शरीर पुष्ट बनाया गया है। उनके पीछे एक वृक्ष है। वे दिगंबर हैं। उन्हें देखकर राजा ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। राजा का धारीदार अंगरखा लाल रंग का है। उस पर हरे रंग का पटका है। रानी की साड़ी गहरे बैंगनी रंग की है। उसके पीछे भी वृक्ष बना है। आकार ३×५ इंच।

पृ० ५ चित्र ७

राजा के आदेश पर रानी घर को लौटी

पृष्ठ भूमि हलके हरे रंग की है। चित्र में दाहिनी ओर राजा और रानी वृक्ष के नीचे खड़े परामर्श कर रहे हैं। दांयी ओर राजा के आदेश से रानी मुनि को आहार कराने के लिये घर को लौट रही है। राजा का अंगरखा हलके बैंगनी रंग का सुनहले बुंदकोंदार तथा पगड़ी लाल है। रानी की साड़ी नीली और ओढ़नी तथा लहंगे के सामने का पटका लाल है। नीचे की भूमि गहरे बैंगनी रंग की है। आकार ४×५ इंच।

पृ० ६ चित्र ८

मुनि की पड़गाहना और कड़वी तूबी का आहारदान

हलके हरे रंग की पृष्ठभूमि में मंडप के नीचे मुनि विराजमान हैं। सामने राज-पुरुष हाथ जोड़े खड़ा है। मंदिर की गुम्मत लाल रंग की है। नीचे बैंगनी रंग का वितान है। मुनि का शरीर श्वेत वर्ण का है। उनके बांये हाथ में पीछी है, और सामने कमंडल रखा है। पीछे गोल (गेंडुवा) तकिया है। राजा का अंगरखा गहरे हरे रंग का है। चित्र के निचले भाग में रानी एक ओर कड़वी तूबी लिये हुये है, और उसके सामने काटने के लिये औजार रखा है, और दूसरी ओर रानी मुनि को उसका आहार करा रही है। चित्र की पृष्ठ भूमि लाल रंग की है, और ऊपर बैंगनी रंग का वितान है। आकार ८×५ इंच।

पृ० ७ चित्र ६

मुनि को पीड़ा और वमन

पृष्ठ भूमि पीले रंग की है । मुनि खड़ी हुई मुद्रा में हैं, और पीछे एक लघु मुनि पीछी लिये खड़े हैं, समाचार सुनकर बहुत से भक्त आये हैं, जिनमें चार दिखाये गये हैं । उनमें दो के अंगरखे हरे, एक का हलका बैंगनी तथा एक का लाल है । ऊपर दांयी ओर जिनेन्द्र की वेदिका है, और नीचे बांयी ओर मंदिर में जाने का प्रवेश द्वार है । आकार $५\frac{३}{४} \times ५$ इंच ।

पृ० ८ चित्र १०

राजा का हाथ जोड़कर मुनि से क्षमा-याचना

नीले रंग की पृष्ठ भूमि में उद्यान का दृश्य । एक ओर मुनि, बीच में राजा और उन के पीछे बाघ का अंकन है । मुनि का अंग गहरा बैंगनी, राजा के अंगरखे का लाल और बाघ का पीला है । आकार $५ \times ३\frac{३}{४}$ इंच ।

पृ० ८, चित्र ११

राजा का क्रोध और रानी का सौभाग्य-हरण

हलके हरे रंग की पृष्ठभूमि पर गहरे बैंगनी रंग से महल का प्रदर्शन । रानी बैठी हुई और राजा खड़े हैं । राजा कर्कशा रानी का सौभाग्य लेकर उसे निष्कासित कर रहे हैं । रानी की साड़ी नीली और राजा का अंगरखा पीले रंग का तथा पटका नीला है । राजा के पीछे मंत्री और उसके पीछे एक चमर धोरने वाली अनुचर है । उसके शरीर का रंग नीला व जांघिया लाल धारीदार है । आकार $५ \times ३\frac{३}{४}$ इंच ।

पृ० ९ चित्र १२

रानी मरकर भेंस हुई

चित्र की पृष्ठ भूमि हलके हरे रंग की है । मंडप की पृष्ठभूमि में गहरा बैंगनी रंग है । पापिनी रानी मन में सोच रही है । उसके पीछे मंडप से बाहर एक भेंस दिखाई गई है । भेंस का रंग गहरा काला है । आकार ५×४ इंच ।

पृ० ९ चित्र १३

भेंस कीचड़ में फंसी

चित्र की पृष्ठभूमि नीले रंग की है । उसके ऊपर कीचड़ का तालाब गहरे बैंगनी रंग का, और उसमें फंसी हुई भेंस काले रंग की है । आकार ५×२ इंच ।

पृ० १० चित्र १४

रानी ने मरकर घड़ियाल का जन्म लिया

नीले रंग की पृष्ठभूमि में सरोवर और उसके पीछे बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि में उद्यान दिखाया गया है। सरोवर में मछली, कछुआ और घड़ियाल दिखाये गये हैं। आकार $५\frac{३}{४} \times २\frac{३}{४}$ इंच।

पृष्ठ १० चित्र १५

रानी ने मरकर सांभर की पापयोनि में जन्म पाया

नीले रंग की पृष्ठभूमि पर उद्यान का चित्रण, जिसमें पांच वृक्ष हैं। बीच के वृक्ष का रंग हलका हरा और शेष का गहरा हरा और पीला है। सांभर का रंग भी पीला है। आकार $५\frac{३}{४} \times ३$ इंच।

पृ० ११ चित्र १६

रानी ने दुर्गन्धा चाण्डाल-कन्या का जन्म पाया

हलकी नीले रंग की पृष्ठभूमि पर दो उद्यान के वृक्ष हैं। बीच में एक भीमकाय चाण्डाल कन्या है, जो हाथ में कुल्हाड़ी लिये एक व्याघ्र पर प्रहार कर रही है। उसका शरीर गहरे बैंगनी रंग का है। वह लाल रंग की चोली और पीले रंग का जांघिया पहने है। व्याघ्र का रंग पीला और धारियां लाल और बंदके काले हैं। आकार $६ \times ४\frac{३}{४}$ इंच।

पृ० ११ चित्र १७

दुर्गन्धा के विषय में गुरु से शिष्य का प्रश्न

नीले रंग की पृष्ठभूमि पर दो वृक्षों वाले उद्यान का चित्रण है। दांयी ओर श्रुतसागर मुनि बैठे हैं। सामने उनका शिष्य खड़ा है, और पापिनी चाण्डाल कन्या के विषय में पूछ रहा है। गुरु और शिष्य दोनों का शरीर बैंगनी रंग का है। गुरु का आसन लाल रंग का है। आकार ६×४ इंच।

पृ० १२ चित्र १८

चाण्डाल कन्या का मुनि-दर्शन और धार्मिक भाव

नीले रंग की पृष्ठभूमि में एक उद्यान है। वृक्ष के नीचे मुनि और उनके शिष्य खड़े हैं। एक ओर चाण्डाल कन्या हाथ जोड़कर मुनि की वंदना कर रही है। गुरु-शिष्य का शरीर श्वेत रंग का और चाण्डाल कन्या का बैंगनी रंग का है। चाण्डाल कन्या के पीछे जंगल से लाई हुई लकड़ियों का गट्ठर है। मुनि ने चाण्डाल कन्या के पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहा और उसने व्रत धारण किये। आकार $७\frac{३}{४} \times ६$ इंच।

पृ० १३ चित्र १६

उज्जयिनी में सुदर्शन मुनि का उपदेश

नीले रंग की पृष्ठभूमि पर उद्यान में एक ओर लाल वस्त्रों से आच्छादित गुरु बैठे हैं। उनके सम्मुख चार भक्त हाथ उठाये व जोड़े उनकी वन्दना कर रहे हैं। भक्तों में दो के अंगरखे लाल, एक का हरा तथा एक का अधोवस्त्र हरे रंग का है। चारों की पगड़ियों के रंग व रचना भिन्न है। आकार ६×५ इंच।

पृ० १४ चित्र २०

रानी का मुनिदर्शन, पूर्व-भव स्मरण और मूर्च्छन तथा राजा का मुनि से प्रश्न

नीले और बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि पर उद्यान में एक ओर सुदर्शन मुनि बैठे हैं। उनके दर्शन से रानी को अपने पूर्व भवों का स्मरण हुआ और वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गयी। मुनि के सामने राजा अपने दो अनुचरों के साथ उसके भवान्तरों के विषय में पूछ रहे हैं। मुनि का रंग श्वेत और राजा के अंगरखे व पगड़ी का रंग लाल है। उसके अनुचर हलके बैंगनी और नीले रंग के वस्त्र पहने हैं। तीनों की पगड़ियां लाल हैं। नीचे दांयी ओर के कोने में मोर-मोरनी के चित्र हैं। राजा के पूछने पर मुनि ने दिव्य वाणी से रानी के पूर्व जन्मों की क्रमिक कहानी बतायी, जिसे सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ, और राजा ने उस पाप से मुक्ति का उपाय पूछा। आकार ६½×५½ इंच।

पृ० १५ चित्र २१

विद्याधर का आगमन

नीले रंग की पृष्ठभूमि पर विमान-स्थित विद्याधर। उसके सामने आकाश में चन्द्रकला लिखी हुई है। नीचे कई वृक्षों से भरा उद्यान है। उसमें बैठे हुये मुनि, राजा मंत्री और रानी को सुगंधदशमी का उपदेश दे रहे हैं। राजा का वेश हरे रंग का, मंत्री का लाल रंग का और रानी का पीले रंग का है, जिस पर काली रेखाओं से चौखाना बनाया गया है। आकार ८½×६ इंच।

पृ० १७ चित्र २२

राजा-रानी को सेठ जिनदास और सेठानी का अभिवादन

राजा-रानी ऊंचे आसन पर बैठे हैं, और सामने से जिनदास और उनकी पत्नी अभिवादन कर रहे हैं। आसन से नीचे धरातल में एक पलाना घोड़ा बना है। चित्र में राजा का महल और मंडप दिखाये गये हैं। पृष्ठ भूमि का रंग गहरा बैंगनी व निचले भाग का पीला है। राजा का अंगरखा हलके बैंगनी रंग का, रानी का घाघरा हरा काली धारियों वाला और चोली पीली लाल धारियों वाली है। सेठ का अंगरखा लाल, पीले बुंदकों सहित व सेठानी का घाघरा लाल व हरी चोली तथा ओढ़नी बैंगनी रंग की है।

राजा के तकिये का रंग हरा और रानी के तकिये का हलका बेंगनी है । पीली पृष्ठभूमि पर घोड़े का रंग नीला है व पलाण बेंगनी धारियों से बनाया गया है, जिसकी गोठ में पीले रंग के बुंदके हैं । आकार ८×६ इंच ।

पृ० १८ चित्र २३

सेठ जिनदास और उनकी द्वितीय पत्नी रूपिणी

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर एक ओर सेठ जिनदास बैठे हैं । उनका अंगरखा हरे रंग का धारीदार और फैंटा लाल रंग का है । उनके पीछे उनकी दूसरी पत्नी का चित्र है, जो घर के भीतर बैठी है । सेठानी का धाघरा लाल और चोली हरी व ओढ़नी बेंगनी रंग की है । बाहर उद्यान में एक हरा वृक्ष है, जिसके कुछ पत्ते पीले पड़ गये हैं व पृष्ठ भूमि का रंग गहरा बेंगनी है । आकार $७ \times ५\frac{१}{२}$ इंच ।

पृ० १९ चित्र २४

पार्श्विक - आचार्य श्री सुमित्रलाल जी कुमार

सेठ जिनदास का मित्रों से परामर्श

हलके हरे और पीले रंग की पृष्ठ भूमि में बैठे हुए सेठ जिनदास अपने दो मित्रों से परामर्श कर रहे हैं । सेठ जी का अंगरखा गहरे बेंगनी रंग का है । सामने दो पुरुषों में से एक का नीले रंग का व दूसरे का बेंगनी रंग का है । तीनों व्यक्ति कमर में पटका बांधे हैं । आकार $५ \times ३\frac{३}{४}$ इंच ।

पृ० १९ चित्र २५

कन्या-जन्म

हलके हरे और पीले रंग की पृष्ठ भूमि में सेठ की पत्नी के कन्या-जन्म का दृश्य है । सेठानी दाहिनी ओर चौकी पर बैठी है । गोद में कन्या है । सामने पूर्ण घट लिये परिचारिका खड़ी है । वह बेंगनी रंग का सर्वांग चोगा पहने है । ओढ़नी का रंग लाल है, जिस पर काले बुंदके हैं । सेठानी का धाघरा हरे रंग का और चोली बेंगनी रंग की, तथा ओढ़नी लाल रंग की है । कन्या का मुख श्याम वर्ण है, और उसका शेष शरीर लाल वस्त्र से आच्छादित है । आकार ५×४ इंच ।

पृ० २० चित्र २६

रूपिणी का अपनी कन्या से पक्षपात

पृष्ठभूमि का रंग गहरा बेंगनी है । दाहिनी ओर जिनदास गेहुवा तकिया लगाये बैठा है । उसका जामा और पगड़ी दोनों नीले रंग के और दुपट्टा बेंगनी रंग का है । उनकी पत्नी कन्या से द्वेष करती है, और अपनी पुत्री को चाव से सब कुछ लेती-देती है । सेठ यह सब देखकर खेद-खिन्न है । इस द्वितीय पुत्री का वर्ण काला और वस्त्र हरा है । रूपिणी हलका बेंगनी और पीला धाघरा और लाल चोली पहने है । उसका वर्ण श्वेत है । आकार $५ \times ३\frac{३}{४}$ इंच ।

पृ० २० चित्र २७

सेठ जिनदास सुगंधा साहित अलग रहने लगा

हरी पृष्ठ भूमि में एक ओर जिनदास सेठ, दूसरी ओर सुगंधा बैठी है । उसकी पृष्ठ भूमि बैंगनी है । सुगंधा अलग अन्न-पान बनाने लगी, जिससे उनके पिता को सुख हुआ । आकार ५×३ इंच ।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुबोधिसागर जी महाराज

पृ० २१ चित्र २८

रूपिणी का कोप

चित्र के आधे भाग की पृष्ठ भूमि नीली और आधे भाग की बैंगनी है । बीच में जिनदास सेठ पीला वस्त्र पहने खेद-खिन्न खड़े हैं । उनके पीछे उनकी दूसरी पुत्री लाल चोली और पीला धाघरा पहने खड़ी है । दांयी ओर रूपिणी क्रोध की मुद्रा में खड़ी हुई वस्त्र की भोली में कुछ लिये है । उसका धाघरा लाल और ओढ़नी बैंगनी रंग की है । आकार ५×३ इंच ।

पृ० २१ चित्र २९

राजा की सेठ जिनदास को द्वीपान्तर जाने की आज्ञा

हलकी बैंगनी पृष्ठ भूमि पर एक ओर राजा बैठे हैं । उनका तकिया लाल और वेश नीला है । उनके सामने हाथ जोड़े सेठ बैठा है, जिसे वे द्वीपान्तर जाने का आदेश दे रहे हैं । सेठ की पगड़ी और अंगरखा धारीदार पीले रंग के हैं । आकार ५×३ इंच ।

पृ० २२ चित्र ३०

सेठ जिनदास द्वारा रूपिणी को अपने विदेश-गमन की सूचना

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर रूपिणी लाल रंग के गेडुए तकिया का सहारा लेकर बैठी है । उसकी चोली लाल रंग की, लंहगा धारीदार हरे रंग का और सितारेदार ओढ़नी बैंगनी रंग की है । सेठ का तकिया और पगड़ी लाल हैं, और अंगरखा पीले रंग का है, जिस पर लाल बूटी की छपाई है । आकार ५×३ इंच ।

पृ० २२ चित्र ३१

सेठ जिनदास का प्रस्थान

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर जिनदास और उसकी पत्नी । सेठ पीला अंगरखा पहने द्वीपान्तर को जा रहे हैं । पीछे अंजलि मुद्रा में खड़ी उनकी पत्नी उन्हें विदा दे रही है । स्त्री की ओढ़नी बैंगनी रंग की तथा धाघरा गहरे हरे रंग का है । चोली और सामने का लटकता फड़का लाल रंग का है । आकार ५×३ इंच ।

पृ० २३ चित्र ३२,

वर का कन्या-दर्शन

गुणपाल नामक कुमार विवाह की दृष्टि से कन्या को देखने के लिये आया । रूपिणी ने श्यामा को आगे तथा सुगंधा को पीछे करके गुणपाल को दिखलाया । चित्र में नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर महल का अंकन है । उसमें नीली पृष्ठभूमि में रूपिणी खड़ी है । उसके सामने गुणपाल की ओर मुंह करके सुगंधा तथा श्यामा बैठी हैं । दांयी ओर नीली पृष्ठ भूमि में गुणपाल बैठा है । गुणपाल की पगड़ी और धारीदार अंगरखा लाल रंग का है, तथा हरे रंग का पटका कमर में बाँधे है । इसके आसन का रंग भी गहरा हरा है । रूपिणी का लहंगा लाल रंग का है, जिस पर हरे रंग का फड़का है । कन्याओं में सुगंधा के वस्त्र लाल तथा श्यामा के गहरे हरे हैं । आकार ६×६ इंच ।

पृ० २४ चित्र ३३

विवाह मंडप, रूपिणी द्वारा सुगंधा का अपनयन

नीले रंग की पृष्ठभूमि में विवाह मंडप है । दाहिनी ओर रूपिणी सुगंधा का हाथ पकड़कर उसे घर से बाहर ले जा रही है । रूपिणी गहरे बैंगनी रंग की बुंदकीदार ओढ़नी, धारीदार, पीली चोली तथा हरे रंग का धाघरा पहने है, और उसके ऊपर हलके बैंगनी रंग का फड़का है । सुगंधा पीले रंग का धाघरा और लाल चोली पहने है । चित्र के निचले भाग में गहरे रंग के दो गेडुवे तकिये रखे हैं । उन्हीं के पास में पीले रंग का एक चंगेरी सा कुंड रखा है । आकार ८×६ इंच ।

पृ० २५ चित्र ३४

रूपिणी ने सुगंधा को श्मशान में जा बैठाया

नीले रंग की पृष्ठभूमि में वैवाहिक आयोजन का दृश्य । चारों दिशाओं में चार दीपाधारों पर दीप प्रज्वलित हैं, तथा चारों दिशाओं में चार ध्वजायें लगायी गयी हैं । बीच में सजी हुई सुगंधा बैठी है । उसकी धारीदार गहरे रंग की चोली और लहंगे पर बुंदकियाँ हैं । वह बैंगनी रंग की ओढ़नी ओढ़े है । सामने उसकी माता रूपिणी खड़ी है । कपट-हृदय रूपिणी ने सुगंधा को इस रात्रि में श्मशान में रखा । आकार ६×५ ३/४ इंच ।

पृष्ठ २५ चित्र ३५

रूपिणी का कपट शोक

बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि में रूपिणी अन्य दो महिलाओं के सम्मुख झूठमूठ रो रही है कि सुगंधा विवाह के समय पता नहीं कहाँ चली गयी । रूपिणी सिर पर हाथ लगाये खेद प्रदर्शित कर रही है, तथा सामने बैठी दो स्त्रियाँ उसे समझा रही हैं । तीनों सुसज्जित स्त्रियाँ धारीदार लाल वस्त्र पहने हैं, और गहरे बैंगनी रंग की ओढ़नी ओढ़े हैं । आकार ६×२ ३/४ इंच ।

पृष्ठ २६ चित्र ३६

महाजन की सहानुभूति

सुगंधा का समाचार सुनकर संबंधी खिन्न हुए । चित्र की पृष्ठभूमि नीले रंग की है । एक ओर पीली पृष्ठभूमि में लाल रंग की धारीदार चोली और घाघरा पहने हरे रंग के गेडए तकिये के सहारे रूपिणी बैठी है । सामने गहरे हरे रंग की पगड़ी और बूंदकीदार चोगा पहने एक पुरुष खड़ा हुआ खेद व्यक्त कर रहा है । आकार ७×३ इंच ।

पृ० २७ चित्र ३७

राजा-रानी

नीले रंग की पृष्ठभूमि में ऊपर आधे चित्र में राजा-रानी बैठे हैं । निचले आधे में महल के दो द्वार दिखाये गये हैं । राजा गहरे रंग का लम्बा चोगा पहने है, तथा सिर पर लाल पगड़ी है । पीछे हरा गेडुआ तकिया रखा है । रानी लाल रंग के धारीदार वस्त्र पहने है, तथा बूंदकीदार बैंगनी ओढ़नी ओढ़े हैं । राजा ने अपने महल पर लगे शम्शान में सुगंधा को देखा और वह चकित रह गया । आकार ७×३ इंच ।

पृ० २८ चित्र ३८

शमशान में राजा की सुगंधा से भेंट

नीले रंग की पृष्ठभूमि में सुगंधा बैठी है, तथा सामने एक हाथ में शस्त्र लिये राजा प्रश्न-मुद्रा में खड़ा है । ऊपर आकाश में चंद्रमा खिला है । राजा का धारीदार चोगा और पगड़ी बैंगनी रंग के हैं, तथा गले में छापेदार दुपट्टा और कमर में गहरे हरे रंग का पटका बांधे हैं । सुगंधा लाल रंग की धारीदार चोली और अधोवस्त्र पहने है, तथा बैंगनी रंग की ओढ़नी ओढ़े है । आकार ७½×५½ इंच ।

पृ० २९ चित्र ३९

सुगंधा का स्वयंवरण

राजा ने सुगंधा से उसके पिता के द्वीपान्तर जाने तथा विमाता रूपिणी द्वारा वर की प्रतीक्षा में शमशान में आने का समाचार सुनकर स्वयंवरण करना स्वीकार कर लिया । गहरे बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि में ऊंचे पीले धारीदार मूढ़े पर सुगंधा बैठी है, और सामने स्वीकृति रूप हस्त-स्पर्श करता हुआ राजा खड़ा है । राजा हल्के बैंगनी रंग का चोगा पहने है, तथा दाहिने हाथ में शस्त्र लिये है । सुगंधा के वस्त्र लाल रंग के और ओढ़नी गहरे बैंगनी रंग की है, जिस पर सफेद बूंदकियां हैं । आकार ६×५½ इंच ।

पृ० ३० चित्र ४०

राजा और सुगंधा पति-पत्नी के रूप में

राजा ने सुगंधा के साथ विवाह कर लिया । नीली पृष्ठभूमि में राजा और सुगंधा हैं । राजा ने सुगंधा को गोद में बिठाकर गले में हाथ डाल रखा है । राजा लाल रंग का धारीदार चोगा पहने है । सुगंधा के वस्त्र पीले रंग के हैं, और वह एक बहुत भीनी ओढ़नी ओढ़े है । दोनों ओर दो ध्वजार्य हैं । आकार ५३ × ४३ इंच ।

पृ० ३० चित्र ४१

राजा का सुगंधा को आत्म-परिचय

सुगंधा के यह पूछने पर कि वह कौन है, राजा ने अपने को ग्वाला (महिषीपाल) बताया । नीली पृष्ठभूमि में दो गेडुए तकियों के सहारे राजा और सुगंधा आमने-सामने बैठे हैं । दोनों के धारीदार वस्त्र लाल रंग के हैं, तथा राजा गहरे हरे रंग का पटका कमर में बांधे है । सुगंधा गहरे बैंगनी रंग की बुंदकीदार ओढ़नी ओढ़े है । आकार ५३ × ३३ इंच ।

पृ० ३१ चित्र ४२

सुगंधा का राजा को रोकना व राजा का आश्वासन

नीले रंग की पृष्ठभूमि में सुगंधा तथा राजा बैठे हैं । राजा गहरे बैंगनी रंग का चोगा पहने है, जिस पर पीले रंग का छापा है । सुगंधा के वस्त्र गहरे हरे रंग के हैं, तथा बैंगनी रंग की छापेदार भीनी ओढ़नी है । घाघरे के ऊपर लाल रंग का फड़का है । आकार ५ × ३३ इंच ।

पृ० ३१ चित्र ४३

राजा की बिदाई

नीली पृष्ठभूमि में सुगंधा और राजा खड़े हैं । उसका दाहिना हाथ सुगंधा के दाहिने हाथ पर है । राजा सुगंधा को पुनः आने का आश्वासन देता है । राजा का धारीदार अंगरखा लाल रंग का है, तथा कमर के पटके और शिरो-बन्धन का रंग गहरा हरा है । सुगंधा का घाघरा लाल, सामने का फड़का गहरा हरा तथा बुंदकीदार ओढ़नी बैंगनी रंग की है । आकार ५ × ३३ इंच ।

पृ० ३२ चित्र ४४

राजा द्वारा सुगंधा का अलंकरण ।

नीली पृष्ठभूमि में राजा सुगंधा को आभूषण पहना रहा है । राजा का अंगरखा गहरे हरे रंग का है । उसके पीछे एक गेडुआ तकिया रखा है । सुगंधा पीले रंग के वस्त्र पहने है, जिनपर लाल धारियां हैं । आकार ५३ × ३३ इंच ।

पृ० ३२ चित्र ४५

सेठ और सेठानी की सुगंधा के अलंकारों के विषय में चिंता ।

सेठ विदेश यात्रा से लौटकर सुगंधा के पास आभूषण देखकर व्यग्र हुआ। नीली पृष्ठभूमि में सुगंधा हाथ जोड़े खड़ी है। सामने बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि में सेठ जिनदास और रूपिणी गेडुए तकिए के सहारे बैठे हैं। जिनदास का अधोवस्त्र लाल रंग का धारीदार तथा रूपिणी के वस्त्र गहरे हरे रंग के हैं। सुगंधा लाल रंग की चोली और लंहगा पहने हैं व पीले रंग का फटका है। वह बैंगनी रंग की बुंदकीदार ओढ़नी ओढ़े हैं। आकार ५½ × ४ इंच।

पृ० ३३ चित्र ४६

अलंकारों पर राजा की मुद्रा देख उनकी चिंता बढ़ी ।

हरे रंग की पृष्ठभूमि में सेठ जिनदास तथा रूपिणी बड़े-बड़े गेडुए तकियों के सहारे बैठे हैं, और दांयी ओर सुगंधा खड़ी है। सेठ जिनदास रूपिणी से कह रहा है कि इन आभूषणों पर राजा की मुद्रा है, पता नहीं किस चोर ने सुगंधा को लाकर दिये हैं। सेठ का धारीदार अंगरखा और पगड़ी तथा सुगंधा के वस्त्र लाल रंग के हैं। रूपिणी के वस्त्र बैंगनी रंग के हैं। आकार ५½ × ३ इंच।

पृ० ३३ चित्र ४७

सेठ जिनदास ने जाकर राजा को यह वृत्तान्त सुनाया ।

हरे रंग की पृष्ठभूमि पर एक ओर राज-प्रासाद में गेडुए तकिए के सहारे राजा बैठा है तथा सामने हाथ जोड़े सेठ जिनदास खड़ा है। दोनों के अंगरखे धारीदार तथा बैंगनी रंग के हैं। सेठ की पगड़ी लाल रंग की है। आकार ५½ × ४½ इंच।

पृ० ३४ चित्र ४८

राजा द्वारा भोज के आयोजन का सुझाव और सेठ की प्रसन्नता

नीली पृष्ठभूमि में अंजलिमुद्रा में सेठ जिनदास खड़ा है, तथा सामने भवन में बैंगनी पृष्ठभूमि में गेडुए तकिये के सहारे आदेश मुद्रा में राजा बैठा है। राजा का अंगरखा धारीदार तथा लाल रंग का है, तथा सेठ का बैंगनी रंग का। आकार ६ × ४ इंच।

पृ० ३४ चित्र ४९

भोज का आयोजन

हरे रंग की पृष्ठभूमि में भोज के लिये अतिथि आये हैं। बांयी ओर सेठ जिनदास हाथ जोड़े खड़ा है, और सामने चार पुरुष बैठे हैं। इनमें दो के वस्त्र लाल और पगड़ी नीले रंग की है, तथा दो के वस्त्र पीले रंग के हैं।

पृ० ३५ चित्र ५०

भोज में राजा भी शामिल हुआ

नीले रंग की पृष्ठभूमि में चित्र के ऊपरी अर्धभाग में बायीं ओर भवन में सुगंधा गेडुवे तकिये के सहारे बैठी है, तथा दाहिनी ओर राजा हाथ में जल भरा घट लिये खड़ा है। सुगंधा ने कहा कि वह केवल पैर धोने पर अपने वर को पहचान सकती है। आकार ५३ × ४३ इंच।

संस्कृत - आचार्य श्री सुविद्यितामर जी महाराज

पृ० ३५ चित्र ५१

सेठ जिनदास द्वारा अभ्यागतों का स्वागत

पृष्ठभूमि बैंगनी रंग की है। एक ओर जिनदास हाथ जोड़े खड़ा है। सामने तीन व्यक्ति आश्चर्य मुद्रा में बैठे हैं। जिनदास हलके बैंगनी रंग का अंगरखा पहने है। एक पुरुष का चोगा लाल रंग का है जिस पर धारी और बुंदकियां हैं, एक का बैंगनी रंग का। तथा एक की धोती लाल है। सबकी पगड़ियां लाल रंग की हैं। आकार ५३ × ३३ इंच।

पृ० ३६ चित्र ५२

चरणस्पर्श से पति की पहचान संबंधी योजना से सभी को आश्चर्य

बैंगनी रंग की पृष्ठ भूमि पर दो पुरुष तथा दो स्त्रियां आमने-सामने आश्चर्य मुद्रा में खड़ी हैं। एक पुरुष गहरे, तथा दूसरा हलके हरे रंग का अंगरखा पहने हैं। दोनों की पगड़ियां लाल रंग की हैं। एक स्त्री गहरे हरे रंग की चोली और लाल रंग का लंहगा पहने है, जिस पर सामने हरा पटका है। दूसरी लाल रंग की चोली और गहरे हरे रंग का धाघरा पहने है, जिस पर लाल पटका है। आकार ५३ × ३३ इंच।

पृ० ३६ चित्र ५३

पैर धोने पर पति की पहिचान

पृष्ठभूमि नीली रंग की है। बायीं ओर गेडुए तकिये के सहारे सुगंधा बैठी है। इसकी चोली और धाघरा धारीदार लाल रंग का है, तथा बैंगनी रंग की छापेदार भीनी ओढ़नी है। सामने चौकी पर राजा खड़ा है। उसके पैर धोने के लिये जल भरा टोंटीदार कलश रखा है। राजा की पगड़ी और धारीदार अंगरखा लाल रंग का है, जिस पर सफेद बुंदकियां हैं। राजा के पीछे एक चामरग्राहणी परिचारिका खड़ी है। इसकी चोली और धाघरा पीले रंग के हैं, तथा ओढ़नी और पटका हलके हरे रंग के हैं। आकार ५३ × ५ इंच।

पृ० ३७ चित्र ५४

राजा द्वारा सुगंधा के पाणिग्रहण की स्वीकृति

सेठ के महल में पीली पृष्ठभूमि में राजा गेडुए तकिये के सहारे बैठा है। अधोवस्त्र हरा धारीदार है, और पटका बैंगनी रंग का है। सामने सुगंधा खड़ी है।

उसका धाघरा हरा, धारीदार, चोली और पटका लाल, व ओढ़नी भीनी लाल धारियों की है। अन्तःपुर में उसकी विमाता रूपिणी बैठी है, जो इस वृत्तान्त से प्रसन्न नहीं है। उसके वस्त्र लाल व ओढ़नी बैंगनी रंग की है, व पृष्ठभूमि हलके बैंगनी रंग की है। आकार $६\frac{१}{२} \times ५$ इंच।

पृ० ३७ चित्र ५५

सुगंधा के सौभाग्य की स्त्री-समाज में प्रशंसा

नीली पृष्ठभूमि में चार स्त्रियां परस्पर वार्तालाप कर रही हैं। एक का अधोवस्त्र हरा धारीदार और चोली बैंगनी रंग की है। दूसरी और चौथी का अधोवस्त्र गहरे बैंगनी रंग का है, और चोली हलकी बैंगनी। तीसरी का अधोवस्त्र लाल, चोली हरी व ओढ़नी बैंगनी बुंदकीदार है। आकार $६ \times २\frac{१}{२}$ इंच।

पृ० ३८ चित्र ५६

सुगंधा का शृंगार

सुगंधा वस्त्राभूषणों से अलंकृत की जा रही है। पृष्ठभूमि गहरे बैंगनी रंग की है। बैठी हुई सुगंधा तथा उसके पीछे खड़ी परिचारिका के वस्त्र लाल धारीदार और ओढ़नी बैंगनी रंग की बुंदकियोंदार है, उनके माथे पर कुंकुम की रेखा है। आकार ५×३ इंच।

पृ० ३८ चित्र ५७

सुगंधा का वैभव

पीली पृष्ठभूमि में सुगंधा कमलाकार आसन पर एक बड़े हरे गेडुए तकिये के सहारे बैठी है। बाजू में एक और लाल तकिया लगा है। उसके वस्त्र हरे रंग के धारीदार और ओढ़नी बैंगनी रंग की बुंदकियोंदार है, जिसके ऊपर पुनः भीनी ओढ़नी है। उसका दाहिना हाथ आदेश मुद्रा में है। सामने परिचारक अभिवादन मुद्रा में खड़ा है। वस्त्र लाल धारीदार और पटका गहरा हरा है। पीछे परिचारिका घमर ढोल रही है। वह लाल अन्तर्वासक के ऊपर गहरे हरे रंग का चोगा पहने है। आकार $५\frac{१}{२} \times ४$ इंच।

पृ० ३९ चित्र ५८

सुगंधा का राजा के साथ विवाह

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर बीच में ग्रामने-सामने मुख किए विवाह वेश में व पाणिग्रहण मुद्रा में सुगंधा और राजा खड़े हैं। सुगंधा के पीछे दो तथा राजा के पीछे तीन स्त्रियां विवाह आयोजन में शामिल होने के लिये आयीं खड़ी हैं। सुगंधा और राजा के वस्त्र लाल रंग के हैं। सुगंधा हरे रंग की भीनी ओढ़नी ओढ़े है। चित्र में नीचे एक स्त्री और एक पुरुष नगाड़े बजा रहे हैं। आकार $५ \times ५\frac{१}{२}$ इंच।

पृ० ४० चित्र ५६

विमाता के अपराधों के लिये सुगंधा द्वारा राजा से क्षमा-याचना

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर दो प्रासादों का अंकन है । दाहिनी ओर के प्रासाद की पीली पृष्ठ भूमि में सुगंधा राजा से रूपिणी के व्यवहार के लिये क्षमा मांग रही है । राजा नीले रंग के बड़े गेडुए तकिए के सहारे बैठा है, और उसके सामने सुगंधा खड़ी है ।

१ अंगरखा लाल रंग का धारीदार है । वह कमर में हरे रंग का पटका बांधे है । सुगंधा पीले रंग की चोली तथा लाल रंग का धाघरा पहने है, जिस पर पीला पटका है । उसकी ओढ़नी बैंगनी रंग की है । चित्र में दांयी ओर प्रासाद की बैंगनी पृष्ठ भूमि में रूपिणी मुंह फेरे खड़ी है । उसकी ओढ़नी बैंगनी छापेदार तथा अन्य वस्त्र लाल रंग के हैं । आकार ७×५३ इंच ।

पृ० ४१ चित्र ६०

सुगंधा राजा की पटरानी हुई

नीले और बैंगनी रंग की पृष्ठ भूमि पर राजभवन में काष्ठासन पर राजा और पटरानी सुगंधा बैठी हैं । पीछे एक परिचारिका खड़ी है । राजा का अंगरखा धारीदार लाल रंग का है । सुगंधा की चोली गहरे हरे रंग की तथा धाघरा पीले रंग का है, जिस पर छापेदार पीला पटका है । ओढ़नी का रंग बैंगनी है । आकार ८×५३ इंच ।

पृ० ४२ चित्र ६१

गंधा की जिन-भक्ति

पटरानी सुगंधा जिन-मंदिर में प्रतिदिन धर्म-साधन के लिये जाने लगी । नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर जिन-मंदिर में तीर्थंकर देव विराजमान हैं, तथा उनके बांयी ओर अंजलि मुद्रा में सुगंधा खड़ी है । दाहिनी ओर तीन दिगंबर मुनि खड़े हैं । मंदिर के शिखर पर कलश है । आकार ६×४ इंच ।

पृ० ४२ चित्र ६२

सुगंधा का शास्त्रानुराग

बैंगनी पृष्ठभूमि पर मुनिराज धर्मोपदेश कर रहे हैं, तथा हाथ में शास्त्र लिये अंजलिमुद्रा में सुगंधा खड़ी है । उसके पीछे तीन और स्त्रियां अंजलिमुद्रा में खड़ी हैं । मुनिराज का शरीर हलके पीत वर्ण का है । सुगंधा की चोली और धाघरा लाल रंग का तथा पटका गहरे हरे रंग का है । वह हलके बैंगनी रंग की बुंदकी दार ओढ़नी ओढ़े है । सुगंधा के पीछे खड़ी स्त्रियों में एक की चोली लाल रंग की तथा धाघरा नीले रंग का है, जिसपर पीला पटका लटक रहा है । दूसरी स्त्री की चोली और धाघरा हरे रंग का तथा पटका लाल रंग का है । तीसरी स्त्री की चोली गहरे हरे रंग की तथा धाघरा पीले रंग का है, जिस पर लाल पटका लटक रहा है । आकार ६×४ इंच ।

पृ० ४३ चित्र ६३

पार्श्वदृष्टिक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

देवागमन

नीली पृष्ठभूमि पर जिनमंदिर में तीर्थंकर देव विराजमान हैं । मंदिर के बेंगनी शिखर पर पीला कलश तथा ध्वजायें हैं । ऊपर आकाश में एक विमान-स्थित देव है । विमान में लाल ध्वजायें तथा घंटियां लगी हैं । उसमें बैठे देव के वस्त्र धारीदार हैं, और मुकुट लाल पीला है । सुगंधा और देव ने तीर्थंकर की बंदना की । आकार $5\frac{1}{2} \times 4$ इंच ।

पृ० ४४ चित्र ६४

सुगंधा और देव का सुगंधदशमी व्रत के फल के विषय में वार्तालाप

देव ने सुगंधा को भवान्तरों की बात बतायी कि सुगंध दशमी व्रत के प्रभाव से वह देव हुआ है, और उसी व्रत के प्रभाव से वह सुगंधा हुई है । लाल रंग की पृष्ठभूमि पर पीले फर्श पर गद्देदार तकियों के सहारे सुगंधा और देव बैठे हैं । सुगंधा को देव कह रहा है कि वह निरन्तर जिनदेव की आराधना-पूजा करे करावे । देव के वस्त्र लाल रंग के तथा सुगंधा के हरे रंग के हैं ।

चित्र के निचले अर्धभाग में बेंगनी पृष्ठभूमि पर लाल फर्श पर सुगंधा बैठी है, और सामने वह देव एक हरे रंग का दिव्य वस्त्र प्रदान कर रहा है । आकार 6×6 इंच ।

पृ० ४५ चित्र ६५

देव का प्रयाण

सुगंधा को दिव्य वस्त्र और आभूषण देकर देव चला गया । नीले रंग की पृष्ठभूमि में ऊपर आकाश में विमान में बैठा देव जा रहा है । देव के वस्त्र लाल छापेदार, पटका हरा तथा मुकुट हरे रंग का है । आकार 5×4 इंच ।

पृ० ४५ चित्र ६६

सुगंधा की ख्याति व लोक प्रियता और सम्मान

सुगंधा का अभिवादन करती हुई तीन स्त्रियां खड़ी हैं । सुगंधा लाल रंग की धारीदार चोली तथा हलके रंग का घाघरा पहने है, जिस पर लाल रंग का पटका है । वह बेंगनी रंग की भीनी ओढ़नी ओढ़े है । अन्य स्त्रियों के वस्त्र क्रमशः बेंगनी और लाल, बेंगनी और हलके हरे तथा लाल और गहरे हरे रंग के हैं । आकार $9 \times 4\frac{1}{2}$ इंच ।

पृ० ४६ चित्र ६७

ग्रंथ-समर्पण

लाल रंग की पृष्ठभूमि पर आसन पर ग्रंथ-रचयिता श्री जिनसागर के गुरु भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति विराजमान हैं । उनके दाहिने हाथ में समर्पित ग्रंथ है । सामने हाथ में पीछी लिये जिनसागर खड़े हैं । गुरु के शरीर का रंग गहरा बेंगनी तथा जिनसागर का हलका पीला है । जिनसागर का अधोवस्त्र हरे रंग का धारीदार है । आकार $4\frac{1}{2} \times 4$ इंच ।

॥दिना अथ सुगंधदशमिकया निरूप्यते॥
 श्रीमन्नंगदेवमूर्तिनिनदासिंहासनिवैसला छ
 त्रितीयाविष्णुकाय॥सिंहासेवाकरुयातला पादां
 दक्षिणवामनागचमरेगंगावनेठाढीला सूर्याचेन
 संतेजकोटिलपलेऐसाविस्तृदखिला १



गीतामिलो वंदुनिशारेदेसी। मोतेजरीचंघरदानेदेसी। वानीर
साखावदवी मकादीजे एकतासाकरंगादनादी२।

२



जी महाराज

आधीचयाजेमकथेसीगादी। चारवानिपादामगध्यानिवा
दिधितांबऊरोगवदेनिजातीदिईलपुण्याअवचारकीति

३



४

चंद्रमाहादीपविशालपोहे त्यामाहिदेनारथरुनेत्रआ
हे काशिवरंदेशविशिष्टनेथें वारानसिनग्रपवीत्रनेथे
पुनेथेंचसेनयनियनानि पुण्याश्रयिंघर्णविशाळना
सि त्याश्रीमनिनामकनावराणी पुण्याविनाकेवलपाप
खानी ५

४



मार्गदर्श

वसंतनिलकाञ्चनः आलावसंतकुललेतरुमोगस्था
 च नार्द्रवृक्षवकुलचंपकमालतीच पुष्पफलेजव
 तिपादपञ्चवराई आयासुगीतलवनीतनीसौम्य
 दायि द्वे द्वेः आरुद्वेजनिश्यावरीदोकसा राजानि
 घालारवितामदोजसा पुद्वेचरेवोन्नतिसाटवानी मार्गी

५



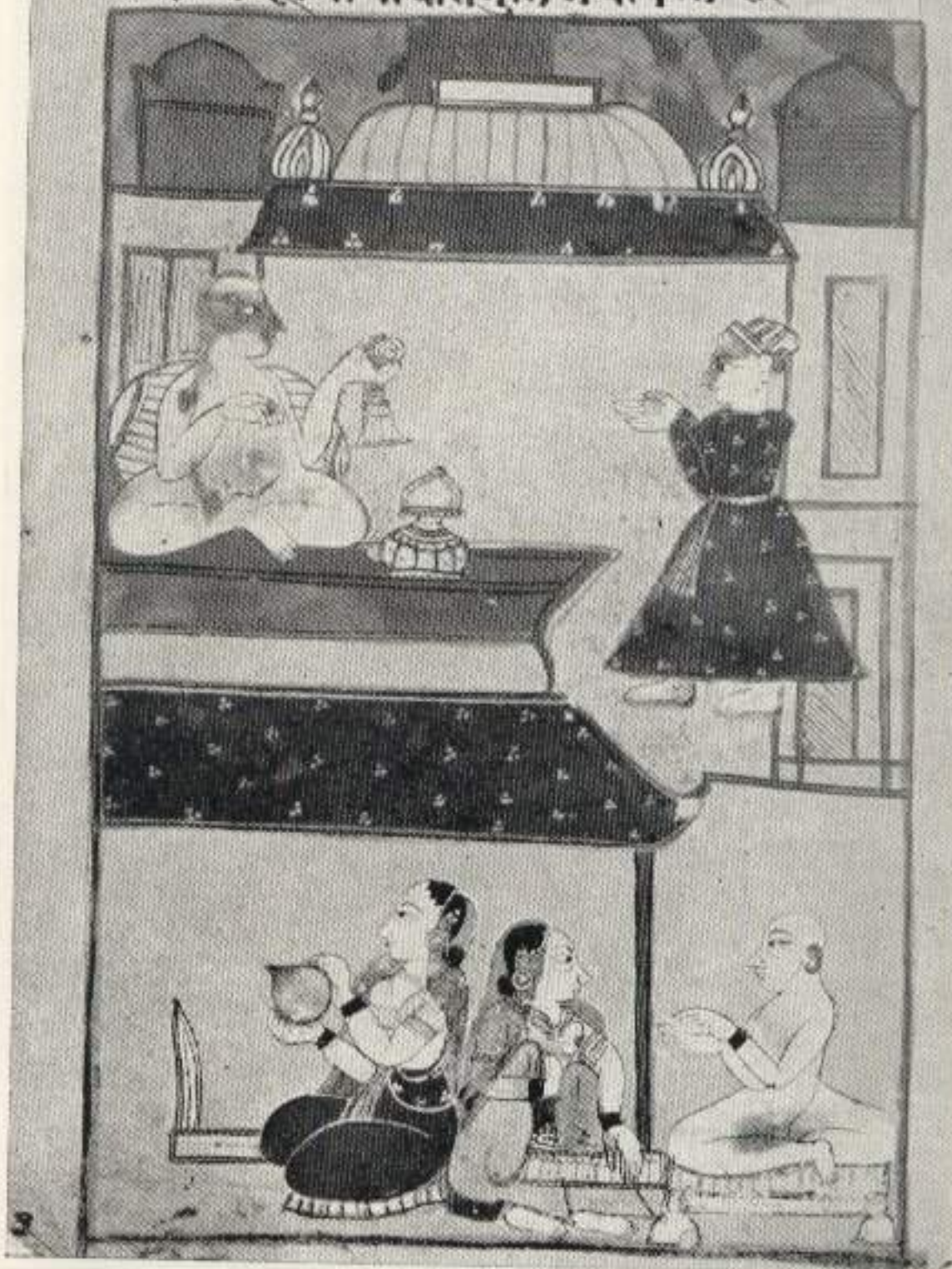
जनाचारिनिदं यानी ७ सूर्यासंवेजाइ सुदिक्षिजैसी
 रानीनृपासन्निध होयैसी भार्गवदेखीयलैमूनी
 ला मांसायवासीदृष्टदेन न्याला ८ त्रीऊनधारीसुय
 वीत्रदेही सुदर्शनव्यावजनानपादी राजानदाहाक
 निवाहनाला भावेमुनीला प्रणियानकेला ९



राणीससागसदनासिजायि मूनीश्वरनाजनदानदेई



गणीमनीकृदधंगनिरां दे मिथ्यातनीपायविचारिना
दे १० नाइलरानावरकाननामिमीकायजाउसदना
मिकैसी आनंदमाळाघडीयेकगेल्या पायीमुनीका
सुनिआजिआला ११ बोलेचनानेसदनासिआन
मुनीसेतेनाजनकायघाली कडुडध्यागंधुनिपा
ककेला कृनावचित्रिमनिजेवविला १२



गेलामुनिवचनिय्राहरामी जेनाळइ घ्यानधरीम्
खिसी त्याआहारविह्वलदेहनाले हांदां करीलोक
समस्त आले १३



नोआविकाआवकडःखनारी देविघ्नकैस्यायरि
कोणवारि ऐसीकसीपापिनुकोणआंद मूनीसदांआ
हारदीधनांद १४ केलनदांआयधशुद्धयाही गेलामु
नोवेमगंगकादी जालामुनीदेहनिगेगंतकां मुखे
मुनीजायवनासितेकां १५ हेनोकथायास्वलीराहीये
ली नृपाघरीसांगणकायजाली नोनावलोकीश्वत

लामिकेला न्यासदीक्रीषवदोनिआला १६ मा।
 ज्याघरीकायपदार्थनाही देवाइकोपायिकाय
 याही जलोइवेतांडहिसोचनाकिं कसंगतियापय
 उंजनाकिं १७ त्यानंतरेंचपतियेकहीसी गेलापा
 हासहुरुवंदनेसी निडुनियाआपुलियासवासी
 करुनिघायश्चितेयेघरासि १८

१०



राजातिलांयाऊनिकेयआणि शृंगारहारादिके
 हीरानि सौभाग्यगोवंसगहीनतात्री हेककेसावो

११



लनिलोकबोली १० डुर्गधंतोआमयव्यातजाना
 देहांवरीकोरचंतुनिआना नेवाससाहोतसकेविके
 दि जनेतलोबोलतिलोकबाणी २० अन्यःछंदः रा
 णीनेकांडःस्वआणीमनासी हाहादेवाडुःस्वजांनती
 वासी केसीदुहीआवबेपापिनिमी केसीगोष्टीसांग
 णेदेजनासी २२ राणीनेचअनेध्यानेमराणी ऐसीजा
 लीपापिणिडःस्वरवानि मातागलीतन्मताकानगदी
 वाराणीनेमिजेनाचिपादी २२ नालीदेहीडवेनी

१२

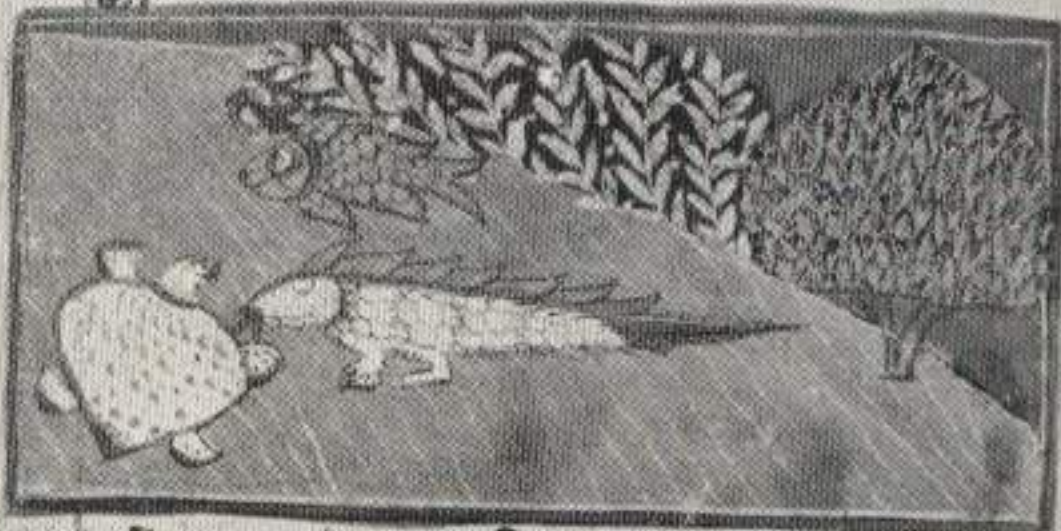


चालेवेताकाहीकेन्याडःस्वतिचेमेरणी पाणीप्यायां
 नेतराकीरिघाली नेयंकैसीकहेमीमयुतानी २३

१३



गले शोणं सुसरीकाय ज्ञानो मानां नारी न पेयं पायना
नी



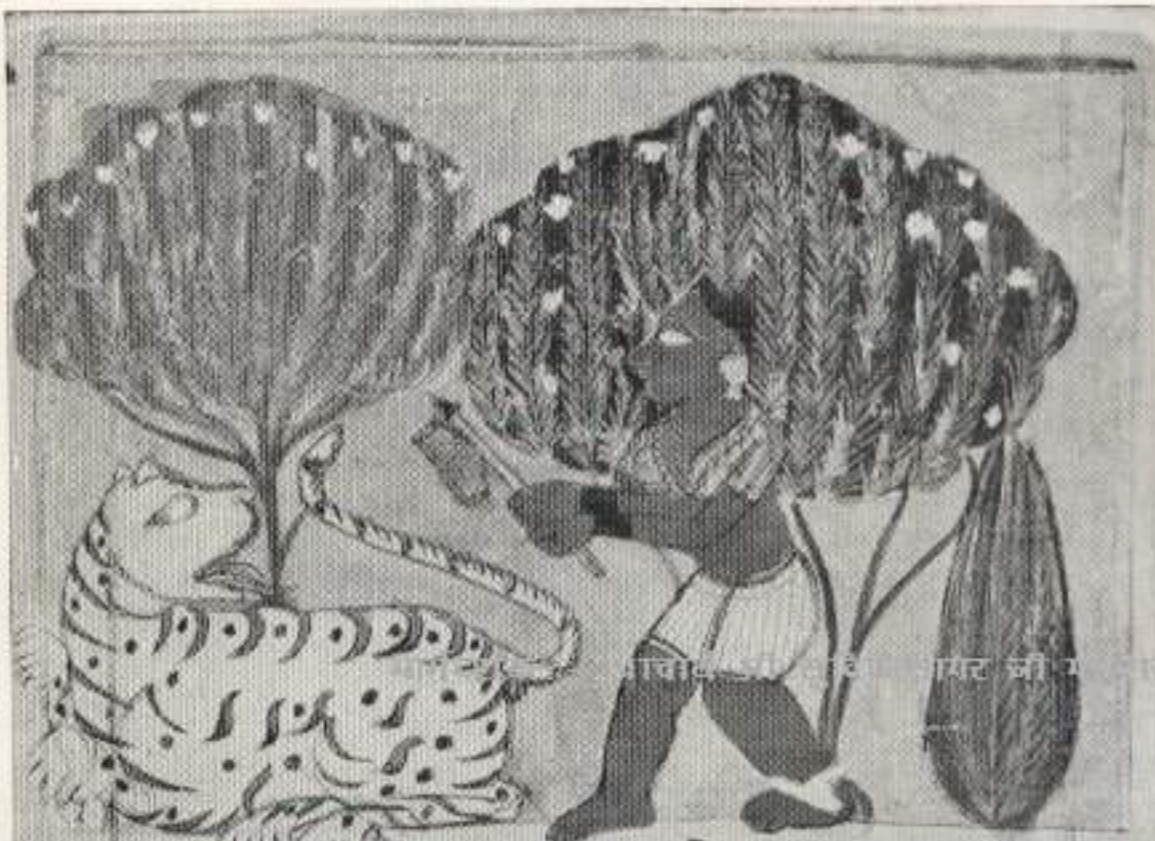
तद्योनियां सांबरीया योनि नयेही तंडुखला गीनि
हानि २४ जेयदवद्या छंदः



अणकमेज नमनरा निगला चाराल गही मगत नमता
ला डगंधांगी बड्डः खदाटी कान्दितिला वैसवि
नावियाटी २५ मानां मंड खविशालही में सर्वत्र
ही देखुनि लोकदां में तणकली राकियली बनात रं
पेड्डः खधरी मनान २६ तेउं बगवि फल खातरां
५ गले वृत्रवृत्रलकमे नंद

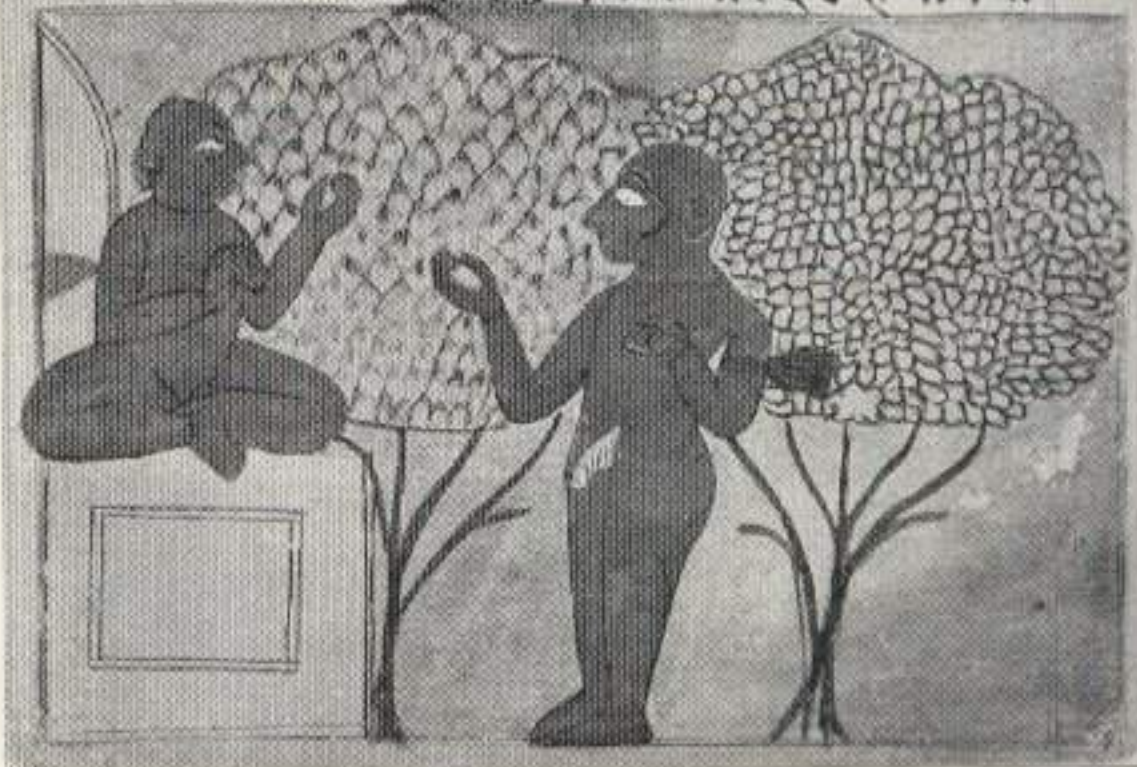
१४

१५



१६

त्रयंवनाहकमुनिं दयाला नामेश्वताक्षिष्ठसत्ताव
 त्यालां २७ असेगुणाशिवरशिष्यत्याचा नोबोनि
 नामरुसिसुवाचा संदेहहांहरकरावयासी आनां
 प्रसायेंवरवेंगुरुशि २६ अहोअहोश्रीगुरुराजरे
 वा हेकोनवांलहिनिपापवेवा वेरगुरुआईकवा
 लकोर इच्यानवाचिकचनीकयोर र्ण हे श्रीमनी



१७

हर्षिलराजकांता मुनिसेद्वारा हार दुहविना चुंबीफ
लाचेंकटुदानकेने न्याचेंअसेपायफलासिआले ३०
गलीकथाहर्षिलव्यक्तकेली चांडालीनिमीश्वतसर्वत
ली हांताबंदनिंदुनिपायवालां तेकांस्वलावेगुरुवंशीय
ला ३१ कलावेगलापुनलावजाना पुनः पुनः वंशीयले
गुरुना



विनियामल्लगुणासिद्धातां चाराजते पायालीति पुन्य
 पातां ३२ तयोनियानेमरणासियावे पुनंकयासोग
 गणैकसावे हंगारीलामालवदेवाशाक तथंपुरीचक्र
 निरन्तरा ३३ तच्चामगाचधरीहोक्रमारी दोतांवि
 दायावरीहोयमारी काहीवाहंमगमायमेनी उविष्ट
 स्वातांमगहृदिताली ३४ आणीनेसकाष्टविशेषनारा
 पुण्याविनाकेविमुखासिथारा एमीलरीनेचरगसी
 वाजा तथंमुनीतातवधेकआला ३५ सुदर्शनिकाम
 विकारनाही सम्पत्कधारीव्रतधर्मादी राजायाहा
 तिथीलआश्वसेन वंशवयावालीयलामुजान ३६
 विनियामल्लगुणासिद्धातां चाराजते पायालीति पुन्य
 पातां गुरुशिकेलाप्रणीयाततेही सम्पत्कनावाविग
 हननाही ३७ सुमार्गनोअकुनिलोकधाला बद्धतध
 मावरीहतआला संगेसुधर्मागुरुनादणावा यावेग
 लातीकगुरुगणावा ३८



मालीसिरीयजुनिदृष्टगंधा आर्त्ताव्रकस्मानकरीत
धंदा पुष्टंवेरदेखीयलंमनीसी तआववेष्टावेनच्या
नवासि शुभे छंदः मृच्छाआनीतयेरुन्मिकला रा
पादलाकविस्मितनाला कांदास्वामीपानलीडमिष्ट
जी ऐसीसांगआमुचिनव्यष्टछा ध० वरेमुनिकेव



खरी अवाणी नवानराचिकमलीकाहानी एकांनिय
विस्मीतनृपनाला नृगधि रसांगचयाययाला ध०

करीलहणकवसाव्रतासी तो सर्वदांना इलपापरासी
 इन्हें सुगंधादशमी करावि जाइलपापासी माराखला
 श्री ४२ पुढे मुनी सांगत सन्यासा तो स्नान करी तो खग
 येक गाला जयादी होना मकु माररासी तो बंसला बंड
 निया मुनीसी ४३ मासामेघे जा पदासिमानि ते शुक्ल

२१



पक्षीद्वयमीशुराणी कुर्याणि यावां वही रं गच्छां कोटं
 राक्षसां विविधकाहं ४४ त्यामध्यनामी कलशामि
 वेवा त्यादिवरी वा विसृज्य न देवा वसुप्रकारमग्नका
 एतां तमेकरासाधनश्रामकाता ४५ माहिनि छंदः
 दशविधजीनघत्ता यापरीनं करावी दृढतरनिननका
 अंतररीश्राववावी दशविधतयमात्मा वा वनावेपरा
 वा न्यनुनिमकवधेदाहतेन यजुदावां ४६ सेवेयाः
 तयजयमादनरूपधराशिवमार्गकराजवडु खदरा
 जयतयकेवजं वा धराशिवमार्गकराजवडु खदरा
 तयजयेददरिद्रिष्टर नृपणमम्ययहृद्यममुक्तिवरा ज
 क्तयकामकृत् दत्तवारणयापविदारणधुग्यपरा ४७
 हतविलंबिन छंदः जिनकयांकरीमांक्रमव्यानिशा नि
 रमनातमनकलत्यादीमां उगवत्वारविना इमत्यादी
 सी पुणरयी करीष्टननमारसी ४८ उपेदवच्छंदः
 तमेसादानपकरावनासी उद्यापनात्माकरणविधिमी
 ताहो न चंद्रावकतारकादी नारकरावगत एकपादी
 ४९ उपासश्राधीमुकराणि वाता यं चांमतावाच्यनी
 उकएता नद्यायणाचितीगकीनादी करीडनेदेव
 सधर्मादी ५० ममस्वदीक्षाविधिपकुनिया नावकरी
 तीव्रतघउनिया देतीतीनाश्रावकद्वयएता तेश्राव
 रब्राह्मणी धर्मकाता ५१ नावेस्वमेदव्रतधर्माकें त्रीत्या
 व्रतावकलपूजां तान् उगधतावा निमगंधश्रावो द
 नामुगंधातनवान्नीयत्वा ५२ तमेकरासी नावरयाव्रता
 सी तातिश्रयायावन्नतामुखासी आयुष्ययादंमगका
 लकला नीचा पुटंसांगनसम्भजाला ५३ नुतं प्रयानां
 छंदः अस्मिन् आर्यं स्वराजसुतारनामं वरीवत्तनीनिश्रया

शुद्धन्यासे नदीतटविचरन्ना कन्यागी सुरवासी वक्रधमे
कारिण्योमंजानन्यासी यश्च छंदः कनकनामशयनीय
छंदेन कनकाञ्जवधुसयवंत जनधर्मरुचीकारजमाना
धर्मदेनधरीनांदिनगत्वा यश्च उयजानछंदः मेयवेमेवो

२२

२२

भारतवर्षक :- आचार्य श्री सुविज्ञान सागर जी महाराज



जिनदासवाणी जिनादिदत्तावधूत्यासिमाणी तीच्याक
 सांघर्विलबासणीनं जालीकमारीवडपावनीत ५६
 सुगंधदेहांवरीनिसदीसं लोकसिद्ध्याश्चर्यविशेष जामें
 जाकी सुगंधाल्पुनिनावकले सर्वासीतिवनेकलोनिगले
 ५७ तामायवापावडलोचदोदं आनंदसंगमनात
 बांदं काहीकयापास्तवमायमेळी घवेलडःखावली
 व्यासजाली ५८ दांदांकरीतामगवायजीवा द्वागंकसा
 र्वाविलपायवेवा विवादाडुताकरीलोकवोलें



संतापमानिस्त्रिचित्रकेले पण ते कर्कसारूपीनिना
मनारी काधानना केवळयापधारी सकाळवेनिव
खायदाना असिमाहापाणिनिमर्जसाणा ६०

२४

महाराज



तीच्याकसीत कवीशेयकन्या ननामगामानितरूप
धन्या मानाकरीस्त्रहविशगतिचा सुगंधकन्यवरी दप
सावा ह?

२५



॥ छंदः ग्रामाभाजी कायबाहिरंगेली खानं जगतीज
 लोघ्रघाली ग्रामाबाबाआनुनिंजरोळा खानं घालि ते
 तीजलांयंगोळा ६२ जुजंग प्रयाताछंदः ॥ सुगंधा
 बकुंगेज्जालीशरीरी नसअन्य पाणिकरु स्वनागी
 पीत्यानेअसपाहीलां नावपाही हसणेवेगलेरादिजे
 सर्वथाही ६३

२६



जुहाराहनावाणियातास्याहाना तरी दयतिवा
 कदापिचुकेना सुगंधाकरीअन्तयाकामितावे पि
 तादेखुनिअंतरीतासुखांच ६४



२७

अमोदस्वनिअंनरीलालयाणि सगोचान्ममाश्रित
सिद्धोत्थाहानि दिमघतन्त्रीरखिलीमानियाचि गुरु
देववंशिकविजित्त्याचि ह्य इकानृनित्राणिनवी
सिनद्धानि सुगंधावलागनिवादीसिधाली मदाह
पिणिकसमलिकायवोले सगोचेषित्यालागिदीवा
अपकेले ईई

२८



तदाएकदीसियादात्याहयाने बलागनिसांगीतले
कायन्याने तुषाजाईनेशीघ्रदीयांतराला खरीदीकरी
रत्नआणिघरात्ता ६७

२९



नयालागी वंडनिआलाधरासि वदेगुत्यगेष्टिपाहा
रूपिणीसि अणेगंधियेकन्यकादोनिनोडी सुधीआ
णिमाझीअसिगाहीसोहि हट वरुपाहनेसोअणेआ
हसाला दादाचर्यगेनीअतिकाळजाला मलाजाह
नेदीपदीयांनरासी कळेनाकितिलागतिवर्षरासी
हर्षा रोसे



३०

गेमंबोलुनिवंडुनित्याचिन्त्या पाहावालिलोकोक
मारनदीयां लमोकारमंत्रावरीनावनारी त्यणेमंत्र
हासर्वपायानिवारी ७०



३१

चांगदत्तवरवाशुनवाणि त्यासिचंयकवत्तिव
धुमाणि तीमरकरुणयालकुमार श्यामसुंदरदीपेसु
नार ७२ सो कलंकनगराकनिआला देखतामनसुगंधा
निवाला रीकलक्षणनदिकुमारी ह्याणिनचमनात
विचारी ७३ दाखवीचवुरेनमगश्यामा चांगदत्तदशनात
यकामा

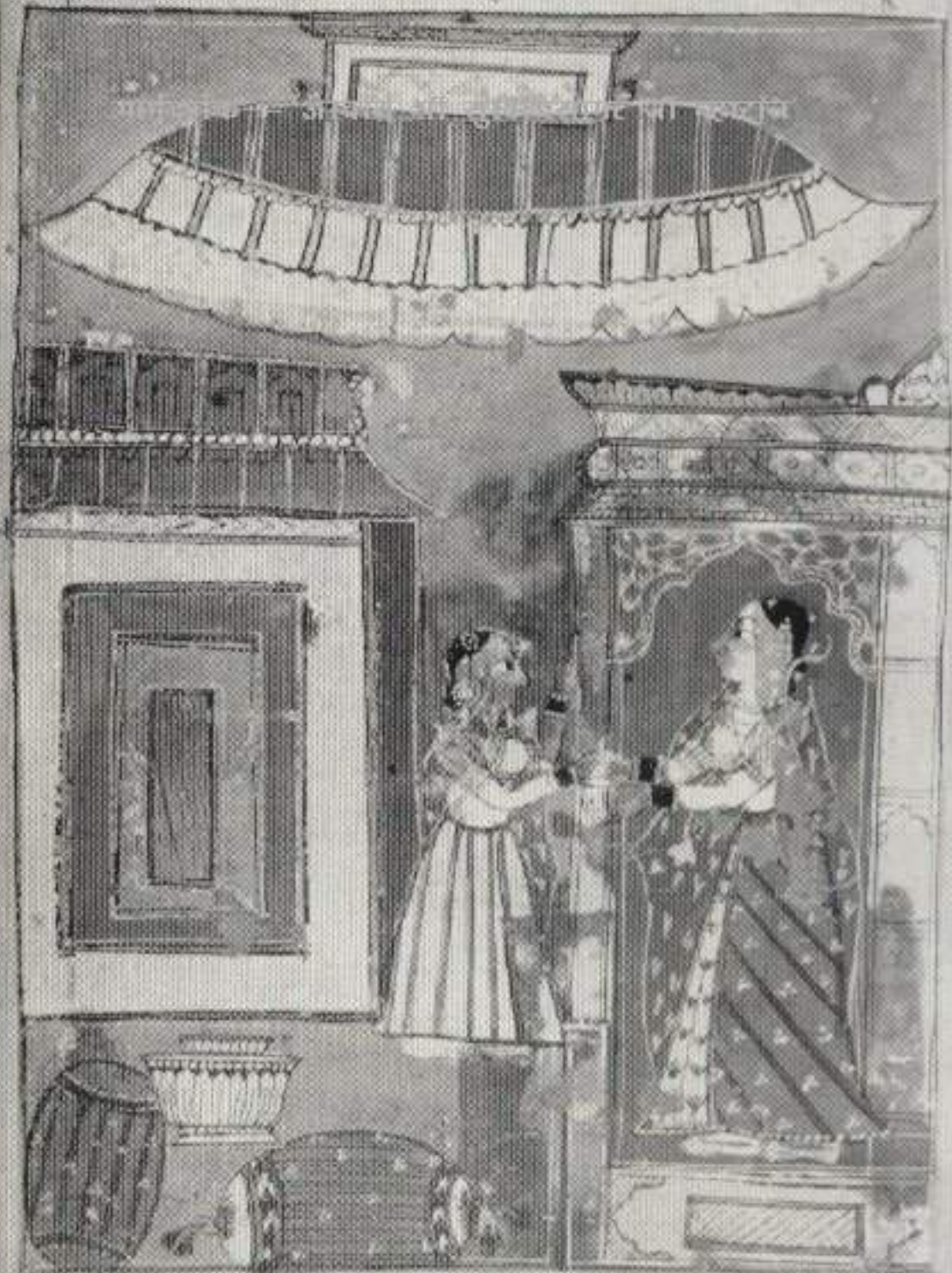
३२



कोयफारचहलांमगतीलां दणतयासिकसान्नमजाला
७३ मानलीमगसुगंधकुमारी देखिसुंदरगुणाधिकतारी ल
सनिधेयवरामगकेला चांगदत्तनगरावनिगेला ७४ सो
यरीमिद्विनीमगद्याला तोयफारवरहीमिरखीला दोय

दाधरीवर्गितमंदपद्यालि रूपिणीतवमनातवीराली ७५

३३



कसीरूपिणीतीसधेवोनिहाली निघालीकसीयापिणी
मध्यरात्री स्मरानामिनेउनियातीसिगरी चक्रदिग्दी
नागीदीवव्यारिनावि ७६ ससीचौदिमिहाधरीनेनि।

पार्श्वदर्शक

अथान् अस्मिन्नाथे गच्छास्वत्तीर्णसिन्धोणं ह्यनुनीयसी
नमरात्मगिआली

३४



कयात्तासिन्धोकोकरीलोकावाली ७७ उपेइवजा
छेदः। रतेपरेविह्ववाकपेवले पाहावयालोकसम
स्तथाने

३५



सत्तारिणीसंमिलित्यासमस्ता व्यावर्तित्वायरी
 तीव्रस्ता ७८ कोटिंश्रणघेउनिन्नतगला कोटिं
 गकोटिंश्रणतातिबाला कोटिंकुलीचाकबदे
 वंवाल कोटिंश्रणहेवीयरीतताले ७९ मालीनीः
 छंदः अगईअगईबाईकायगम्यांकरावे अहह
 कटकगकोनराणीफारीवे अहहकसीसुगंधा
 कोनराणीपहावी बद्धनअवगुणाचिकाम्कसी
 धरावी ८० उवेइवचाः आलाविद्धाईमगकोयेवा
 ले लणअहाःकायवियर्येताले बाबासुगंधा



बक्ररूपशाली तीव्याख्याचियादातांनकांकी ६१
 सुगंधप्रयातांछंदः वेदरूपीणितविकांयासिबोली
 सुगंधायादांदेशसोरोनिगेनी असेहेकुमारीमला
 गकजोदी कुमारासिदेतेतुस्यांश्रितिजांती ६२ वरेवे
 लंबोलीनियांवालेतेने तसलाविलंलग्नसन्मानदा
 न विक्राइमुखेशिघ्रगावासिगेलां सुदंआईकोहक
 थाहारमात्रा ६३ सुगंधकसीराहीयेलीसमशानी दी
 सेदवकन्यातसीरूपखानि पाहांत्यावदोगाविवान्
 पसोला अकल्लातमाजीवरीकायेआला ६४



दीक्षापादताहोबरीदीष्टगली स्मशानीसुगंधावरीदे
 स्त्रियनी निघालातवेगसुधेबोनिहाती उदेठाक
 लाबोललाप्रितिनासि देय न्रगेकायडंयंनहींही
 पिशाचि खगाधियकन्याबदेगाष्टिमाची वदेको
 ननुसांगहृत्ताननुज्ञां तुलादेखतांमोहिलायागमा
 सा।दंईएयावताहृद॥

महाराज

३८



मज्जपितांजीनदशरूपाला जिनमतीजननीगुणमा
 ला जन्मनचिजननीमृतजाली हणुनिमायमजह
 जिआली ८७ कनकनामन्यपतीजनकाला करिह
 गेहियदीयांतरत्याला मानुनिन्यमिशासनजाली ख
 रुहासमगयेगुणमाळी ८८ रुपिणिमजसुयत्रिसुमातो
 वायसर्वसिखवीतिसजातो कन्यकाउपवरासुवरासि
 देशजेघटीमूकनेसुमासी ८९ आजिलग्नदीवसीव
 रआला रुपिणिकरीकट्टनकचाला असुनिवसवी
 निमजयेथे यासुखीचवरीउंसुवराते ९० कविण
 वालुनियामजगेली सर्वगोष्टजम्पांशुनकेली न
 पतिघालितलेमजमाळा यासुखीसिवरमीउतआ
 ला ९१



॥ सुजंगम प्रयाग छंद ॥ विधीन च होना विलेन ग्रन्थे
 करि अन्यथा त्यासि पै को न तेथें सुगंधा मनी हर्षली तो
 यदाटे गळामास धानी माहा हर्ष वाटे ॥४२॥

४०

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिराम जी कृत



सुगंधा स्त्र्येणो वरा उचि मा सां स्वरं सांगतु कोणतां
 वावतु सा नृपाळें न दाकौ उकें गोष्टिकेनी स्त्रेण राह
 तो या चंगा वात गोनी ॥४३॥

४१



गुरेयाळितोवीकितोताकयाणी इलादोरघेउनमान
रश्मिणि ऐसंबोलुनिरपतिनोनिघाला धरीपञ्चवि
तेसुगंधानयाला ॥४॥

४२



अहंमिहोदेलकेकांवदोवं मलायकलीटाकुनी
कायजावे कसीआभुलीवस्तटाकुनिजाने वरेहेनेके
सवेथादीनवोन र्थव वदेन्येयईनउस्यांकीकानी नि
शामधनगीखराबोलमानी खरेगेखरेसत्यदेनास
घई वीयउवउंशीघृगृहस्मीनाई गेई

४३



न्याहं गृहानागिगंतव्यकेलं कन्यादिकोन्मसिते
 सजाले। सुगंधाकुमारीचरेयेधरासी यदेरूपीणियावनी
 पायरासी ॥७॥ सुगंधावदेसवेदीगोष्टकेली चरेगेकीर्ति
 रूपीणिहासियनी स्त्रगंगकसीगांजियामाकधाली
 कसीनाम्पमंताकरीआपवाली ॥८॥ निशामध्यनागी
 निव्यामंतीरासी याहानित्यताक्षेपयआदरसी अलंका
 रदिल्लावड्डव्यरासी सुगंधावदेगोष्ठितमात्रलिसि
 गोष्ठे

४४



गसेवनेलेपीठगावासिआनाअलंकारदेग्वेतियाव

४५



निदेई बल्लवित्रे गेलनलागेधिवाई कसाकानआहुतुआ
 मंदिरमी सुगंधाकसीरातलीकायत्यासि ३ अलंकारमा
 जाधरातीलंगलां कसाचोरआलाकसाकायनेला हिमे
 नातआणिकउआणिदावी नआनीमनेकांतुलामीखना
 वी ४ अहोसाहजिसांगनोबोलमाना समस्तजनाना
 नालाणिआणां बरीनानेनसारिव्याआदरेसी वक्रआद
 रवेसवावेजनासि ५ ॥ ७५ ॥ वजाळेंदे ॥

४८



४९

अंतःपटा बाधुनियकवाडः वौरंगमाडावरवाउपाई
 जापायधुतांदरुबोळविला नोतोदरहोयक मारिके
 लाः हंसगीतलीरीतितसीचकेली बापेसुगंधावक
 वीनवीली येहीश्रीलोकसमस्तआला नपाळहीहास
 तवालीयला ७ ॥ ननगउयाता हदः ॥

५०



५१

बहुपायधृतानयेवोच्छ्रितासी स्तणहनेकहनेकपोति
यासी बरुसानिरपायमासांवरचे अतीकामलकायसां
गुगुणाच देअहोमयपायिजयावेशलाली दीसचक्र
अंकुरारखाविशाली एमेशकुनिचूपसन्मुखआला
सुगंधास्तेतोवरुवोच्छ्रिता ए

महाराज

५२



५३

पारिजात - भाग्यार्थ श्री सवितासगर जी मन्दिर

खदखदन्त यहाँ सँतोष सर्वो जनाला मग न्यवरु बाल
भीवरु कन्ये केला ह्यगत सकल नारी काय हो जायनी
ना सजन ननमी लाला तोष सर्व साक्षा १० वरि नम
ग सुगंधाञ्जलि निष्पन्न गाली मल्लवट पटरे स्वारखी
यली कपाली लखलखित कको चेला विले बाट दीस
धवधवीत विलोमे काय लक्ष्मी चनासे ११

५४



५५



शिवरणीछंदः विरोधापादोर अनवदं सत्कार चरणी
कस्यावाकां हीपांच यत्नगुणम्यास्येकीरणी यदीष्टा
गुण्याचोरुणकुणीतवातेस्वरवरा अनंगाचाकेचात्री
सुवणीतथिषाषडसरा १२ गाम्बूखविक्कीडीतछंदः



पाटाउबकुलातनारकमीत्यामानिबुहाकीति मध्य
सारसहंसधाररचनामोराचियेपंगती व्यालीनकटस
त्रहीकरीतटीबाळाबकुसानिरि हातिकंकणधानले
घडनीयांरनाचियेजाडणी १३



केवीडल्लरदाटिलिमनीभाहोनेसीसरीलाखिली घा
 लीमाहनमालेनेगरसलीचित्रांगचोपकली नंगीमुक्ति
 कपध्यतीसहिततमिंडुररेखानली नेसीमुदसुराखली
 लखलखीबनीयाहालावली १४ कर्णितानवेइसुरन
 जडलेनेचंदसूर्यापरी लाळीचंदकसीसफुल्लसळकी
 जालीफुलाचिबरी नेत्रीअंजनघातलेसुल्लकतिपंचांगु
 कीमुदीका न्यालीदाटितकंचुकीमगदीसेजेसीसरीश्रुदि
 का १५ वाजुबंधविशेषवांधुनिअसाशृंगारयादीधला
 आंगीचंदनचर्चिनादशदिशामेगंधनोव्यापला दंतवि
 वरवीसुर्यकिरवनादालिंबबीतापरी वक्रीतांचलचर्चि
 लाघवघवीआरकहोटावरी १६ रयोहनाछंदः लग्न
 लावीयेलेसुखवेला सर्वरकमिल्लनाजनमेळाः वधु
 वरमगवरमिरविळी जेचनावलसुखीकरवीली १७



एकंदीवसधरीनयकोया रूपीणिसत्यणवोदृष्टपाया
 आणिलीधरुणिदंडकरावा पापीणीकपटराकीक
 जावा १८ पातलीनवसुगंधकमारीबोललीनयव
 शक्तिनारी माकियाजननीलाजरीदंडा लोकबोलती
 तरीमतलंडा १९ हावीवारनदेकराया अणुनिजाउ
 निघरीदृष्टयायां सोडिनाचमगतेरुणराहे ओढीयात
 सरलेंजववाहे २०

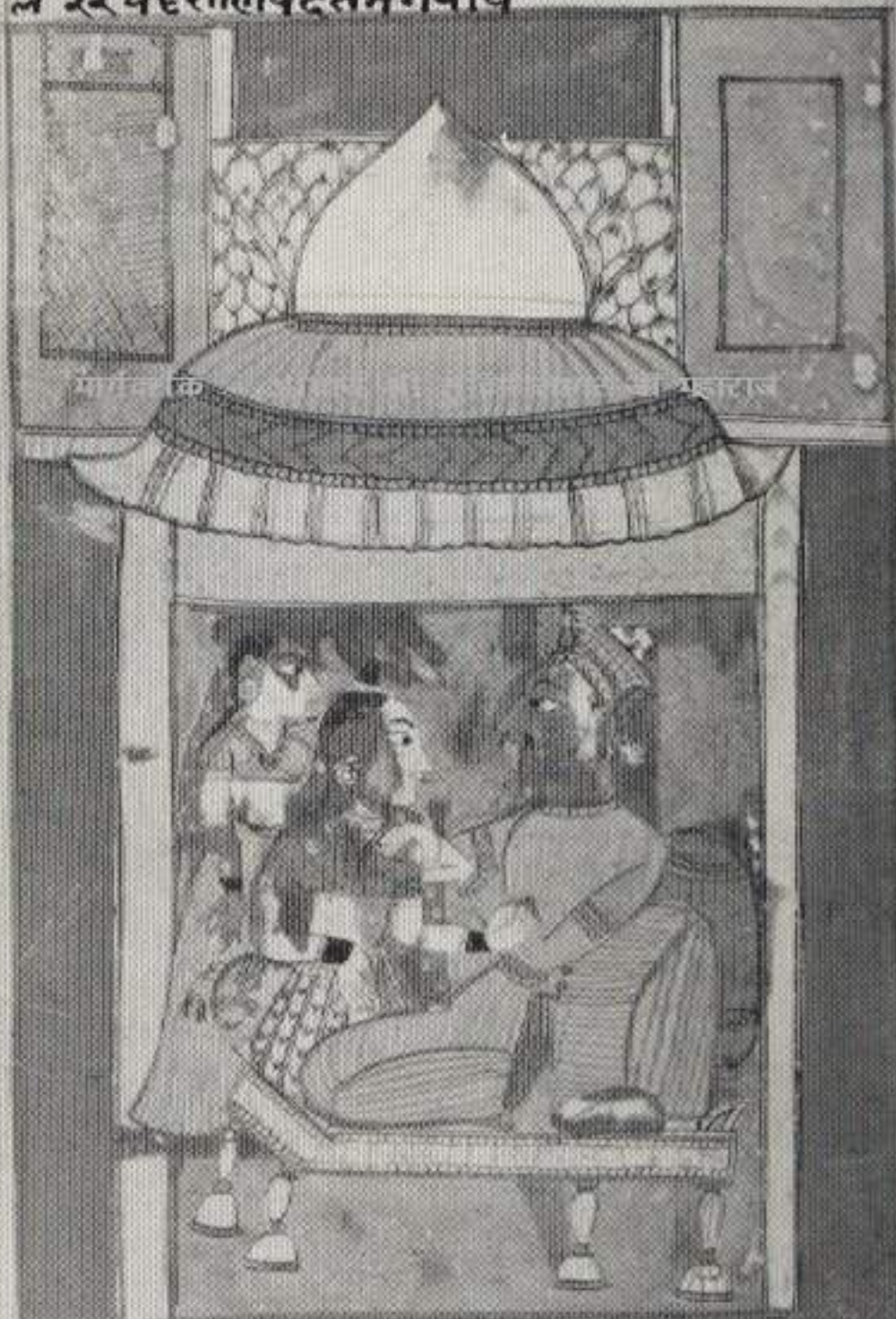
याचोर्तक — आचार्य भी सुविद्यमान

५९



रेकरेकलेणं नृपसारा व्यर्थनावदी सतेजनया रा रा
 खराखविन्मोहरमाके हाणफारजघडीलेनरीचके २१
 हणुनिकाऊलतीजवआली लयअंतरीदयानवनाली
 सोडीलीमगरूपाळनृपाळे सकुनासिसुखअंतरीजा
 ले २२ यहराणियदतेमगपावे

६०



राक्षसेनवसुखातसुखावे करविलमगतिनालयती
 ने त्यातविबधरीनेमुविधीने २३ निव्यसजनकरीति
 नदेवा मरुमंत्रजयसुक्रतवेवा केन्द्रियेकसुहीनीसु
 खवेवा जितगुहीमिललाजयमेला २४ तिनयहीवरसु
 गंधकुमारी सावचित्रवमलीसुखनारी

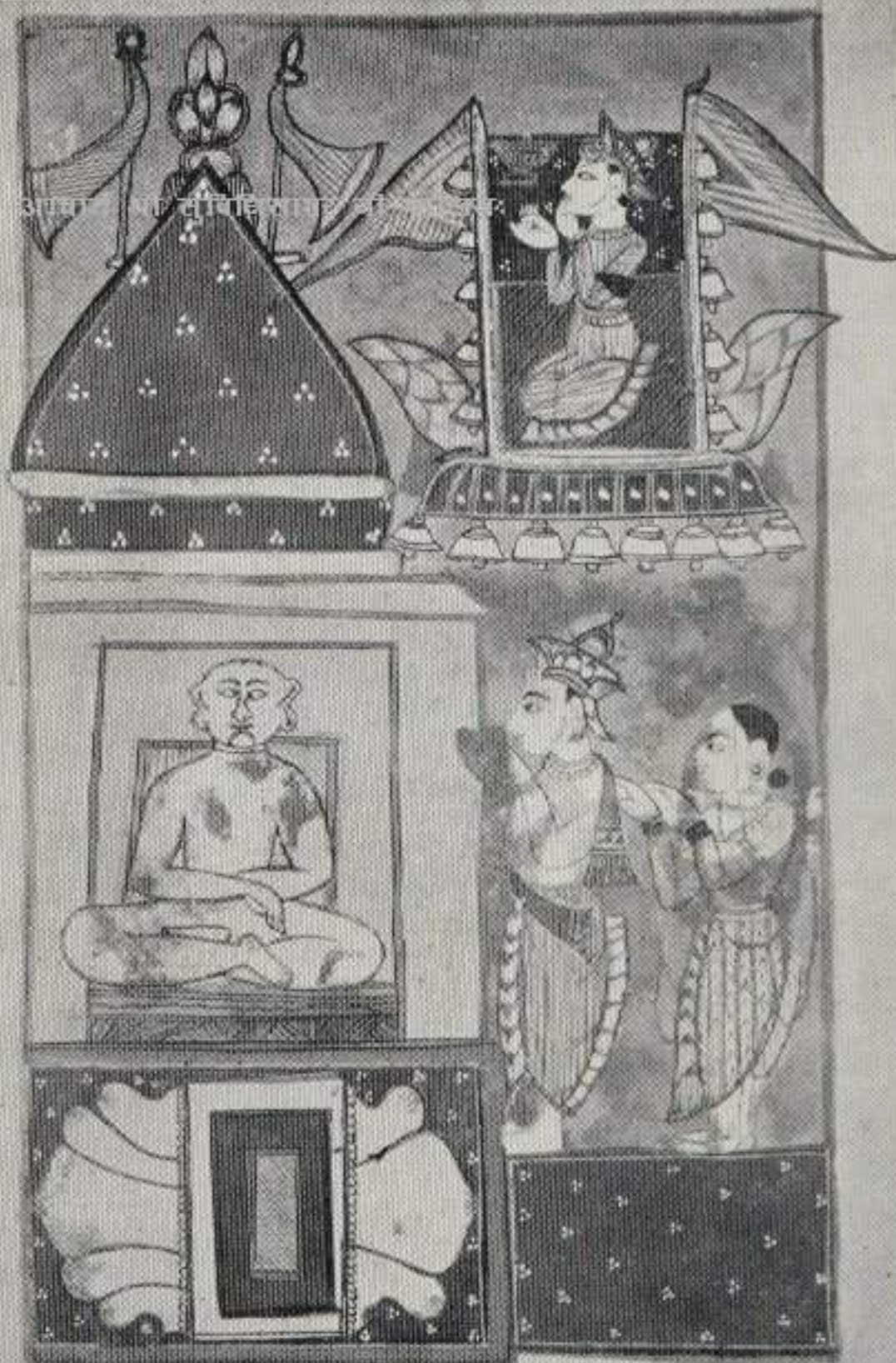
६१



६२



मार्गदर्शक



देवएकतवत्यास्यस्त्रिआला देवेदेवजिनतोनीमियेलाः

२५ देखिलितवसुगंधकुमारि हासिलारवदस्वरातव
 सारी धन्यधन्यवतारसुगंधा बोलिलामगतवांतर
 धेराः २६ वृसियावतवेलफळजाले ल्हाणेनिदेवयद
 मज्जाले खगनवांतरनेमजवोजा वतविधिधरीला
 निजकाजा २७ यास्वहीउपतलीमसुगंधा राज्यवे
 लवमाहासुरवकंदा धर्मदेववहीनीमजवही साव
 गोशीबुसधर्वनवीची २८ वळतकायवडुतुनकाई
 ईसरुमज्जनेकोसखेवाई नित्यनित्यनिनेदेवपजावा
 कालकनजी कलकचिदताकी २९

यागि

६४



वस्त्रनृषणदीलेमतीना स्वस्वनामहीसुखेस्तरगला म
वेनोकवदनीयगतीवे दाणप्रणकरीतीयशसांचे ३०

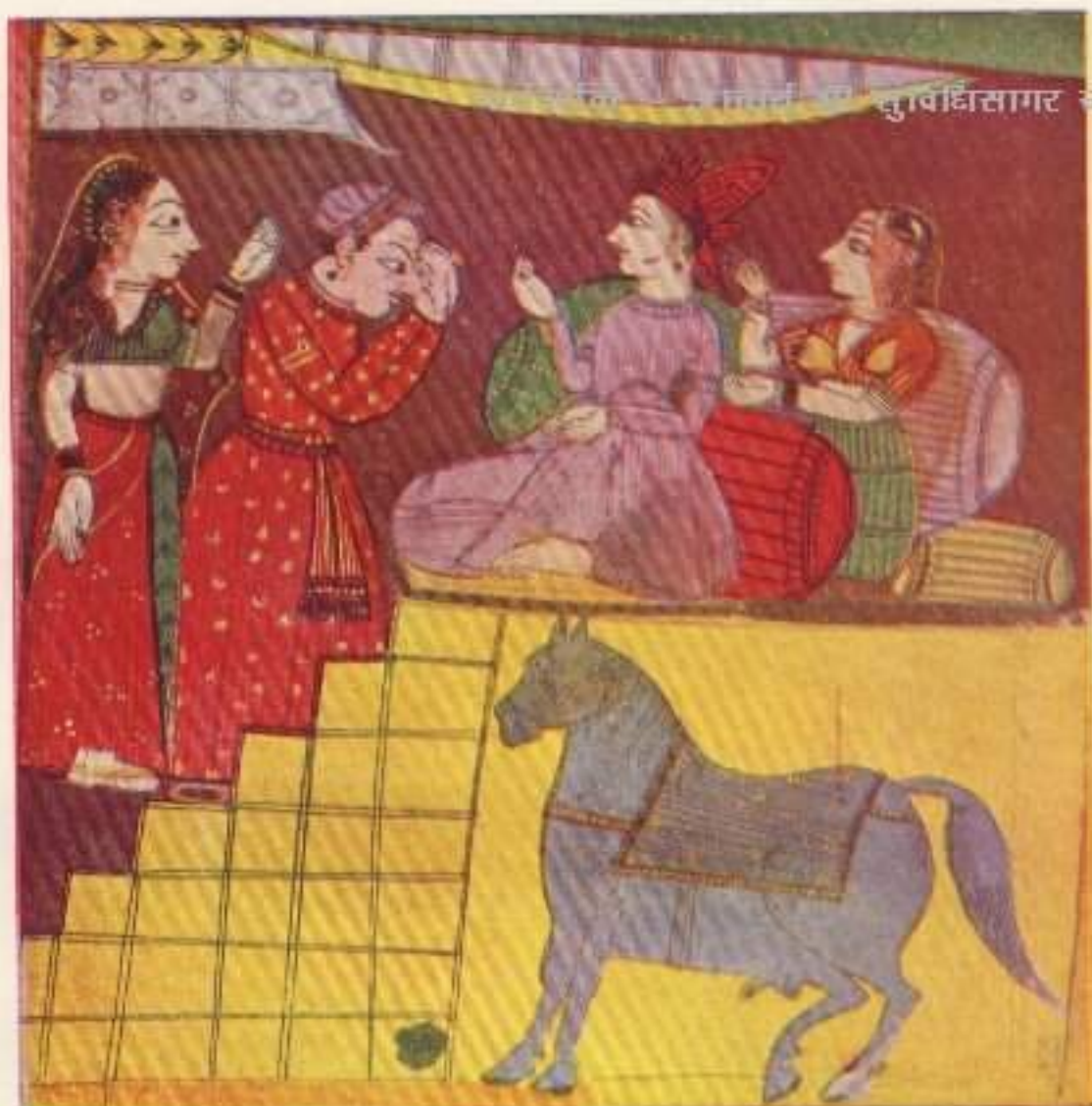
६५



६६

सुजंगमयाताछंदः सुगंधाञ्जनाः त्याजनालागीसा
 धरेसर्वेआयुष्यपामेसमाधी धरीअंतकाहीनमोका
 रमंत्रा सुखेवागोले पुढेनेखतंत्रा ३१ वधुनिगछेदो
 निइगानखगौ ॥ माहाइंजालायाहाअण्णमार्गी ॥ वीमा
 नीबसुनिकरीतोषयाणा ॥ वीनश्रीसुपार्थासिवंडमुजा
 णा ॥ ३२ ॥ उपेदवचाछंदः ॥ वंडनियानेसमवष्टतीसी ॥
 गेणमहन्दी ॥ सुखेनिवाहालीसी ॥ सम्यकसंरणेमतान
 लावी ह्येण ॥ कवीनेचिकथावदावी ॥ अथोदताछंदः
 दोनिमागरगमीस्त्रितिरेसी ॥ जम्भयाउनि पुढेअनव
 ३३ ॥ धिउनिमगदीगंवरदीक्षा ॥ सिद्धदेवहृदयीश्वरामि
 ह्ना ॥ ३४ ॥ उपेदवचाछंदः ॥ पावोनियाकेवलबोधही
 वा ॥ संबोधिलेनच्यजनासुजीवा ॥ त्यानेतरसाधुनिमिह
 वासा ॥ सुखेवसेमोरूपरीमुवासा ॥ ३५ ॥ देवेदकीर्तिगुरु
 पुण्णरासी जेनादिहोसागरमिथ्यासि ॥ ऐसीकथाहे
 परीछरणसोगी ॥ श्रीत्यासिद्याचित्प्रमाणे ॥ निमोगे ॥ ३६ ॥
 निमुगधदशमीकथासमाप्तः ॥





(चित्र २२) राजा-रानी को सेठ-सेठानी का अभिवादन



(चित्र ४६) सेठ-सेठानी का वार्तालाप



(चित्र ५६) सुगंधा का शृंगार



(चित्र ६७) ग्रंथ-समर्पण